सुत्त-पिटकका

मज्झिम-निकाय

[बुद्ध-वचनामृत—१]

अनुवादक

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक

महाबोधि सभा

सारनाथ (बनारस)

बुद्धाब्द २४७७

१९३३ ई०



समर्पण

में बुद्ध-धर्मके पुनरुद्धारक, निर्भीकता और
ढ़ संकल्पकी साकार मूर्ति, लोकान्तरगत
भिक्षु श्री देवमित्र धर्मपालकी
पुण्य-स्मृतिमें ।

प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी पाठकोंके सन्मुख, महाबोधि ग्रंथमालाके द्वितीय पुष्पके रूपमें, मज्झिम-निकायके हिन्दी अनुवादको लेकर उपस्थित होनेमें हमें बहुत आनन्द आ रहा है। हमने अगले चार वर्षोंमें त्रिपिटकके कितने हो प्रधान ग्रंथोंका हिन्दी अनुवाद छापना निश्चय कर लिया है। इसी साइजके लगभग १००० पृष्ठके प्रति वर्ष निकला करेंगे। हम अपना कर्त्तव्य पालन करनेके लिये तैयार हैं; किन्तु इस महान् कार्यकी पूर्तिके लिये हमें हिन्दी प्रेमियोंकी सहानुभूति और सहायताकी पूरी आवश्यकता है। मूल त्रिपिटकके अनुवाद हिन्दी भाषाकी स्थायी सम्पत्ति होगी। इस कार्यमें आप दो प्रकारसे हमारी सहायता कर सकते हैं; (१) एक तो आठ आना भेजकर आप स्थायी ग्राहक बन जायें, इससे हमारी उत्साह-वृद्धि भी होगी, और आपको पुस्तक पौने मूल्यमें मिलेगी और (२) दूसरे, हमारे राजा-महाराज और लक्ष्मीपात्र द्रव्यसे हमारी सहायता करें। इस बार जल्दीके कारण यद्यपि दान संग्रहमें हम अधिक प्रयत्न न कर सके, तो भी हिन्दी-भाषा-भाषियोंके कानों तक, उनके स्वजन भगवान् बुद्धकी अमर-वाणीको पहुँचानेमें हमें निम्न दानियोंने सहायता प्रदान की है—

सेठ युगलकिशोर बिड़ला	५००)
डाक्टर कैलाशनाथ काटजू (प्रयाग)	२००)
महाराजा छत्रपुर	१००)
श्री जोज़ेफ़ एलेस् (लंका)	१००)
श्री सर्वानन्द बरुआ (चटगाँव)	१००)
डाक्टर A. L. नायर (बम्बई)	१००)

१५—१२—३३

विनम्र—

(ब्रह्मचारी) देवप्रिय

प्रधान-मंत्री, महाबोधि सभा

सारनाथ (बनारस)

प्राक्-कथन

(१)

त्रिपिटक (पाली)के हिन्दी अनुवादके साथ त्रिपिटक कालीन इतिहास, भूगोल, सामाजिक रीति-रवाज तथा इसी तरहकी और बातोंपर कुछ लिखना आवश्यक है; किन्तु इस विषय पर प्रत्येक पुस्तकमें अलग अलग लिखनेमें अपूर्णता रहेगी, इसीलिये मैं इसपर कुछ विशेष तौरसे लिखनेको आगेके लिये छोड़ता हूँ। यहाँ इतनाही कहना है।—

बुद्धकी पर्यटन भूमि। बुद्ध भारतके किन किन स्थानोंमें पहुँचे थे, इसका ज्ञान हमें प्रत्येक सूत्रके आरम्भमें आये—"एक समय भगवान्"' (स्थान)में"'विहार करते थे"—वाक्यसे मिल सकता है। सारे त्रिपिटकके सूत्रोंको इस दृष्टिसे छानबीन करनेसे मालूम होता है, कि वह पश्चिम में यमुनाके पार नहीं गये। यदि गये भी होंगे, तो मथुरा तक ही। मथुरामें भगवान्का किया उपदेश कोई नहीं मिलता। लेकिन एक बार उन्हें हम मथुरा और वेरंजा[1]के रास्ते पर जाते पाते हैं, हमें यह भी मालूम है, कि वेरंजा नगर उस रास्ते पर था, जो पश्चिमसे वेरंजा—सोरेय्य—संकास्य—कन्नौजको जाता था। कुरु देशके कम्मासदम्म[2] और थुल्लकोट्ठित[3] (राजधानी) कस्बोंमें बुद्ध गये थे। किन्तु यह नगर यमुना और गंगाके बीच वाले प्रदेश (वर्तमान मेरठ, मुजफ्फरनगर-सहारन-पुरके जिलों)में ही कहीं थे। उस पार जानेपर इन्द्रप्रस्थ जरूर पड़ता। पूर्वमें बुद्ध कजंगलामें[4] गये थे, और सम्भवतः यही उनके जानेका अन्तिम स्थान था। कजंगलाकी देशान्तर रेखाहीमें कहीं पर कोसी गंगामें मिलती थी। कोसीके पश्चिम तथा गंगाके उत्तरमें अंगुत्तराप प्रदेश था। मायाकी दृष्टिसे आजकी तरह तब भी वह अंगका ही अंग था। अंगुत्तरापके आपण कस्बेमें बुद्धका जाना हमें मालूम है, और हम यह भी जानते हैं, कि यहाँ मगध-राज बिंबसार[5] का शासन था। अंगुत्तरापके पूर्वी सीमा तक पहुँचने पर भी, वह कोसीके पूर्व तो कदापि गये नहीं मालूम होते। दक्षिण दिशामें—दशार्ण (पश्चिमी बुन्देलखंड)में उनके जानेका पता नहीं मिलता। चेदीमें भी अधिकसे अधिक विंध्य और गंगाके बीचके ही स्थानोंमें गये होंगे। भर्ग (दक्षिणी मिर्जापुर, बनारस जिलों)में जाना तो स्पष्ट ही है, किन्तु यहाँ भी वह विन्ध्याटवी और उसके दक्खिन नहीं जा सके थे। विहार प्रान्तमें उनकी विचरण भूमिकी सीमा शाहाबाद और गया जिलोंको लेते, कुछ ही दूर तक हजारीबाग और संथाल-पर्गनाके जिलोंमें घुसी थी। बुद्धकी-विचरण भूमि पाली साहित्यमें मध्यमण्डलके नामसे प्रसिद्ध है।

मध्यमंडलके शासक—कोसल-राज्य। विस्तार और प्रभावमें भी यह उस समय सबसे बड़ी शक्ति थी। अंगुलिमाल-सुत्त (पृष्ठ ३५४)से मालूम होता है, कि वैशालीके लिच्छवि और

---

[1] बुद्धचर्या, पृष्ठ १२७, १४४। [2] पृष्ठ ३५। [3] पृष्ठ ३३०। [4] पृष्ठ ३४४। [5] पृष्ठ ३८२।

मगधराज अजातशत्रु इसके पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी थे। हम जानते हैं, कि कोसलके पूर्वमें शाक्य (मेतलूप, सामगाम, कपिलवस्तु), कोलिय (देवदह), और मल्ल (कुसीनारा, पावा, अनूपिया)के प्रजातन्त्र थे। सम्भवतः शाक्य और कोलिय प्रजातन्त्र भी वैसे ही मल्लोंमें होते थे। लिच्छवियोंको पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी बतानेसे, यह भी सिद्ध होता है, कि मल्ल प्रजातंत्र कोसल-राज्यके प्रभावके अन्तर्गत थे। इस बातकी पुष्टि हमें कुसीनारा निवासी बन्धुलमल्ल[1] के कोसलके सेनापति जैसे महत्त्वपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित होनेसे भी होती है। शाक्योंके ऊपर कोसलका कितना अधिकार था, यह कोसलराजके साधारण सैरके तौरपर बिना किसी विशेष तय्यारीके नगरकसे शाक्योंके मेतलूप कस्बेमें चले जानेसे मालूम होता है। दक्षिणमें कोसल राज्यकी सीमा काशी देश होते गंगा तक पहुँचती थी। काशियोंकी राष्ट्रीयताको सन्तुष्ट रखनेके लिये स्वयं प्रसेनजित्का छोटा भाई नाम मात्रका "काशिराज"[2] बन वाराणसीमें वैसे ही रहता था, जैसे मगधोंके हाथमें चले जानेपर भी कोई अंग-राज[3] संभवतः चम्पामें रहता था। पश्चिममें कोसल-राज्यकी सीमा पाली त्रिपिटकसे निश्चित नहीं की जा सकती। उत्तर पंचालके किसी नगर में बुद्धका जाना नहीं मिलता। लखनऊ कमिश्नरीके उत्तरी जिले और रुहेलखंडमें बहुत घने जंगल जरूर थे, तो भी वहाँ मनुष्योंकी बस्ती बिलकुल नहीं थी यह हो नहीं सकता। बल्कि थोड़ा संबलले कारवाँ (= सार्थ)के साथ चले जीवकका, तक्षशिलासे राजगृह जाते वक्त साकेत[4] (अयोध्या)में पहुँचना तो बतलाता है, कि इसी प्रदेशसे होकर उत्तरी भारतका एक महान् वणिक्-पथ जाता था, और इसी लिये इस रास्ते पर कुछ व्यापारिक नगरोंका होना भी आवश्यक था। उत्तरी पंचालमें किसी राज-शक्तिका नाम न आनेसे जान पड़ता है, वह कोसलोंके आधीन था, और इसी लिये गंगा ही कोसलकी पश्चिम-सीमा रही होगी। कोसल-राज्य अपने प्रभावान्तःपाती प्रजातंत्रोंको लिये गंगा, मही (वर्तमान गंडक) और हिमालयसे घिरा मालूम होता है।

कोसल राज-परिवारमें मल्लिका पटरानी थी। वासभखत्तियाको प्रसेनजित्ने शाक्योंसे घनिष्ठता पैदा करनेके लिये ब्याहा था[5], इसीसे सेनापति विडूडभ पैदा हुआ था। विडूडभ द्वारा पिताका पदच्युत होना अट्ठकथा[6] से मालूम है, और यह भी मालूम है, कि कैसे शाक्योंका सर्वनाश करके लौटते वक्त अचिरवती (= राप्ती)की आकस्मिक बाढ़में वह भी ससैन्य डूब मरा। प्रसेनजित्की एक मात्र कन्या वजिरी थी[7] जिसका ब्याह अजातशत्रुसे हुआ। विडूडभके बाद कोसल-राज्य पर अजातशत्रुका अधिकार हो जाना स्वाभाविक था।

मगध-राज्य। कोसल-राज प्रसेनजित्[8] और वत्सराज उदयनकी भाँति मगध-राज बिंबसार भी बुद्धका समवयस्क था। अंगुत्तराप (= भागलपुर मुंगेर जिलोंका गंगासे उत्तरीय भाग) बिंबसारके अधीन था। पूर्व और दक्षिणकी सीमापर इसके कोई वैसे प्रभावशाली राज्य न थे। अजातशत्रुके शासनकालमें मगधकी तीन प्रतिद्वन्द्वी शक्तियाँ थीं—कोसल राज्यके बारेमें हम कह चुके हैं, जो विस्तृत और चिरप्रतिष्ठित होते भी अवनतिकी ओर जा रहा था। लिच्छवि प्रजातंत्रकी शक्ति-शालिताका पता तो इसीसे मिलता है, कि उसके सैनिक गंगा पार हो, मगधके भीतर पाटलिग्राम (पटना) में महीनों छावनी डाले बैठे रहते थे[9]। अजातशत्रु और लिच्छवियोंकी सीमापर हिमालयसे व्यापा-

---

[1] पृष्ठ ४७३-७५। [2] बुद्धचर्या, पृष्ठ ३०७। [3] पृष्ठ ३९३। [4] बुद्धचर्या, पृष्ठ २९९।
[5] बुद्धचर्या, पृष्ठ ४०१,४७४। [6] बुद्धचर्या, पृष्ठ ४७५-७६। [7] वही पृष्ठ ४४०।
[8] वही पृष्ठ ४७७-८०। [9] बुद्धचर्या, पृष्ठ ५२७।

रियोंका कोई मार्ग[1] जाता था, जिसकी इन्हींके लिये दोनों शक्तियोंमें बहुत वैमनस्य[2] था। सीमांत प्रदेश अंगुत्तराप और विदेहहीकी संधि पर मालूम होता है। इससे यह भी मालूम होता है कि पुराने विदेहके एक भागका नाम विदेह होने पर भी वह लिच्छवियोंके प्रजातंत्र के अन्तर्गत था। मगधका दूसरा प्रतिद्वन्दी अवन्तिराज प्रद्योत था, जो एक बार स्वयं राजगृह पर चढ़ाई करना चाहता था; जिसके लिये मगधका प्रधानमंत्री वर्षकार सेनापति उपनन्दके साथ राजगृहकी मोर्चाबन्दी[3] करवा रहा था। प्रद्योतके राज्यकी सीमा मगधसे सीधी कहाँ मिलती थी, इसे ठीकसे नहीं कहा जा सकता। यदि पलामू—राँची जिलोंके दुर्गम जंगलोंमें मिलती हो, तो निर्जन होनेसे उसका उतना महत्त्व न था। अधिकतर संभव मालूम होता है, यह संघर्ष गंगा उपत्यकाके लिये ही था। प्रद्योतके दामाद वत्सराजकी प्रद्योतसे घनिष्ठता होनी स्वाभाविक थी। प्रद्योतका दौहित्र बोधि राजकुमार मगधके ही लिये, सुंसुमारगिरि (चुनार)में रहा हुआ था। इस प्रकार प्रद्योत इधरसे आक्रमण कर सकता था। उस समय अवन्ती और मगधकी शक्तियाँ ही सारे उत्तरी भारतकी प्रधानताके लिये उद्योग कर रही थीं। वज्जियों और कोसलके शांतिपूर्ण विजयने अजातशत्रुके पल्लेको भारी कर दिया और इस प्रकार उज्जयिनीकी जगह पाटलिपुत्रको प्रथम भारतीय साम्राज्यकी राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

लिच्छवि-प्रजातंत्र। कोसल और मगधकी शक्तियोंसे घिरा यह पराक्रमी प्रजातंत्र बिल्कुल स्वतंत्र था। इसके डरके मारे मगधराज पाटलिग्राममें सुदृढ़ दुर्ग बनवानेके लिये मजबूर हुये[1]। कोसलराजको भी इनकी चिन्ता कम न थी[5]। इसकी राजधानी वैशाली ग्रीसकी एथेन्स थी; जिसकी नागरिकताका अनुकरण मगधकी राजधानी (राजगृह) तक करती थी। इसके लिये मगध मेसेदोनिया और अजातशत्रु फिलिप् था। फिलिप् और ग्रीस-प्रजातंत्रोंकी कशमकशमका नाटक भारतमें एक शताब्दी पूर्व लिच्छवियों और अजातशत्रुके बीच अभिनीत हुआ था। उस समयकी ऐतिहासिक सामग्री यद्यपि बहुत थोड़ी मिलती है; तो भी उससे इस गौरवशाली प्रजातंत्रके इतिहासका एक अच्छा रूप खड़ा किया जा सकता है। खेद है, कि अभी तक इस तरफ अभिज्ञोंका ध्यान उतना नहीं गया। कुछ पंक्तियोंमें इसके बारेमें लिखना मैं अन्याय समझता हूँ, इसलिये इसे आगेके लिये छोड़ता हूँ।

वत्स-राज्य। पूर्व और दक्षिणमें इसके मगध और अवन्तीकी शक्तियाँ थीं। वत्सके अतिरिक्त भर्ग और चेदी देशोंका कुछ भाग इसके आधीन था। इसके पश्चिममें दक्षिण पांचाल था, जो संभवतः वत्सहीके आधीन था। पंचालको वत्सके आधीन मान लेने पर, पश्चिममें इसके दो छोटे पड़ोसी राजा दिखाई पड़ते हैं।—एक तो सूरसेनका राजा माथुर अवन्ती-पुत्र—जो उदयनकी रानी वासवदत्ता या बोधि राजकुमारकी माताकी बहिनका पुत्र तथा प्रद्योतका दौहित्र था। सम्भवतः यह माथुर राजा भी प्रद्योतके प्रभावके अन्तर्गत था। उत्तरमें थुल्लकोट्ठितका राजा कौरव्य[6] था; जो बुद्धके समय बहुत बूढ़ा हो चुका था[7]; यह कौरव्य कोई कुरुवंशीय ही राजा रहा होगा, जिस वंशका ही प्रधान पुरुष उस समय वत्सराज उदयन था। इससे यदि (पूर्व) कुरु-वत्सके प्रभावके अन्तर्गत रहा हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। और फिर सूरसेनका भी, कमसे कम प्रद्योतके प्रभावके पहिले, वत्ससे अछूता रहना सम्भव नहीं। जान पड़ता है, कोसलकी भाँति ही

वत्स-राज्य भी बहुत विशाल था, और उसीकी भाँति यह भी अपने ईर्षालु राजाके स्वभाव, तथा प्रद्योतकी प्रतिद्वन्द्विताका शिकार हो रहा था। जान पड़ता है, दूसरी पीढ़ीमें वत्स वैसे ही अवन्तीका ग्रास बन गया, जैसे कोसल मगधका; और फिर पिछली प्रतिद्वन्द्विता अवन्ती और मगध दो ही महाशक्तियोंमें केन्द्रित हो गई।

(२)

मज्झिम-निकायके १५२ सुत्तन्त तीन पण्णासकों (= पचासों)में विभक्त हैं। हाँ, तृतीय या उपरि-पण्णासकमें ५० की जगह ५२ सुत्तन्त हैं। प्रत्येक पण्णासकमें दस दस सुत्तन्तोंके पाँच वग्ग हैं; उपरि-पण्णासकका चौथा (विभंग-) वग्ग इसका अपवाद है, जिसमें कि १२ सुत्तन्त हैं। वग्गों (= वर्गों)के नामोंमें कोई कोई तो किसी सुत्तन्तके नामके कारण हैं, जैसे मूल-परियाय-वग्ग'''; कोई कोई वर्णित विषयके कारण जैसे सळायतन-वग्ग; कोई कोई सुत्तोंमें अधिकतर सम्बोधित व्यक्तिकी श्रेणी पर हैं; जैसे—परिब्बाजक-वग्गमें परिव्राजक सम्बोधित किये गये हैं, राजवग्गमें राजा और राजकुमार, ब्राह्मण-वग्गमें ब्राह्मण, गहपति-वग्गमें गृहपति (= वैश्य)।

भगवान् बुद्ध अपने उपदेशोंमें कितने ही सुन्दर दृष्टान्त या उपमायें दिया करते थे, इसने अन्तमें इनकी एक पृथक् सूची लगा दी है।

मज्झिम-निकाय सुत्तन्त (= सूत्र) बुद्धके ही कहे हुये हैं, लेकिन उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें बुद्धके शिष्य सारिपुत्र महाकात्यायन आदिने कहे। माधुरिय-सुत्तन्त, घोटमुख-सुत्तन्तकी भाँति भगवान्के निर्वाणके बादके भी कुछ सुत्तन्त हैं।

(३)

धम्मपदके प्रकाशनके वक्त मैंने लिखा था, कि मज्झिम-निकायका हिन्दी अनुवाद इसी सन्में पाठकोंकी सेवामें पहुँच जायेगा। यद्यपि इसके विषयमें मुझे सन्देह उतना नहीं हो रहा था, जितना कि परिस्थितियाँ प्रकट कर रही थीं। लिखने पढ़नेकी आसानीके लिये ही अबकी गर्मियोंमें मैं लदाख गया। पहिले आशा रखता था, कि साथमें किसी लिखनेवालेको ले जाऊँगा। किन्तु वैसा प्रबंध न हो सका। मैं २५ जूनको लेह (लदाख) पहुँचा, और १६ सितम्बर तकके समयमें दो चार ही दिन इधर उधर गया। यदि सिर्फ मज्झिम-निकायका अनुवाद होता, तो समय काफी था, किन्तु वहाँके बौद्धोंकी दयनीय अवस्था तथा कुछ बंधुओंके आग्रहने मुझे वहाँके लड़कोंके लिये तिब्बती भाषाकी चार पुस्तकें लिखने पर मजबूर किया। उधर कुछ और मित्रोंकी प्रेरणासे 'तिब्बतमें बौद्ध-धर्मका इतिहास' को संक्षेपसे लिखवाया। अपनी तिब्बती और युरोप-यात्राओंको भी वहीं समाप्त करनी पड़ी। यह निश्चय ही है, कि इतने कामोंके लिये उतना समय पर्याप्त न था। एक दो बार तो मैंने अपने मित्रोंको लिख भी दिया कि शायद मैं आधे ही ग्रंथको लदाखमें समाप्त कर सकूँगा।

अनुवादमें समय इस प्रकार लगा—

जुलाई	५—१५	१—२६ सुत्तन्त
अगस्त	२१—३१	३८—९८ सुत्तन्त
सितम्बर	१—२, ४—९, ११—१४	९९—१५२ सुत्तन्त
नवंबर	४—७	२७—३७ सुत्तन्त

लदाखमें अनुवाद करते वक्त मालूम हुआ, कि मेरी पाली प्रतिमें ११ सुत्तन्त (= सूत्र) गुम हैं, इसीलिये उनका अनुवाद लौटकर प्रयागमें हुआ। इस प्रकार यह सारा ग्रंथ ३८ दिनमें

अनुवादित हुआ। जल्दीके लिये अफसोस करनेकी आवश्यकता नहीं, जब कि मैं जानता हूँ, कि कामोंकी अधिकताके कारण, दूसरा कोई उपाय ही नहीं; अथवा एक अनिश्चित समयके लिये इस कामको स्थगित कर रखना पड़ता।

त्रिपिटक-वाङ्-मयमें मज्झिम-निकायका स्थान सर्वोच्च है। विद्वान् लोग इसीके बारेमें कहते हैं, कि यदि सारा त्रिपिटक और बौद्ध-साहित्य नष्ट हो जाये, सिर्फ मज्झिम-निकाय ही बचा रहे; तो भी इसकी मददसे हमें बुद्धकी व्यक्ति, उनके दर्शन और अन्य शिक्षाओंके तत्त्वको समझनेमें कठिनाई न होगी। इसी कारणसे "बुद्धचर्या" और "धम्मपद"के बाद मैंने इसमें हाथ लगाया।

अनुवाद करनेमें भावोंके साथ शब्दोंका भी पूरा ख्याल रक्खा गया है, इसीलिये भाषा कुछ कठिनसी हो गई है; किन्तु, अनुवादको ऐतिहासिकों, भाषा-तत्त्वज्ञों तथा दूसरे अन्वेषकोंके लिये भी उपयोगी बननेके लिये वैसा करना अनिवार्य था। शब्दोंका एक विस्तृत कोश मैंने ग्रंथके अन्तमें दे दिया है, और स्थल स्थलपर कोष्ठकमें भी सरल पर्याय देता गया हूँ। पाठकोंको कठिनाई मालूम होगी, कुछ बौद्ध दार्शनिक परिभाषाओंके कारण। किन्तु, संक्षेप और स्पष्ट होनेके लिये पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग करना ही पड़ेगा। बहुतसे पुनरुक्तोंको भी मैंने (०) चिह्न देकर हटा दिया है, इससे भी कहीं कहीं कुछ दिक्कत होगी, किन्तु उनके लिये मैं फुटनोटमें संकेत भी करता गया हूँ। यदि सभी पाठक प्रत्येक शब्द के समझनेका आग्रह न करेंगे, तो आशा है, वह अनुवादको सन्तोष-जनक पायेंगे। यह अन्तिम अनुवाद तो है नहीं, यदि इससे भविष्यके अनुवादकोंके काममें सहायता पहुँचेगी, तो यह भी इसकी एक उपयोगिता होगी।

त्रिपिटकके कुछ ग्रंथोंको पालीमें अनुवाद करनेकी बात मैंने "धम्मपद"के छपते वक्त लिखी थी। मैंने अगले चार वर्षोंके वर्षा-वासोंको इस प्रकार हिन्दी-अनुवाद-कार्यमें लगानेका निश्चय किया है—

पातिमोक्ख + महावग्ग + चुल्लवग्ग (विनय-पिटक)	१९३४ ई०
दीघ-निकाय	१९३५ "
संयुक्त-निकाय	१९३६ "
सुत्तनिपात + उदान + मिलिन्द पञ्ह	१९३७ "

अपने ज्येष्ठ सब्रह्मचारी भदन्त आनन्द कौसल्यायन, तथा शीघ्र ही लघु सब्रह्मचारी बनने वाले एक दूसरे तरुणसे आशा रखता हूँ, कि इन्हीं चार वर्षोंमें वह सम्पूर्ण जातकोंका भी हिन्दी अनुवाद कर देंगे। यदि ऐसा हुआ, तो मूल बौद्ध-साहित्यके अनुवादमें हिन्दीका स्थान भारतीय भाषाओंमें ही प्रथम नहीं हो जायेगा, बल्कि हमारी मातृभाषा युरोपीय भाषाओंसे टक्कर लेने लगेगी।

पुस्तकके साथ मज्झ-मंडल (= प्राचीन मध्यदेश)का एक मानचित्र भी दे दिया गया है, जिससे तत्कालीन भूगोलके समझनेमें आसानी होगी। ध्यानसे खींचनेपर भी जनपदों और राज्यों की सीमायें कितनी ही जगह गलत हो सकती हैं।

"धम्मपद"के अनुवादको समाप्त करते समय मैंने श्रद्धेय भिक्षु देवमित्र धर्मपालसे कहा था—मैंने अपनी प्रथम पुस्तक बुद्धचर्या अपने पिताको समर्पित की, दूसरी अपने उपाध्यायको; और अब यह तीसरी मैं आपको समर्पित करूँगा। उन्होंने कहा—काम होना चाहिये, अपने लिये समर्पणको मैं बेकार समझता हूँ। बे-कार हो, चाहे स-कार, अब वह बेकारका शब्द ही कब उन पतले ओठोंसे सुननेको मिलेगा !!

अनुवादका काम तो मेरे हाथका था, चाहे रातको तीन बजता, चाहे चार, उसे मैं पूरा कर

सकता था; किन्तु १९३३ ई० के भीतर छाप देनेकी समस्या आसान न थी। महाबोधि सभाके प्रधान मंत्री ब्रह्मचारी देवप्रियने कई आर्थिक अड़चनोंके रहते भी छापना स्वीकार कर, उस कठिनाईको हल कर दिया। दूसरी कठिनाई थी एक सालके अल्प समयमें प्रायः आठ सौ पृष्ठोंकी सारी पुस्तकको छाप कर निकाल देना। जिस कठिनाईको दूर करनेके लिये ला-जर्नल-प्रेसके मैनेजर पंडित कृष्णप्रसाद धर, तथा पंडित सीताराम गुंदे, पं० महेन्द्रनाथ पांडेय, श्री रामनाथ और श्री बच्चूलाल विशेषतया धन्यवादके पात्र हैं। पंडित उदयनारायण त्रिपाठी, साहित्य-रत्न, M. A. और उनकी दारागंजकी शिष्य-मंडली तथा बाबू महेश्वरसिंह, "विशारद" यदि प्रूफ देखनेमें सहायता न करते, तो काम बहुत कठिन हो जाता। इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

यदि पाठकोंकी सहायता प्राप्त होगी, तो आशा है अगले संस्करणमें ग्रंथकी बहुतसी त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी।

प्रयाग
१५—१२—३३

राहुल सांकृत्यायन

भूमिका

बुद्धके मूल सिद्धान्त[1]

बुद्धके उपदेशोंके समझनेमें सहायता मिलेगी, यदि पाठक बुद्धके इन मूल चार सिद्धान्तों—तीन अस्वीकारात्मक और एक स्वीकारात्मक—को पहले जान लें। वे चार सिद्धान्त ये हैं—

(१) ईश्वरको नहीं मानना; अन्यथा 'मनुष्य स्वयं अपना मालिक है'—इस सिद्धान्तका विरोध होगा।

(२) आत्माको नित्य नहीं मानना; अन्यथा नित्य एक रस माननेपर उसकी परिशुद्धि और मुक्तिके लिए गुंजाइश नहीं रहेगी।

(३) किसी ग्रन्थको स्वतःप्रमाण नहीं मानना; अन्यथा बुद्धि और अनुभवकी प्रामाणिकता जाती रहेगी।

(४) जीवन-प्रवाहको इसी शरीर तक परिमित न मानना; अन्यथा जीवन और उसकी विचित्रताएँ कार्यकारण नियमसे उत्पन्न न होकर; सिर्फ आकस्मिक घटनाएँ रह जायँगी।

बौद्ध धर्ममें चार बातें सर्वमान्य हैं। इन चार बातोंपर हम यहाँ अलग विचार करते हैं।

(१) ईश्वरको न मानना

ईश्वरवादी कहते हैं—"चूँकि हर एक कार्यका कारण होता है, इसलिये संसारका भी कोई कारण होना चाहिए, और वह कारण ईश्वर है—लेकिन प्रश्न किया जा सकता है—ईश्वर किस प्रकारका कारण है? क्या उपादान-कारण, जैसे घड़ेका कारण मिट्टी; कुंडलका सुवर्ण? यदि ईश्वर जगत्का उपादान-कारण है, तो जगत् ईश्वरका रूपान्तर है। फिर संसारमें जो भी बुराई-भलाई, सुख-दुःख, दया-क्रूरता देखी जाती है, वह सभी ईश्वरसे और ईश्वरमें है। फिर तो ईश्वर सुखमयकी अपेक्षा दुःखमय अधिक है, क्योंकि दुनियामें दुःखका पलड़ा भारी है। ईश्वर दयालुकी अपेक्षा क्रूर अधिक है, क्योंकि दुनियामें चारों तरफ़ क्रूरताका राज्य है। यदि वनस्पतिको जीवधारी न भी माना जाय, तो भी सूक्ष्मवीक्षणसे द्रष्टव्य कीटाणुओंसे लेकर कीड़े-मकोड़े, पक्षी, मछली, साँप, छिपकली, गीदड़, भेड़िया, सिंह-व्याघ्र, सभ्य-असभ्य मनुष्य—सभी एक-दूसरेके जीवनके ग्राहक हैं। ध्यानसे देखनेपर दृश्य-अदृश्य, सारा ही जगत् एक रोमांचकारी युद्धक्षेत्र है, जिसमें निर्बल प्राणी

---

[1] यह पहिले १९३२ ई० के "विशाल-भारत" में लेख-रूपसे निकला था।

सबलोंके ग्रास बन रहे हैं। पुनर्जन्म न माननेवाले धर्मोंको तो इसे बिना आनाकानीके स्वीकार
करना पड़ेगा। पुनर्जन्मवादी कह सकते हैं कि सभी मुसीबतें पूर्वके कर्मोंके फल हैं, लेकिन यह
भी चिन्त्य है। अच्छे-बुरे कर्मोंकी जवाबदेही जानकारकी ही हो सकती है। पागल या मदोंमें
बेहोश या अबोध बालकको दूसरेकी हत्याका दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इससे इनकार
किसको हो सकता है कि मनुष्यके अतिरिक्त दूसरे प्राणी—जो अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके जाननेकी
समझ नहीं रखते, और जिनका जीवन दूसरोंकी हत्यापर ही निर्भर है—अपने कर्मोंके जिम्मेवार
नहीं हो सकते ? मनुष्योंमें भी बालक, पागल आदि अलग कर देनेपर दायित्व रखनेवालोंकी संख्या
बहुत कम रह जायगी। यदि दुनियामें जवाबदेह आदमियोंकी संख्या डेढ़ अरब मान भी जाय
तो फल भोगनेवाले इतने कहाँसे आयेंगे, जिनकी संख्या अपार है। डेढ़ अरबसे अधिक तो कछु
ही होंगे, जो आदमीसे अधिक दीर्घजीवी हैं, और कीटाणुओं तथा हाथी, ह्वेल आदि जैसे विशाल
काय जन्तुओंके बारेमें कहना ही क्या ?

उपादान-कारण है, तो निर्विकार कैसे हो सकता है ? यदि ईश्वरको निमित्त-कारण मान
जाय, अर्थात् वह जगत्को वैसे ही बनाता है, जैसे कुम्हार घड़ेको, सुनार कुंडलको; तो प्र
होगा, क्या वह बिना किसी उपादान-कारणके जगत्को बनाता है, या उपादान-कारणसे ? यदि
बिना उपादान-कारणके, तो अभावसे भावकी उत्पत्ति माननी होगी, और कार्य-कारणका सिद्धान्
ही गिर जायगा, तब फिर जगत्को देखकर उसके कारण ईश्वरके माननेकी ज़रूरत क्या ? यदि
इन्द्रजालकी तरह उसने जगत्को बिना कारण मायामय उत्पन्न किया है, तो प्रत्यक्षके मायाम
होनेपर ईश्वरके होनेका अनुमान ही किस सामग्रीके बलपर होगा ? यदि उपादान-कारणसे बना
है, तो कुम्हारकी भाँति जगत्से अलग रहकर बनाता है, या उसमें व्याप्त होकर ? अलग रहने
वह सर्वव्यापक नहीं रहेगा, और सृष्टि करनेके लिए उसे दूसरे-सहायकों और साधनोंपर नि
होना पड़ेगा। विद्युत्कणोंसे भी सूक्ष्म नवकणों (Neutrons) तक पहुँचने और उन
मिश्रणसे क्रमशः स्थूलतर चीज़ोंके बनानेके लिए वह कौनसा हथियार, सुनारकी सँड़ासीकी तर
प्रयोग करेगा ? और फिर सर्वशक्तिमान् कैसे रहेगा ? यदि उसे उपादान-कारणमें सर्वव्यापक म
लिया जाय, तो भी उपादान-कारणके बिना उत्पादन-करनेमें अक्षम होनेपर सर्वशक्तिमान् नहीं
ऐसी अवस्थामें अपवित्रता, क्रूरता आदि बुराइयोंका स्रोत होनेका भी वह दोषी होगा।

इस प्रकार न वह उपादान-कारण हो सकता है, न निमित्त-कारण। जगत्का कोई आ
कारण होना ही चाहिए, यह कोई ज़रूरी नहीं। यदि 'उसका कारण कौन, उसका का
कौन ?'—पूछनेपर जगत्की किसी सूक्ष्मतम वस्तु या उसकी विशेष शक्तिपर नहीं रुकने दि
जाय, तो ईश्वर तक ही क्यों रुका जाय ? क्यों न ईश्वरका भी कोई दूसरा कारण माना जाय
इस प्रकार ईश्वरका आदिकारण मानना युक्तियुक्त नहीं।

कर्ता-धर्ता ईश्वर होनेपर, मनुष्य उसके हाथकी कठपुतली है, फिर वह किसी अच्छे-
कामके लिए जवाबदेह नहीं हो सकता। फिर दुनियामें उसका सताया जाना क्या ईश्वरकी क्
रुताका द्योतक है ?

ईश्वर सृष्टिकर्ता है, यह मानना भी ठीक नहीं। यदि सृष्टि अनादि है, तो उसको कि
कर्ताकी ज़रूरत नहीं, क्योंकि कर्ता होनेके लिए उसे कार्यसे पहले उपस्थित रहना चाहिए।
सृष्टि सादि है, तो करोड़ दो करोड़, खरब दो खरब वर्ष नहीं, अचिन्त्य अनन्त वर्षोंसे लेकर
उत्पन्न होनेके समय तक उस क्रिया-रहित ईश्वरके होनेका प्रमाण क्या ? क्रिया ही तो उ
अस्तित्वमें प्रमाण हो सकती है ?

ईश्वरके माननेपर, जैसा कि पहले कहा गया, मनुष्यको उसके अधीन मानना पड़ेगा, तब मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, जैसा चाहे, अपनेको बना सकता है—यह नहीं माना जा सकता। फिर मनुष्यको शुद्धि और मुक्तिके लिए प्रयत्न करनेकी गुंजाइश कहाँ ? फिर तो धर्मोंके बताये रास्ते, और धर्म भी निष्फल। ईश्वरके न माननेपर, मनुष्य जो कुछ वर्तमानमें है, वह अपने ही कियेसे; और जो भविष्यमें होगा, वह भी अपनी ही करनीसे। मनुष्यके काम करनेकी स्वतन्त्रता होने ही पर धर्मके बताये रास्तों और धर्मकी सार्थकता हो सकती है। ईश्वरवादियों द्वारा सहस्राब्दियोंसे धर्मके लिए अशान्ति और खूनकी धाराएँ बहाई जा रही हैं, फिर भी ईश्वर क्यों नहीं निपटारा करता ? वस्तुतः ईश्वर मनुष्यकी मानसिक सृष्टि है।

(२) आत्माको नित्य न मानना

यहाँ पहले हमें यह समझ लेना है कि बौद्ध अनात्मताको कैसे मानते हैं। बुद्धके समय ब्राह्मण, परिव्राजक तथा दूसरे मतोंके आचार्य मानते थे कि शरीरके भीतर और शरीरसे भिन्न एक नित्य चेतनशक्ति है, जिसके आनेसे शरीरमें उष्णता और ज्ञानपूर्वक चेष्टा देखनेमें आती है। जब यह शरीर छोड़ कर कर्मानुसार शरीरान्तरमें चली जाती है, तो शरीर शीतल, चेष्टा रहित हो जाता है। इसी नित्य चेतनशक्तिको वे आत्मा कहते थे। सामीय (Semitic) धर्मोंका भी, पुनर्जन्मको छोड़ कर, यही मत है। इनके अलावा बुद्धके समयमें दूसरे भी आचार्य थे, जिनका कहना था—शरीरसे पृथक् आत्मा कोई चीज़ नहीं; शरीरमें भिन्न-भिन्न परिमाणमें मिश्रित रसोंके कारण उष्णता और चेष्टा पैदा हो जाती है, रसोंके परिमाणमें कमी-बेशी होनेसे वह चली जाती है। इस प्रकार आत्मा शरीरसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। बुद्धने एक ओर आत्माका नित्य कूटस्थ मानना, दूसरी ओर शरीरके साथ ही आत्माका विनाश हो जाना—इन दोनों चरम बातोंको छोड़ मध्यका रास्ता लिया। उन्होंने कहा—आत्मा कोई नित्य कूटस्थ वस्तु नहीं है; बल्कि खास कारणोंसे स्कन्धों (भूत, मन)के ही योगसे उत्पन्न एक शक्ति है, जो अन्य बाह्य भूतोंकी भाँति क्षण-क्षण उत्पन्न और विलीन हो रही है। चित्तके क्षण-क्षण उत्पन्न होने और विलीन होनेपर भी चित्तका प्रवाह जब तक इस शरीरमें जारी रहता है, तब तक शरीर सजीव कहा जाता है। हमारे अध्यात्म-परिवर्तन और शरीरके परिवर्तनमें बहुत समानता है।

हमारा शरीर क्षण-क्षण बदल रहा है। चालीस वर्षका यह शरीर वही नहीं है, जो पाँच वर्ष और बीस वर्षकी अवस्थामें था, और न साठवें वर्षमें वही रह जायगा। एक-एक अणु, जिनसे हमारा शरीर बना है, प्रति क्षण अपना स्थान नवोत्पन्नके लिए खाली कर रहा है; ऐसा होने पर भी हर एक विगत शरीर-निर्मापक परमाणुका उत्तराधिकारी [illegible] होता है। इस प्रकार यद्यपि हमारा पहले वर्षवाला शरीर दसवें वर्षमें नहीं रहा, [illegible] वर्षमें दस वर्षवाला भी खतम हुआ रहता है, तो भी सदृश परिवर्तनके कारण [illegible] हम शरीरको एक कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा भी क्षण-क्षण बदल रहा है, लेकिन [illegible] परिवर्तनके कारण उसे एक कहा जाता है। आप अपने ही जीवनको ले लीजिए। [illegible] भी आपको सिगरेटका धुआँ नागवार था, और अब उसे चावसे पीते हैं। [illegible] चिड़ियोंको [illegible] मार कर फड़फड़ाते देखना, आपके लिए मनोरंजनकी चीज़ थी, लेकिन अब [illegible] फड़फड़ाते देख स्वयं फड़फड़ाने लगते हैं। यदि आपको [illegible] जाती चिड़ियाको को लिखते रहनेका अभ्यास है, तो आप अपनी [illegible] और उसकी प्रवृत्तियाँ यहाँ आपको कितने ही विचार ऐसे मिलेंगे, [illegible] उठा कर पढ़ डालिये। वर्ष बाद आज यदि कोई आपके ही शब्दोंमें [illegible] अपना [illegible] किया

साफ़ इनकार कर देंगे कि 'यह मेरा विचार नहीं है, न मेरा विचार कभी ऐसा था।' वस्तुतः आपका ऐसा कहना ठीक भी है, क्योंकि आपके पिछले दस वर्षके अनुभवोंने आपको बदल दिया है।

आप कह सकते हैं—मन बदलता है, आत्मा थोड़े ही बदलता है। हमारा कहना है, मनसे परे आत्मा कोई चीज़ नहीं। चित्त, विज्ञान, आत्मा—एक ही चीज़ है। जिस प्रकार चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और त्वक् इन्द्रियोंको हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वैसे मनको नहीं। हमें मनकी सत्ता क्यों स्वीकार करनी पड़ती है? आँखें इमली देखती हैं, और जिह्वासे पानी टपकने लगता है। नाक दुर्गन्ध सूँघती है, और हाथ नाकपर पहुँच जाता है। आप देखते हैं, आँख और जिह्वा एक नहीं हैं, न ये एक दूसरेसे मिली हुई हैं। इसलिए इन दोनोंको मिलानेके लिए एक तीसरी इन्द्रिय चाहिए, और वह मन है। पाँचों ही इन्द्रियाँ अपने-अपने ज्ञानको जहाँ पहुँचाती हैं, और जहाँसे शरीरके भिन्न भिन्न स्थानोंको गतिका अनुशासन मिलता है, वह मन है। यही ग्रहण, चिन्तन और निर्णय करता है। वह ग्रहण आदि कैसे करता है? फ़ौजके कमाण्डरकी तरह अलग बैठ कर नहीं, बल्कि जैसे पाँच टबोंमें लाल, पीले, हरे, नीले, काले रंगका चूर्ण पड़ा हुआ हो, और नीचे एक ऐसी काँचकी नलीसे पानी बह रहा हो, जिसमें पाँचों टबोंके मुँह मिले हुए हों, और टबोंका मुँह बारी बारीसे खुल रहा हो। जिस समय जो रंग पानीपर पड़ेगा, पानी उसी रंगका हो जायगा। इसी तरह जब आँख काले साँपकी ओर लगती है, तो काले साँपका हमें दर्शन होता है। फिर वह ज्ञान तुरन्त मनमें पहुँचता है। उस क्षणका मन, जो अपने कारणभूत पुराने मनोंके अनुभवोंका बीज अपनेमें रखता है, इस नये ज्ञानरूपी चूर्णके गिरनेसे तदाकार हो, भयके रंगमें रँग जाता है। यदि एक क्षण ही साँपको देख हमें रुक जाना हो, तो भी हिला कर छोड़ दिये पहियेकी भाँति कई क्षण तक एक-एकके बाद उत्पन्न होनेवाला मन उस रंगमें रँग जायगा; यद्यपि हर द्वितीय क्षणके मनपर उसका असर फीका पड़ता जायगा। और यदि साँप कई क्षणों तक दिखाई देता रहा, और आपकी तरफ़ भी आता रहा, तो क्षण-क्षण उत्पन्न होनेवाले मनपर भयका संचार अधिक होता जायगा। जो बात भयप्रद विषयोंके बारेमें है, वही प्रीतिप्रद तथा दूसरे विषयोंके बारेमें भी समझनी चाहिए।

अस्तु, उक्त कारणसे चक्षु आदि इन्द्रियोंके अतिरिक्त हमें उनके संयोजक एक भीतरी इन्द्रियको माननेकी ज़रूरत पड़ती है, जिसे मन कहते हैं। इससे परे आत्माकी क्या आवश्यकता? यदि कहें कि पुराने अनुभवोंको स्मृतिके रूपमें रखनेके लिए, क्योंकि मन तो क्षणिक है (यद्यपि यह बात वे नहीं कह सकते, जिनके मतसे मन क्षणिक नहीं), तो हम कहेंगे—मन क्षणिक है, किन्तु वह अपने परवर्ती मनका कारण भी है। आनुवंशिक नियमके अनुसार जैसे माता-पिताकी बहुतसी बातें पुत्र-पौत्रमें आती हैं, उसी प्रकार पूर्व मन अपने अनुभवोंका बीज या संस्कार पिछले मनके लिए विरासतमें छोड़ जाता है, और यही स्मृतिका कारण है। वस्तुतः संस्कारका ठप्पा तो क्षणिक वस्तुपर ही लग सकता है। आत्माको यदि कूटस्थ नित्य मानें, तो वह अनन्तकाल तक एक रस रहनेवाला होगा। भला, सदाके लिए एक रस रहनेवाले आत्मापर अनुभवोंका ठप्पा कैसे पड़ सकता है? यदि पड़ सकता है, तो ठप्पा पड़ते ही उसका रूप-परिवर्तन हो जायगा। आत्मा कोई जड़ पदार्थ नहीं है, जिसके सिर्फ़ बाह्य अवयवपर ही लाञ्छन लगेगा। वह तो चेतनमय है, इसलिए ऐसी अवस्थामें इन्द्रिय-जनित ज्ञान उसमें सर्वत्र प्रविष्ट हो जायगा। फिर वह राग, द्वेष, मोह—नाना प्रकारोंमेंसे किसी एक रूपवाला हो जायगा। तब फिर वह वही आत्मा नहीं हो सकता, जो ठप्पा लगनेसे पहले था। अतएव वह एक रस भी नहीं हो सकता। फिर आत्मा नित्य है कैसे? यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लें कि ठप्पा लगता है, तो वह अभौतिक संस्कार भी नित्य आत्मा

में लगकर अविचल हो जायगा। तब फिर शुद्धि या मुक्तिकी आशा कैसे की जा सकती है ?

यदि कहें—कोई नित्य आत्मा नहीं है, तो मनके क्षणिक होनेसे, शरीरके नष्ट हो जानेपर अच्छे-बुरे कर्मोंका विपाक कैसे होगा ? यहाँ पहले यह समझ लें कि बौद्ध विपाक कैसे मानते हैं। वे यह नहीं मानते कि हम जो कुछ भले-बुरे काम करते हैं, उसे लिखनेके लिए ईश्वरने हमारे पीछे दूत लेखक लगा रखे हैं। हम अच्छे या बुरे जैसे भी कायिक-वाचिक कर्म करते हैं, सभी कर्मोंका उद्गम हमारा मन है। अतः द्वेषयुक्त काम करनेके लिए मनको द्वेषयुक्त बनना पड़ता है; रागयुक्त काम करनेके लिए मनको रागयुक्त बनना पड़ता है। मनकी उस बनावटकी, उस ध्वनिकी गूँज तब तक जारी रहती है, जब तक वह व्ययसे या विरोधी ध्वनिके आ कर टकरानेसे नष्ट नहीं हो जाती। आदमी एक दिनमें क्रूर नहीं बन जाता। आपरेशन करनेवाले डाक्टरको भी धीरे-धीरे अपने मनको कड़ा करना पड़ता है, फिर खूनीकी तो बात ही क्या ? जब किसी असहाय, निर-पराध बालिकाको पीटते देख दर्शकोंका मन प्रभावित हुए बिना नहीं रहता (यद्यपि यह दूसरी दिशामें—करुणाकी ओर), तो स्वयं मारनेवालेका मन सख्त हुए बिना कैसे रह सकता है ? सुतराँ हम जो काम करते हैं, उसका असर तत्काल मनपर पड़ता है। जितना ही मन कड़ा होता जाता है, उतना ही उसमें सूक्ष्म मानसिक चिन्तन और विकासकी योग्यता कम होती जाती है।

अच्छे-बुरे मनोभाव धन और ऋणकी तरह हैं। यदि धनकी राशि अधिक रही, ऋणकी कम, तो धनका पलड़ा भारी रहेगा। यह हिसाब मनकी क्षण-क्षणकी बनावटमें स्वयं होता रहता है। यहाँ हिसाबका टोटल महीनों, हफ्तों, दिनोंके बाद नहीं, बल्कि तुरन्त-फा-तुरन्त होता रहता है। मनुष्य क्या है, अपने पिछले भले-बुरे अनुभवोंका पूर्ण योग। दूसरे क्षण उत्पन्न होनेवाले मनको बहुतसी बातें अपने-जनक मनसे बरासतमें मिलती हैं। यह बरासतका सिलसिला हमारे लड़कपनसे बूढ़पन तक रहता है—इसे समझनेमें अड़चन नहीं होगी। लेकिन बुद्धकी शिक्षा के अनुसार यह सिलसिला जन्मसे पहले भी था, और मृत्युके बाद भी रहेगा। अपने पिछले अनुभवोंसे बने हुए मनकी उपमा, मृत्यु-क्षणमें जिस वक्त वह इस शरीरको छोड़नेके लिए तैयार रहता है, उस तप्त लौह-धारसे दी जा सकती है, जो एक ऐसी नालीके सहारे नीचे बहती चली आई हो, जो एक टीलेके पास आ कर रुक जाती हो। उस टीलेके दूसरी ओर एक ऐसी दूसरी नाली है, जिसके आरम्भपर पर्याप्त चुम्बक-राशि है, तो वह ज़रूर इस धारको नई नालीमें डाल-नेके लिए समर्थ होगी। इसी प्रकार मृत्युके समय चित्त-प्रवाह अपनी संस्कार-राशिके साथ इस जीवनके छोरपर खड़ी रहती है। वह संस्कार-राशिरूपी चुम्बक समान धर्मवाले समीपतम शरीरमें खींच कर फिर उसकी वही पुरानी कार्रवाई शुरू करा देता है। यही क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक तृष्णाके क्षयसे यह सन्तति विशृंखलित हो, निर्वाणको नहीं प्राप्त हो जाती। इस प्रकार कर्म, कर्म-फल और जन्मान्तर होता है।

जीवको नित्य माननेमें बहुतसे दोष होते हैं। यदि आप उसे नित्य मानते हैं, तो उसे सिर्फ अमर ही नहीं, अजन्मा भी मानना होगा। फिर सामीय धर्मोंमें भी तो, जहाँ पुनर्जन्म नहीं मानते, यह मानना होगा कि जीव अरब-खरब वर्ष नहीं, बल्कि अनादि कालसे आज तक चुपचाप निश्चेष्ट पड़ा रहा। अब एक, पचास, या सौ वर्ष तकके लिए, बिना किसी पूर्व कर्मके, इस दुनियामें जन्मान्ध या नेत्रवान्, जन्मरोगी या स्वस्थ, मन्दबुद्धि या प्रतिभाशाली बन कर उत्पन्न हो गया है, और मरनेके बाद फिर अनन्तकाल तकके लिए अपने कुछ वर्षोंके बुरे-भले कर्मोंके कारण स्वर्ग या नरकमें डाल दिया जायगा। क्या इस तरहकी नित्यता बुद्धियुक्त मानी जा सकती है ? जो लोग पुनर्जन्म भी मानते हैं, और साथ-साथ आत्माको नित्य भी, उनकी ये दोनों बातें परस्पर

विरोधी हैं। जब वह नित्य है, तो कूटस्थ भी है, अर्थात् सदा एक-रस रहेगा; फिर ऐसी एक-रस वस्तुको यदि परिशुद्ध मानते हैं, तो वह जन्म-मरण के फेरमें कैसे पड़ सकती है? यदि अशुद्ध है, तो स्वभावतः अशुद्ध होनेसे उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? नित्य कूटस्थ होनेपर संस्कारकी छाप उसपर नहीं पड़ सकती, यह हम पहले कह चुके हैं। यदि छापके लिए मनको मानते हैं, तो आत्माको माननेकी ज़रूरत ही क्या रह जाती है?

प्रश्न हो सकता है कि यदि मन तथा आत्मा एक है, और वह क्षणिक है, तो अनेकतामें—'मैं पहले था, मैं अब हूँ'—ऐसी एकताका भान क्यों होता है? इसका उत्तर है कि समुदायमें एकत्वकी बुद्धि दुनियाका यह सार्वभौमिक नियम है। हम संसारको जिस किसी चीज़को ले लें, सभी हज़ारों अणुओंसे बनी हैं, जिनके बीच काफ़ी अन्तर है। यह बात लोहे, प्लेटिनम, हीरे—सभी ठोस-से-ठोस वस्तुकी है। यदि हमारी दृष्टि उतनी सूक्ष्म होती, तो हम उन्हें ऐसे ही अलग-अलग देखते, जैसे पास जानेपर जंगलके वृक्ष। इस प्रकार दुनियाके सभी दृश्य पदार्थोंके मूलमें अनेकता होनेपर भी एकताका व्यवहार किया जाता है। अनगिनत टुकड़ोंके बने हुए शरीरको हम एक शरीर कहते हैं। अनेक वृक्षोंके बने जंगलको एक जंगल कहते हैं। अनेक तारोंके झुरमुटको एक तारा कहते हैं। हाँ, एक फ़र्क़ ज़रूर है। जहाँ शरीर, वन, तारोंमें अंशी और अंश एक कालमें और एक देशमें मौजूद रहते हैं, वहाँ मन प्रति क्षण एकके बाद एक उत्पन्न होता रहता है। इसके लिए अच्छा उदाहरण बनेठी, चलते वायुयानका पंखा, या चलती बिजलीका पंखा ले सकते हैं। बनेठीकी रोशनी, या पंखेका पंख जल्दी-जल्दी इतने सूक्ष्म कालमें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचता है कि हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते, और काल एक स्वतन्त्र मान बन उसे चक्रके रूपमें ला रखता है। इसी प्रकार मन भी इतना शीघ्र अपनी जगहपर दूसरे मनको उपस्थित कर रहा है कि बीचके अन्तरको हम नहीं ग्रहण कर पाते, और हमें चक्रकी एकताका भान होने लगता है। नदीकी धाराको भी तो आप एक कहते हैं, किन्तु क्या यह जल हज़ारों बिन्दुओंसे, और बिन्दु असंख्य उद्रजन, ओषजनके परमाणुओंसे, और परमाणु अनेक धनऋण विद्युत्कणोंसे (जिनके भीतर चक्कर काटनेके लिए काफ़ी अन्तर है), और फिर सूक्ष्मतम अनेकों न्यूट्रनोंसे नहीं बने हैं? वस्तुतः संसारमें सभी जगह समुदायहीको एक कहा जा रहा है। जब हमारी भाषाका यह एक सार्वभौमिक प्रयोग है, तब क्षणिक मनकी सन्तति (=प्रवाह)को साधारण दृष्टिसे हम एक कहने लगें, तो आश्चर्य क्या है? आश्चर्य तो यह है कि सारी दुनियामें एक कही जानेवाली चीज़ोंको समूहित देखते हुए भी पूछते हैं—समूहित है, तो आत्मा क्यों एक मालूम होती है? सवाल हो सकता है—जब आत्मा क्षणिक है, दूसरे क्षण वह रहता ही नहीं, तो उसकी पूर्णता और परिशुद्धि कैसे? उत्तर यह है कि हम मनको क्षणिक मानते हुए भी मनकी सन्ततिको क्षणिक नहीं मानते। गंगाका पानी, उसका आधार, दोनों कूल और बालू सभी बराबर बदल रहे हैं, तो भी सबका प्रवाह बना रहता है, जिसे हम एक नाम गंगा कहते हैं। इसी चित्त-सन्ततिकी परिशुद्धि और पूर्णता करनी होती है। जितनी ही चित्त-सन्तति राग, द्वेष, मोहके मलोंसे मुक्त होती है, उतना ही उस पुरुषके कायिक, वाचिक, मानसिक कर्म परिशुद्ध होते जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वह व्यक्ति अपने-परायेका उपकार करनेमें समर्थ होता है। जब उसमें राग-द्वेषका बंध नहीं रह जाता, तो व्यक्तिगत स्वार्थके केन्द्रपर केन्द्रित तृष्णा क्रमशः परिवार, ग्राम, देश, भूमंडल, प्राणिमात्रके स्वार्थको अपना बना, अपनी परिधिको अनन्त तक पहुँचा देती है। उस वक्त अनन्त परिधिवाली वह तृष्णा बन्धन-रहित हो तृष्णा ही नहीं रह जाती, उस पुरुषके लिए निर्वाणका मार्ग उन्मुक्त हो जाता है, और वह दुःखके फंदेसे छूट जाता है। मुक्ति तक पहुँचनेके लिए पुरुषको निजी स्वार्थकी सीमा पार कर लोकहितार्थ सब कुछ

उत्सर्ग करना पड़ता है (आप जातककी सुन्दर कहानियोंमें देखेंगे, पूर्णताके लिए बोधिसत्वको कितना उत्सर्ग करना पड़ता है)। तृष्णाको छोड़ना दुःखके मार्गको रोकना है, क्योंकि दुनियामें अधिकांश दुःख तृष्णा और स्वार्थके कारण ही तो हैं ?

इस प्रकार मनके क्षणिक होने पर, चूँकि चित्त-सन्तति क्षणिक नहीं है, इसलिए उसकी पूर्णता और परिशुद्धि करनी पड़ती है। वस्तुतः यदि आत्माको नित्य कूटस्थ आत्मा न मान, उसके स्थान पर क्षण-क्षण उत्पन्न होनेवाले चित्तोंकी सन्ततिको माना जाय, तो शब्द पर हमारा कोई आग्रह नहीं है। चूँकि आत्म शब्द नित्य चेतन वस्तुके लिए व्यवहार होता था, इसलिए बुद्धने अन्-आत्म शब्दका प्रयोग किया।

(३) किसी ग्रन्थको स्वतः प्रमाण न मानना

स्वतः प्रमाण होनेका दावा करनेवाला सिर्फ एक ग्रन्थ नहीं है। सभी धर्मवाले अपने-अपने ग्रन्थको स्वतः प्रमाण मानते और मनवानेकी कोशिश करते हैं। ब्राह्मण वेदको स्वतः प्रमाण मानते हैं, जिसकी बहुतसी बातें अन्य धर्मवालोंकी पुस्तकों एवं विज्ञानकी कितनी ही प्रयोग द्वारा सिद्ध बातोंके विरुद्ध पड़ती हैं। फिर ऐसा ग्रन्थ स्वतः प्रमाण कैसे माना जा सकता है ? यदि कहो कि वेद विज्ञानके प्रयोग-सिद्ध सिद्धान्तोंके विरुद्ध नहीं, तो सवाल होगा—यह कैसे मालूम ? इसकी सिद्धिके लिए अन्तमें बुद्धिका ही आश्रय लेना पड़ेगा। फिर क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि वेदकी प्रामाणिकता भी बुद्धिपर निर्भर है ? फिर तो वेदकी अपेक्षा बुद्धि ही स्वतः प्रमाण हुई। जो बात यहाँ वेदके बारेमें कही गई, वही बाइबिल, अंजील, कुरान आदि स्वतः प्रमाण मानी जाने-वाली पुस्तकोंके बारेमें भी समझना चाहिए। वस्तुतः जब ईश्वर ही नहीं, तो ईश्वरकी पुस्तक कहाँसे होगी ?

पुस्तकोंके स्वतः प्रमाण माननेसे दुनियामें कितने भयंकर अत्याचार हुए हैं। गेलेलियो-की यह दुर्गति न होती, यदि बाइबिलको स्वतः प्रमाण नहीं माना जाता। और भी कितने ही वैज्ञानिकोंको जानसे हाथ न धोना पड़ता, यदि बाइबिलको स्वतः प्रमाण न माना जाता। यवन तत्ववेत्ताओंके सहस्राब्दियोंके परिश्रम ग्रन्थरूपमें जिस सिकन्दरियाके पुस्तकालयमें सुरक्षित थे, उनको जलाकर ख़ाक न किया गया होता, यदि मुसलमान विजेता कुरानको स्वतः प्रमाण न मानते। किसी ग्रन्थका स्वतः प्रमाण मानना असहिष्णुताका कारण होता है; इसने दुनियामें हज़ारों वर्षोंसे मनुष्य-जातिको धर्मान्धता, मिथ्या-विश्वास और मानसिक दासताके गढ़ेमें ही नहीं गिरा रखा है, बल्कि इसने ज्ञानके प्रसारमें रुकावट पैदा करनेके साथ ख़ूनसे भी धरतीको रँगनेमें मदद दी है। ईसाई धर्मयुद्ध क्या थे, बाइबिल और कुरानके स्वतः प्रमाण होनेके झगड़ेके परिणाम।

किसी ग्रन्थका स्वतः प्रमाण मानना, उसमें वर्णित विषयोंपर सन्देह न कर आगेकी जिज्ञासाको रोक देना है। जिज्ञासा ही दुनियाके बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कारोंके करनेमें कारण हुई है। यदि गेलेलियो बाइबिलके कहे अनुसार पृथिवीको चिपटी मान लेता, तो उसे पृथिवीके गोल होनेके प्रमाणोंका भान न होता। यदि केप्लर बाइबिलके सूर्यभ्रमणको निर्भ्रान्त मान लेता, तो पृथिवीके घूमनेके अपने तीन नियमोंका कहाँसे आविष्कार करता ? वस्तुतः ग्रन्थके स्वतः प्रमाण माननेपर न्यूटन गुरुत्वाकर्षणका पता न लगा सकता, और न आइन्स्टाइन उसके संशोधक सापेक्षताके महान् सिद्धान्तका आविष्कार कर सकता। वस्तुतः संसारमें विद्या, सभ्यता सम्बन्धी जितनी भी प्रगति हुई है, वह ग्रन्थोंके स्वतः प्रमाणके इनकारसे हुई है। व्यवहारमें कौन मनुष्य अपने धर्म-ग्रन्थकी स्वतः प्रामाणिकता मानता है ? ग्रन्थ अपने-अपने समयकी रूढ़ियों, अन्ध-विश्वासों और अज्ञताओंसे जकड़े होते हैं। वह अपने समयके धार्मिक, सामाजिक एवं राज-

नैतिक व्यवहारोंके परिपोषक होते हैं। सहस्राब्दियों बाद यह बातें मरी हुई रहती हैं, तो भी यह मरे मुर्देको गले मढ़ना चाहते हैं। सेन्टपालके समय स्त्रियोंका सिर ढकना उस समयके फैशनके अनुसार अच्छा समझा जाता हो, किन्तु उस लिखावटके कारण आज युरोपकी स्त्रियोंको गिर्जेमें और न्यायालयमें कसम खाते वक्त टोपी लगानेपर मजबूर क्यों किया जाय, जब कि दूसरी जगह समाज उसकी आवश्यकता नहीं समझता है ?

ग्रन्थके स्वतः प्रमाण होनेके लिए उसके कर्ताको सर्वज्ञ मानना पड़ेगा—सर्वज्ञ भी सभी देश, सभी काल, सभी वस्तुके सम्बन्धमें। फिर यदि कोई सर्वज्ञ हमारे पैदा होनेसे हजार वर्ष पूर्व हमारे द्वारा किये जानेवाले अच्छे-बुरे सभी कर्मोंको जानता था, तब तो हम आज वैसा करनेपर मजबूर हैं, अन्यथा उसकी सर्वज्ञता झूठ हो जायगी। फिर मनुष्य ऐसे सर्वज्ञके हाथमें क्या कठपुतली मात्र नहीं है ? फिर कठपुतलीको अपने लिये अच्छा-बुरा काम चुनने और करनेका क्या अधिकार ? और तब ऐसे धर्म उसके ग्रन्थ और उसमें कही गई शिक्षाओंका प्रयोजन क्या ?

परिशुद्ध और मुक्त बननेके लिए कर्म करनेमें मनुष्यका स्वतन्त्र होना ज़रूरी है। कर्म करनेकी स्वतन्त्रताके लिए बुद्धिका स्वतन्त्र होना ज़रूरी है। बुद्धि-स्वातंत्र्यके लिए किसी ग्रन्थकी परतन्त्रताका न होना आवश्यक है। वस्तुतः किसी ग्रन्थकी प्रामाणिकता उसके बुद्धिपूर्वक होनेपर निर्भर है, न कि बुद्धिकी प्रामाणिकता ग्रन्थपर।

उक्त तीन अस्वीकारात्मक बातें हैं, जिन्हें बुद्ध-धर्म मानता है।

(४) जीवन-प्रवाहको इस शरीरके पूर्व और पश्चात् भी मानना

बच्चेकी उत्पत्तिके साथ उसके जीवनका आरम्भ होता है। बच्चा क्या है ? शरीर और मनका समुदाय। शरीर भी कोई एक इकाई नहीं है, बल्कि एक कालमें भी असंख्य अणुओंका समुदाय। यह अणु हर क्षण बदल रहे हैं, और उनकी जगह उनके समान दूसरे अणु उत्पन्न हो रहे हैं। इस प्रकार क्षण-क्षण शरीरमें परिवर्तन हो रहा है। वर्षों बाद वस्तुतः वही शरीर नहीं रहता, किन्तु परिवर्तन सदृश परमाणुओं द्वारा होता है, इसलिए हम कहते हैं—यह वही है। जो बात यहाँ शरीरकी है, वही मनपर भी लागू होती है, फ़र्क यही है कि मन सूक्ष्म है, उसका परिवर्तन भी सूक्ष्म है, और पूर्वापर रूपोंका भेद भी सूक्ष्म है, इसलिए उस भेदका समझना दुष्कर है। आत्मा और मन एक ही हैं, और आत्मा क्षण-क्षण बदल रहा है, यह हम दूसरी जगह कह आये हैं।

शरीर और मन (= आत्मा) दोनों बदल रहे हैं। किसी क्षणके बालकके जीवनको ले लीजिए, वह अपने पूर्वके जीवनांशके प्रभावसे प्रभावित मिलेगा। क ख सीखनेसे लेकर बीचकी श्रेणियोंसे होता हुआ जब वह एम० ए० पास हो जाता है, उसके मनकी सभी परवर्ती अवस्था उसकी पूर्ववर्ती अवस्थाका परिणाम है। यहाँ हम किसी बिचली एक कड़ीको छोड़ नहीं सकते। बिना मैट्रिकसे गुज़रे कैसे कोई एम०ए० में पहुँच सकता है ? इस प्रकार कार्य-कारण-शृंखला जन्मसे मरण तक अटूट दिखाई पड़ती है। प्रश्न है, जब जीवन इतने लम्बे समय तक कार्य-कारण-सम्बन्धपर अवलम्बित मालूम होता है और वहाँ कोई स्थिति आकस्मिक नहीं मिलती, तो जीवनके आरम्भमें उसमें कार्य-कारण नियमको अस्वीकार कर क्या हम उसे आकस्मिक नहीं मान रहे हैं ? आकस्मिकता कोई सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि उसमें कार्य-कारणके नियमोंसे ही इनकार कर देना होता है, जिसके बिना कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती। यदि कहें—माता-पिताका शरीर जैसे अपने अनुरूप पुत्रके शरीरको जन्म देता है, वैसे ही उनका मन तदनुरूप पुत्रके मनको जन्म देता है, तो कुछ हद तक ठीक होनेपर भी यह बात सर्वांशमें ठीक नहीं जँचती। यदि ऐसा होता, तो मन्दबुद्धि माता-पिताओंको प्रतिभाशाली पुत्र, ऐसे ही प्रतिभाशाली माता-पिताओंको

मन्दबुद्धि पुत्र न उत्पन्न होते। पंडितकी सन्तान मूर्ख बहुधा देखी जाती है। ये दिक्कतें हट जाती हैं, यदि हम जीवन-प्रवाहको इस शरीरके पहलेसे मान लें। फिर तो हम कह सकते हैं, हर एक पूर्व जीवन परवर्ती जीवनको निर्माण करता है। जिस प्रकार खानसे निकला लोहा, पिघलाकर बना कच्चा लोहा और अनेकों बार ठंडा और गरम करके बना फौलाद तीनों ही लोहे हैं, तो भी उनमें संस्कारकी मात्रा जैसी कम-ज़्यादा है, उसीके अनुसार हम उन्हें कम-अधिक संस्कृत पाते हैं। प्रतिभाशाली बालककी बुद्धि फौलादकी तरह पहलेके चिर-अभ्याससे सुसंस्कृत है। मानसिक अभ्यासका यद्यपि स्मृतिके रूपमें सर्वथा उपस्थित रहना अत्यावश्यक नहीं है, परन्तु तदनुसार न्यूनाधिक संस्कृत होना तो बहुत ज़रूरी है। इस जन्ममें भी कालेज छोड़नेके बाद, कुछ ही वर्षोंमें पाठ्य-पुस्तकोंके रटे हुए बहुतसे नियम, सूत्र भूल जाते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सारे अध्ययनका परिश्रम व्यर्थ जाता है। ताजे घड़ेमें कुछ दिन रखकर निकाल लिये गये घीकी भाँति, भूल जानेपर भी जो विद्याध्ययन-संस्कार मनके भीतर समा गया रहता है, वही शिक्षाका फल है। कालेज छोड़े वर्षों हो जाने, एवं पढ़ी बातोंको भूल जानेपर भी, जैसे मनुष्यकी मानसिक संस्कृति उसके पूर्वके विद्याभ्यासको प्रमाणित करती है; उसी प्रकार शैशवमें झलकनेवाले प्रतिभाको क्यों न पूर्वके अभ्यासका परिणाम माना जाय? वस्तुतः आनुवंशिकता और वातावरण मानसिक शक्तिके जितने अंशके कारण नहीं हैं—और ऐसे अंश काफी हैं (मेधाविता-मन्दबुद्धिता, भद्रता-नृशंसता आदि कितने ही अपैतृक गुण मनुष्यमें अकसर दिखाई पड़ते हैं) उनका कारण इससे पूर्वके जीवन-प्रवाहमें ढूँढना पड़ेगा। एक तरुण बड़ी तपस्यासे अध्ययन कर जिस समय उत्तम श्रेणीमें एम०ए० पास करता है, उसी समय अपने परिश्रमका पारितोषिक पाये बिना उसका यह जीवन समाप्त हो जाता है; उसके इस परिश्रमको शरीरके साथ विनष्ट हो गया माननेकी अपेक्षा क्या यह अच्छा नहीं है कि उसे प्रतिभाशाली शिशुके साथ जोड़ दिया जाय? अपंडित माता-पिताके असाधारण गणितज्ञ, संगीतज्ञ शिशु देखे गये हैं। उक्त क्रमसे विचारनेपर हमें मालूम होता है कि हमारा इस शरीरका जीवन-प्रवाह एक सुदीर्घ जीवन-प्रवाहका छोटासा बीचका अंश है, जिसका पूर्वकालीन प्रवाह चिरकालसे आ रहा है, और परकालीन भी चिरकाल तक रहेगा। चिरकाल ही हम कह सकते हैं, क्योंकि अनन्तकाल कहनेपर अनन्तकालसे संचित राशिमें कुछ वर्षोंका संचित संस्कार कोई विशेष प्रभाव नहीं रख सकता, जैसे खारे समुद्रमें एक छोटीसी मिश्रीकी डली। जीवनमें हम प्रभाव होता देखते हैं, और व्यक्ति और समाज बेहतर बननेकी इच्छा रखकर सभी प्रयत्न कर सकते हैं, यदि जीवनकी संस्कृतिको अनन्तकालसे प्रयत्नका नहीं, बल्कि एक परिमित कालके प्रयत्नका परिणाम मान लें। वस्तुतः अनन्तकाल और अकाल दोनों ही भिन्न-भिन्न मानसिक संस्कृतियोंके भेदको आकस्मिक बना देते हैं। जीवन-प्रवाह इस शरीरसे पूर्वसे आ रहा है, और पीछे भी रहेगा, तो भी अनादि और अनन्त नहीं है। इसका आरम्भ तृष्णा या स्वार्थपरतासे है, और तृष्णाके क्षयके साथ इसका क्षय हो जाता है।

जीवन-प्रवाहको इस शरीरसे पूर्व और पश्चात् काल भी माननेपर हम निकम्मे-से-निकम्मे आदमीको भी बेहतर बननेकी आशा दिला सकते हैं। किसी ऊँचे आदर्शके लिए, लोक, समाज या दूसरे व्यक्तिके उत्कर्षके लिए, हमी अपने इस जीवनका उत्सर्ग तक कर देनेवाले पुरुषोंकी पर्याप्त संख्या मिल सकती है। सभी मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके दायित्वको पूरी तरह समझकर दूसरेके अपकारसे अपनेको रोकनेके लिए तैयार हो सकता है। समाजके हितके लिए व्यक्तियोंका आत्म-बलिदानके लिए तैयार रहना एवं समाजके अपकार करनेसे व्यक्तियोंका आत्म-निग्रह ये दोनों बातें लोकको बेहतर बनानेके लिए अनिवार्यतया आवश्यक हैं। लोकोन्नति वस्तुतः इन्हीं दो

बातोंपर निर्भर है। इसी शरीरको आदिम और अन्तिम मान लेनेपर उन दोनों बातोंके लिए आदमीको प्रेरक वस्तुका अत्यन्ताभाव यदि नहीं, तो इतना अभाव ज़रूर हो जायगा, जिससे ऊपर बढ़नेकी गति रुक जायगी, और फलतः पीछेकी ओर गिरावट आरम्भ हो जायगी।

बुद्धकी शिक्षा और दर्शन इन चार सिद्धान्तोंपर अवलम्बित हैं। पहले तीनों सिद्धान्त बौद्धधर्मको दुनियाके अन्य धर्मोंसे पृथक् करते हैं। ये तीनों सिद्धान्त जड़वाद और बुद्ध-धर्ममें समान हैं, किन्तु चौथी बात, अर्थात् जीवन-प्रवाहको इसी शरीर तक परिसीमित न मानना, इसे जड़वादसे पृथक् करता है, और साथ ही व्यक्तिके लिए भविष्यको आशामय बनानेका यह एक सुंदर उपाय है, जिसके बिना किसी आदर्शवादका कार्यरूपमें परिणत होना दुष्कर है।

चारों सिद्धान्तोंमें पहले तीन, तीन बड़ी परतन्त्रताओंसे मनुष्यको मुक्त कराते हैं। चौथा आशामय भविष्यका सन्देश देता है और शील-सदाचारके लिए नींव बनता है। चारोंका जिसमें एकत्र सम्मेलन है, वही बुद्ध-धर्म है।

राहुल सांकृत्यायन

सुत्तन्त(=सूत्र)-सूची

२—मज्झिम-पण्णासक

ग

सुत्तन्त-(= सूत्र) अनुक्रमणी

सुत्तन्त-(= सूत्र) अनुक्रमणी

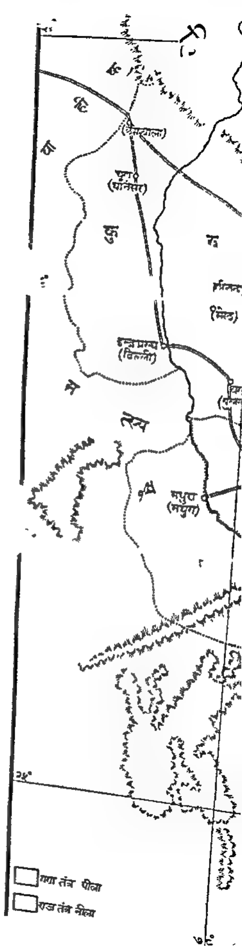
वग्ग-अनुक्रमणी

विषय-सूची

वग्ग-अनु

	संख्या
अनुपद	१२ (३।२)
ओपम्म	३ (१।३)
गहपति	६ (२।१)
देवदह	११ (३।१)
परिब्बाजक	८ (२।३)
ब्राह्मण	१० (२।५)
भिक्खु	७ (२।२)
मूलपरियाय	१ (१।१)

विष



वग्ग-अनुक्रमणी

विषय-सूची

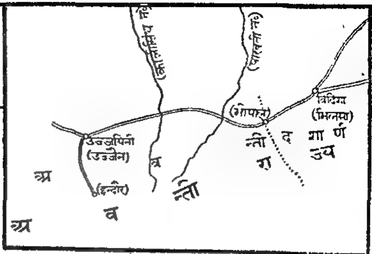
बुद्धकालीन ५००ई०पू०

भारत का मध्य मंडल

मान

० १६ ३२ ४८ ६४ मी०

८४°



८६°

२८°

(काठमांडो)

कपिलवस्तु

लुम्बिनी

मिथिला
(जनकपुर)

२७°

वैशाली
(बसाढ़)

पाटलिपुत्र
(पटना)

नालन्दा
(बड़गाँव)

चम्पा
(भागलपुर)

उरुवेला

२५°

८४°

८६°

मज्झिम-निकाय

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा संबुद्धस्स

१—मूलपरियाय-सुत्तन्त (१।१।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् उक्कट्ठाके सुभगवनमें सालराजके नीचे विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ! सारे धर्मोंके मूल नामक (=मूलपरियाय) (उपदेश) को तुम्हें उपदेशता हूँ। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें (धारण) करो, कहता हूँ।"

"हाँ, भन्ते!"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ! आर्योंके दर्शनसे वंचित, आर्यधर्मसे अपरिचित, आर्य-धर्ममें अविनीत (=न पहुँचे); सत्पुरुषों के दर्शनसे वंचित, सत्पुरुषोंके धर्मसे अपरिचित, सत्पुरुषोंके धर्ममें अविनीत, अश्रुतवान् (=अज्ञ), पृथग्जन (=अनाड़ी) पृथ्वीको पृथ्वीके तौर पर समझता है, पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर समझकर पृथ्वी मानता है, पृथिवी-द्वारा मानता है, पृथिवीसे मानता है, पृथ्वी मेरी है—मानता है, पृथ्वीका अभिनन्दन करता है। सो किसलिये?—उसे ठीकसे मालूम नहीं है—कहूँगा। पानीको पानीके तौरपर समझता है ०[1]। तेजको तेजके तौरपर समझता है ०। वायुको वायुके तौरपर समझता है ०। भूतों (=भूत-प्रेतों)को भूतके तौरपर समझता है ०। देवताओंको देवताके तौरपर समझता है ०। प्रजापतिको प्रजापतिके तौरपर समझता है ०। ब्रह्माको ब्रह्माके तौरपर समझता है ०। आभास्वर (देवताओं)को आभास्वरके तौरपर समझता है ०। सुभकिण्ह (=शुभकृत्स्न देवताओं)को, सुभकिण्हके तौरपर समझता है ०। वेहप्फल (=बृहत्फल देवताओं)को वेहप्फलके तौरपर समझता है ०। अभिभू (देवता)को अभिभूके तौरपर समझता है ०। आकासानंचायतन (=अनन्त आकाशके निवासी देवताओं)को आकासानंचायतनके तौरपर समझता है ०। विञ्ञाणंचायतन (=अनन्त विज्ञान जिनका घर है, उन देवताओं)को विञ्ञाणंचायतनके तौरपर समझता है ०। आकिंचञ्ञायतन (=जिनका आयतन कुछ नहीं है, उन देवताओं)को आकिंचञ्ञायतनके तौरपर समझता है ०। नेवसञ्ञानासञ्ञा-यतन [=जिनको न संज्ञा (=होश) है, न असंज्ञा, उन देवताओं]को नेवसञ्ञायतनके तौरपर समझता है ०। दृष्ट (=देखे)को दृष्टके तौरपर समझता है ०। श्रुत (=सुने)को श्रुतके तौरपर समझता है ०। स्मृत (=यादमें आये)को स्मृतके तौरपर समझता है ०। विज्ञात

---

[1] जहाँ (०) चिन्ह हो, वहाँ पहिले आये वाक्यसमूहको दुहराना चाहिये।

(=जाने गये)को विज्ञातके तौरपर समझता है ०। एकत्त्व (=अकेलेपन)को एकत्वके तौरपर समझता है ०। नानात्त्व (=अनेकपन)को नानात्त्वके तौरपर समझता है ०। सर्व (=सारे)को सर्वके तौरपर समझता है ०। निर्वाणको निर्वाणके तौरपर समझता है, निर्वाणको निर्वाणके तौरपर समझकर निर्वाणको मानता है, निर्वाणद्वारा मानता है, निर्वाणसे मानता है, निर्वाण मेरा है—मानता है, निर्वाणको अभिनन्दन करता है। सो किसलिये?—उसे ठीकसे मालूम नहीं है—कहूँगा।

अश्रुतवान् पृथग्जनके द्वारा प्रथम भूमिपरिच्छेद।

"भिक्षुओ! यह भिक्षु भी, जोकि सेख्य (=शैक्ष्य[1]=जिसको अभी सीखना बाकी है) पहुँचे-हुये-मनवाला नहीं है, सर्वोत्तम योगक्षेम (=कल्याणकारी पद)की चाहमें विहरता है, यह भी पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर समझता है; पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर समझकर या तो पृथ्वी मानता है, या पृथ्वीद्वारा मानता है, या पृथ्वीसे मानता है, या पृथ्वी मेरी है—ऐसा मानता है, या पृथ्वीका अभिनंदन करता है। सो किसलिये?—(अभी) उसे ठीकसे मालूम करना है—कहूँगा। पानीको ०। तेजको ०। वायुको ०। भूतोंको ०। देवताओंको ०। प्रजापतिको ०। ब्रह्माको ०। आभास्वरोंको ०। शुभकृत्स्नोंको ०। बृहत्फलोंको ०। अभिभूको ०। आकाशानंत्याय-तनको ०। विज्ञानंत्यायतनको ०। आकिंचन्यायतनको ०। नैवसंज्ञानासंज्ञायतनको ०। दृष्ट ०। श्रुत ०। स्मृत ०। विज्ञात ०। एकत्व ०। नानात्व ०। सर्व ०। निर्वाण ०।

शैक्ष्यके द्वारा द्वितीय भूमिपरिच्छेद।

"भिक्षुओ! यह भिक्षु भी, जोकि अर्हत् है, क्षीणास्रव (=राग आदिसे मुक्त), (ब्रह्मचर्य-) वास-समाप्त-कर-चुका, कृतकरणीय, व अवहितभार (=भारको फेंक चुका), सच्चे-पदार्थको-पा चुका, भव (=संसार)के बंधनोंको काट चुका, यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्तहो चुका है; यह भी पृथ्वीको पृथ्वीके तौर पर पहिचानता है; पृथ्वीको पृथ्वीके तौर पर पहिचानकर न पृथ्वीको मानता है, न पृथ्वीद्वारा मानता है, न पृथ्वीसे मानता है, न 'पृथ्वी मेरी है'—मानता है, न पृथ्वीको अभिनन्दन करता है। सो किस हेतुसे?—उसे (यह) ठीकसे मालूम है—कहूँगा। पानी ०। तेज ०। ०।

क्षीणास्रवके द्वारा पहिले प्रकारसे तृतीय भूमिपरिच्छेद।

"भिक्षुओ! यह भिक्षु भी, जोकि अर्हत क्षीणास्रव है ०; यह भी पृथ्वीको पृथ्वीके तौर पर पहिचानता है ० पहिचानकर न पृथिवीको मानता है, ०। सो किस हेतुसे?—रागके नष्ट हो जानेसे, वीतराग होनेसे—कहूँगा। पानी ०। ०।

क्षीणास्रवके द्वारा द्वितीय प्रकारसे चतुर्थ भूमिपरिच्छेद।

"भिक्षुओ! यह भिक्षु भी, जोकि अर्हत् क्षीणास्रव है ०; यह भी पृथिवीको पृथिवीके तौर पर पहिचानता है, ० पहिचानकर न [illegible] है [illegible] किस वजहसे?—द्वेषके नष्ट हो जानेसे, वीतद्वेष होनेसे—कहूँगा। पानी [illegible]

क्षीणास्रवके द्वारा तृतीय प्रकारसे पंचम भूमिपरिच्छेद ।

"भिक्षुओ ! यह भिक्षुभी, जोकि अर्हत् क्षीणास्रव है ० ; यह भी पृथिवीको पृथिवीके तौर पर पहिचानता है, ० पहिचानकर न पृथिवीको मानता है ० । सो किस वजहसे ?—मोहके नष्ट हो जानेसे ; वीतमोह होनेसे—कहूँगा । पानी ० । ० ।

क्षीणास्रव-द्वारा चौथे प्रकारसे षष्ठ भूमिपरिच्छेद ।

"भिक्षुओ ! तथागत[1] अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध (= यथार्थ परमज्ञानी) भी पृथिवीको पृथिवीके तौर पर पहिचानते हैं, ० पहिचानकर न पृथिवीको मानते हैं ० । सो किस वजहसे ? तथागतने ठीकसे जान लिया है—कहूँगा । पानी ० । ० ।

शास्ता (= उपदेष्टा=बुद्ध)-द्वारा पहिले प्रकारसे सप्तम भूमिपरिच्छेद ।

"भिक्षुओ ! तथागत ० भी, ० पहिचानकर न पृथिवीको मानते हैं ० । सो किस वजहसे ? नन्दी (= तृष्णा) दुःखका मूल है—ऐसा जानकर, 'भव (= संसार)में जन्मने वालेको जरा और मरण (अवश्यंभावी) है' । इसलिये भिक्षुओ ! तथागत सारी ही तृष्णाओंके क्षय, विराग, निरोध, त्याग, विसर्जनसे, सर्वोत्तम सम्यक्-संबोधि (= यथार्थ परमज्ञान)के जानकार (= अभिसंबुद्ध= संबुद्ध) हैं—कहता हूँ । पानी ० । ० ।"

शास्ताद्वारा दूसरे प्रकारसे अष्टम भूमिपरिच्छेद ।

—भगवान्‌ने यह कहा, (किन्तु) उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन नहीं किया ।[1]

२—सब्बासव-सुत्तन्त (१।१।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ ! सारे आस्रवों (= स· आसव)के संवर (= रोक) नामक (उपदेश)को तुम्हें उपदेशता हूँ। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें (धारण) करो, कहता हूँ।"

"हाँ भन्ते !"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ ! जानते हुये देखते हुये, मैं आस्रवों (= मलों)के क्षय (के बारेमें) कहता हूँ, बिना जाने बिना देखे नहीं। भिक्षुओ ! क्या जान क्या देख, आस्रवोंका क्षय होता है?—योनिसोमनसिकार (= ठीकसे मनमें धारण करना), और अयोनिसोमनसिकार (= बेठीकसे मनमें धारण करना)। बेठीकसे मनमें (धारण) करनेसे, न-उत्पन्न आस्रव उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न आस्रव बढ़ते हैं। ठीकसे मनमें (धारण) करनेसे, न-उत्पन्न आस्रव उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न आस्रव नष्ट होते हैं।

"भिक्षुओ ! (१) (कोई कोई) आस्रव दर्शन (= विचार)से प्रहातव्य (= त्यागे जा सकते) हैं; (२) (कोई कोई) संवरसे त्यागे जा सकते हैं; (३) (कोई कोई) आस्रव प्रतिसेवन (= सेवन)से त्यागे जा सकते हैं; (४) (कोई कोई) आस्रव अधिवासन (= स्वीकार) करने से त्यागे जा सकते हैं; (५) (कोई कोई) आस्रव परिवर्जन (= छोड़ने)से त्यागे जा सकते हैं; (६) (कोई कोई) आस्रव विनोदन (= हटाने)से त्यागे जा सकते हैं; (७) (कोई कोई) आस्रव (हैं, जो) भावनासे त्यागे जा सकते हैं।

१. "भिक्षुओ ! कौनसे आस्रव दर्शनसे प्रहातव्य हैं?—भिक्षुओ ! अज्ञ, अनाड़ी०[1] (जन) मनमें (धारण) करने योग्य धर्मों (= पदार्थों)को नहीं जानता, (और) न मनमें न (धारण) करने योग्य धर्मोंको जानता है। वह मनसिकरणीय (= मनमें धारण करने योग्य) धर्मोंको न जान, अ-मनसिकरणीय धर्मोंको न जान; जो धर्म मनसिकरणीय नहीं हैं, उन्हें मनमें (धारण) करता है, और जो धर्म मनसिकरणीय हैं, उन्हें मनमें नहीं करता।

क. भिक्षुओ ! कौनसे धर्म न मनसिकरणीय हैं, जिन्हें कि वह मनमें करता है?—भिक्षुओ ! (जिन) धर्मोंके मनमें करनेसे उसके (भीतर) अनुत्पन्न काम-आस्रव (= कामना रूपी मल)

---

[1] देखो पृष्ठ ३।

उत्पन्न होता है, और उत्पन्न काम-आस्रव बढ़ता है; अनुत्पन्न भव-आस्रव (= जन्मनेकी इच्छा रूपी मल) उत्पन्न होता है, और उत्पन्न भव-आस्रव बढ़ता है; अनुत्पन्न अविद्या-आस्रव (= अज्ञान रूपी मल) उत्पन्न होता है ०। ये धर्म मनसिकरणीय नहीं हैं, जिनको कि वह मनमें करता है।

ख. "भिक्षुओ ! कौनसे धर्म मनसिकरणीय हैं; जिनको कि वह मनमें नहीं करता ?— भिक्षुओ ! (जिन) धर्मोंको मनमें करनेसे, उस (मनुष्यके भीतर) अनुत्पन्न काम-आस्रव उत्पन्न नहीं होता, और उत्पन्न…नष्ट हो जाता है; अनुत्पन्न भव-आस्रव ०; अनुत्पन्न अविद्या-आस्रव ० नष्ट हो जाता है।—ये धर्म मनसिकरणीय हैं, जिनको कि वह मनमें नहीं करता।

ग. "अ-मनसिकरणीय धर्मोंके मनमें करनेसे, (तथा) मनसिकरणीय धर्मोंके मनमें न करनेसे, उस (पुरुषके भीतर) अनुत्पन्न आस्रव उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न आस्रव वृद्धिको प्राप्त होते हैं। वह (पुरुष) इस प्रकार बेठीक तरहसे मनमें (चिन्तन) करता है—(क) क्या मैं अतीतकालमें था ? क्या मैं नहीं था अतीतकालमें ? मैं क्या था अतीतकालमें ? मैं कैसा था अतीतकालमें ? अतीतकालमें मैं क्या होकर क्या हुआ था ? (ख) क्या मैं भविष्यकालमें होऊँगा ? क्या मैं भविष्यकालमें न होऊँगा ? मैं भविष्यकालमें क्या होऊँगा ? मैं भविष्यकालमें कैसा होऊँगा ? मैं भविष्यकालमें क्या होकर क्या होऊँगा ? (ग) अब (इस) वर्तमानकालमें अपने भीतर तर्क-वितर्क करता है—मैं हूँ न ? नहीं हूँ न ? मैं क्या हूँ ? मैं कैसा हूँ ? यह सत्व (= प्राणी) कहाँ से आया है ? वह कहाँ जानेवाला होगा ?

—"इस प्रकार बेठीक तौरसे मनमें (धारण) करनेसे छ दृष्टियों (= वादों, मतों)में से कोई एक दृष्टि उसे उत्पन्न होती है—(१) 'मेरा आत्मा है', इस प्रकारकी दृष्टि सत्य और दृढ़ (सिद्धान्त)के रूपमें उत्पन्न होती है। या (२) 'मेरे (भीतर) आत्मा नहीं है', इस प्रकारकी ०। (३) 'आत्माको ही आत्मा समझता हूँ,' ०। (४) 'आत्माको ही अनात्मा समझता हूँ', ०। (५) 'अनात्माको ही आत्मा समझता हूँ', ०। अथवा (६) उसकी दृष्टि (= मत) होती है—'जो यह मेरा आत्मा अनुभवकर्ता (वेदक), (तथा) अनुभव होने योग्य है, और तहाँ तहाँ (अपने) भले बुरे कर्मोंके विपाकको अनुभव करता है; वह यह मेरा आत्मा नित्य=ध्रुव= शाश्वत, अपरिवर्तन-शील (= अविपरिणामधर्मा) है, अनन्त वर्षों तक वैसा ही रहेगा'।

—"भिक्षुओ ! इसे कहते हैं दृष्टि-गत (= मतवाद) दृष्टि-गहन (= दृष्टिका घना जंगल), दृष्टिकी मरुभूमि (= दृष्टिकान्तार), दृष्टिका काँटा (= दृष्टि-विशूक), दृष्टिकी कुदान, दृष्टिका फंदा (= दृष्टि-संयोजन)। भिक्षुओ ! दृष्टिके फंदेमें फँसा अज्ञ अनाड़ी (पुरुष) जन्म, जरा, मरण, शोक, रोदन-क्रंदन, दुःख-दुर्मनस्कता और हैरानियोंसे नहीं छूटता, दुःखसे परिमुक्त नहीं होता—कहता हूँ।

"और भिक्षुओ ! जो आर्योंके दर्शनको प्राप्त, आर्यधर्मसे परिचित, आर्यधर्ममें नीत (= प्राप्त) है; सत्पुरुषोंके दर्शनको प्राप्त, सत्पुरुष-धर्मसे परिचित, सत्पुरुष-धर्ममें नीत, बहुश्रुत आर्य-श्रावक (= सन्मार्ग पर आरूढ़ पुरुष,) है, वह मनसिकरणीय धर्मोंको जानता है, और अ-मनसिकरणीय धर्मोंको (भी) जानता है। वह मनसिकरणीय…और अ-मनसिकरणीय धर्मोंको जान, जो धर्म मनसिकरणीय नहीं हैं, उन्हें…मनमें नहीं करता; जो धर्म मनसिकरणीय हैं, उन्हें… मनमें करता है।

क. "भिक्षुओ ! कौनसे धर्म मनसिकरणीय नहीं हैं…?—भिक्षुओ ! (जिन) धर्मोंके

मनमें करनेसे उस (पुरुषके भीतर) अनुत्पन्न काम-आस्रव उत्पन्न होता है ०[1] । ये धर्म मनसि-करणीय नहीं हैं, जिनको कि वह मनमें नहीं करता।

ख. "भिक्षुओ ! कौनसे धर्म मनसिकरणीय हैं, जिनको कि वह मनमें करता है ? ०[1] । ये धर्म मनसिकरणीय हैं, जिनको कि वह मनमें करता है।

ग. "अ-मनसिकरणीय धर्मोंको मनमें न करनेसे, (तथा) मनसिकरणीय धर्मोंको मनमें करनेसे, उस (पुरुषके भीतर) अ-उत्पन्न आस्रव उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न आस्रव नष्ट होते हैं। (तब) वह यह ठीकसे मनमें (ज्ञान) करता है—यह दुःख है,···यह दुःख-समुदय (= दुःखका कारण) है,···यह दुःख-निरोध (= दुःखका विनाश) है,···यह दुःख-निरोध की ओर लेजानेवाला मार्ग (= प्रतिपद्) है। इस प्रकार मनमें करनेपर उसके तीन संयोजन (= फंदे, बंधन)—(१) सत्कायदृष्टि (= कायाके भीतर एक नित्य आत्माकी सत्ताको मानना), (२) विचिकित्सा (= संशय), (३) शीलव्रत-परामर्श (= शील और व्रतका अभिमान)—छूट जाते हैं। —भिक्षुओ ! यह दर्शनसे प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

२. "भिक्षुओ ! कौनसे संवर (= ढाँकने, संयम करने) द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ (कोई) भिक्षु ठीकसे-ज्ञान (= प्रतिसंख्यान) कर, चक्षु (= आँख) इन्द्रियमें संयम करके विहरता है। (तब) चक्षु-इन्द्रियमें असंयम करके विहरनेपर, जो पीडा और दाह देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते, वह···संयम करके विहरनेपर उत्पन्न नहीं होते हैं। ० श्रोत्र-इन्द्रिय ०। ० घ्राण-इन्द्रिय ०। ० जिह्वा-इन्द्रिय ०। ० काय-इन्द्रिय ०। ० मन-इन्द्रियमें संयम करके ० पीडा और दाह देनेवाले आस्रव ० उत्पन्न नहीं होते।

"भिक्षुओ ! यह संवर-द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

३. "भिक्षुओ ! कौनसे प्रतिसेवन (= सेवन) द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—(क). भिक्षुओ ! यहाँ (कोई) भिक्षु ठीकसे जानकर (उतना ही) चीवर (= वस्त्र)का सेवन करता है, जितना कि सर्दी..गर्मीकी पीडा, और मक्खी मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप (= साँप बिच्छू)के आघातके रोकनेके लिये (आवश्यक) है, जितना लज्जास्थान ढाँकनेके लिये (आवश्यक) है। (ख). ठीकसे जानकर भिक्षान्न (= पिंडपात) सेवन करता है; क्रीडा, मद, मंडन-विभूषणके लिये न करके (उतना ही भिक्षान्न सेवन करता है) जितना कि इस शरीरकी स्थितिके लिये (आवश्यक है); (भूखके) प्रकोपके शमन करने तथा ब्रह्मचर्यमें सहायताके लिये (आवश्यक है)। (वह सोचते हुये—) पुरानी (कर्म-विपाक रूपी) वेदनाओं (= पीडाओं)को स्वीकार करूँगा, नई वेदनाओंको न उत्पन्न करूँगा; मेरी (शरीर-)यात्रा निर्दोष होगी, और विहार निर्द्वन्द्व होगा। (ग). ठीकसे जानकर (वैसेही) निवास-गेह (= शयनासन)का सेवन करता है; जोकि सर्दी, गर्मी ०[2] के आघातके रोकनेके लिये (आवश्यक) है। जो ऋतुकी पीडाको हटाने और एकान्त चिन्तनके लिये (उपयोगी) है। (घ). ठीकसे जानकर रोगीके लिये (उपयुक्त) पथ्य औषधकी वस्तुओंका सेवन करता है, जिससे कि उत्पन्न व्याधियाँ और पीडायें दूर हो परम निरोगताको प्राप्त हो। भिक्षुओ ! जिसके न सेवन करनेसे दाह और पीडा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और सेवन करनेसे···(वह) उत्पन्न नहीं होते;···यह प्रतिसेवनद्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

४. "भिक्षुओ ! कौनसे आस्रव अधिवासन (= स्वीकृति) द्वारा प्रहातव्य हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ (एक) भिक्षु ठीकसे जानकर, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मक्खी-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृपोंके

---

[1] देखो पृष्ठ ७। [2] देखो ऊपर।

आघातको सहनेमें समर्थ होता है; वाणीसे निकले दुर्वचन, तथा शरीरमें उत्पन्न ऐसी दुःखमय, तीव्र, तीक्ष्ण, कटुक, अवांछित, अरुचिकर, प्राणहर पीडाओंको स्वागत करनेवाले स्वभावका होता है। जिनके कि भिक्षुओ ! न अधिवासन (=स्वीकार) करनेसे दाह और पीडा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और अधिवासन करनेसे···(वह) उत्पन्न नहीं होते;···यह अधिवासन-द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

५. "भिक्षुओ ! कौनसे परिवर्जन (बँचने)द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ (एक) भिक्षु ठीकसे जानकर, चण्ड (=क्रूर) हाथीको (दूरसे) बँचता है, चण्ड घोड़े···, चण्ड बैल···, चण्ड कुत्ते···, साँप, ठाहूँ, काँटेकी बारी, दह, जलप्रपात, चन्दनिका (गड्हा), ओलिगल्ल (=गड्ही)से (बँचता है)। जैसे अनुचित आसनपर बैठे, जैसे अनुचित विचरण स्थानपर विचरते, जैसे बुरे मित्रोंको सेवन करते (देख) जानकर, समब्रह्मचारी (=एक जैसे मतपर आरूढ़ गुरुभाई) बुरे स्थानोंमें चले जायँ, ठीकसे जानकर, वैसे अनुचित आसन, वैसे अनुचित विचरण-स्थान, वैसे बुरे मित्रोंके सेवनसे, बँचता है। भिक्षुओ ! जिसके परिवर्जन न करनेसे दाह और पीडा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और परिवर्जन करनेसे···(वह) उत्पन्न नहीं होते, भिक्षुओ ! यह परिवर्जन द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

६. "भिक्षुओ ! कौनसे विनोदन (=हटाने)द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ (एक) भिक्षु ठीकसे जानकर, उत्पन्न हुये काम-वितर्क (=काम-वासना संबंधी संकल्प-विकल्प) का स्वागत नहीं करता, (उसे) छोड़ता है, हटाता है, अलग करता है, मिटाता है; उत्पन्न हुये व्यापाद-वितर्क (=द्रोहके ख्याल)का०; उत्पन्न हुये विहिंसा-वितर्क (=प्रतिहिंसाके ख्याल) का०; पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले पापी विचारों (=धर्मों)का ०। भिक्षुओ ! जिसके न हटानेसे दाह और पीडा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और विनोदन करनेसे···(वह) उत्पन्न नहीं होते;···यही (वह) विनोदनद्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

७. "भिक्षुओ ! कौनसे भावना (=चिंतन, ध्यान)द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ (एक) भिक्षु ठीकसे जानकर, विवेक-युक्त, विराग-युक्त, निरोध-युक्त, मुक्ति-परिणामवाले स्मृति-संबोध्यंग[1]की भावना करता है; ठीकसे जानकर, ० धर्मविचय-संबोध्यंगकी ०; ० वीर्य-संबोध्यंगकी ०; ० प्रीति-संबोध्यंगकी ०; प्रश्रब्धि-संबोध्यंगकी ०; ० समाधि-संबोध्यंग की ०; उपेक्षा-संबोध्यंगकी ० भावना करता है। भिक्षुओ ! जिसकी भावना न करनेसे ०;···यही (वह) भावनाद्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

"भिक्षुओ ! जब भिक्षुके दर्शन-द्वारा प्रहातव्य आस्रव दर्शनसे नष्ट होगये, संवर-द्वारा प्रहातव्य संवरसे ०, प्रतिसेवन-द्वारा प्रहातव्य प्रतिसेवनसे ०, अधिवासन-द्वारा प्रहातव्य अधिवासनसे०, परिवर्जन-द्वारा प्रहातव्य परिवर्जनसे ०, विनोदन-द्वारा प्रहातव्य विनोदनसे ०, भावना-द्वारा प्रहातव्य भावनासे नष्ट होगये; तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु सारे आस्रवों (=सब्बासव)के संवरसे युक्त हो विहर रहा है; उसने तृष्णाको छिन्न कर दिया, संयोजन(=बंधन)को मानाऽभिसमय (=अभिमानके दर्शन)से अच्छी तरह हटा दिया; (उसने) दुःखका अन्त कर दिया।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] संबोधि=परमज्ञान, उसके लिये उपयोगी अंग, संबोध्यंग। यह सात हैं—स्मृति, धर्मविचय आदि। धर्म-विचय=धर्म-अन्वेषण। वीर्य=उद्योग। प्रीति=सन्तोष। प्रश्रब्धि=शान्ति। समाधि=चित्तकी एकाग्रता।

३—धम्मदायाद-सुत्तन्त (१।१।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ! (तुम) मेरे धर्म-दायाद[1] (= धर्मकी वरासत पानेवाले) होओ, आमिष-दायाद (= धन-वित्तकी वरासत पानेवाले) मत बनो। तुमपर मेरी अनुकम्पा है। सो क्या?—(यही कि) मेरे शिष्य धर्मदायाद होवें, आमिष-दायाद नहीं। यदि भिक्षुओ! तुम मेरे आमिषदायाद होगे, धर्मदायाद नहीं; तो तुम लोग भी ताना मारे जाओगे—'शास्ता (= उपदेष्टा, बुद्ध)के श्रावक (= शिष्य) आमिष-दायाद होकर विहरते हैं, धर्मदायाद होकर नहीं।' मैं भी उसके कारण ताना मारा जाऊँगा—"शास्ताके श्रावक आमिषदायाद होकर विहरते हैं ०।" यदि भिक्षुओ! तुम मेरे धर्मदायाद होगे, आमिषदायाद नहीं, तो तुम भी ताना नहीं मारे जाओगे, (और लोग कहेंगे)—'शास्ताके श्रावक धर्मदायाद होकर विहरते हैं, आमिष-दायाद, होकर नहीं।' इससे मैं भी ताना नहीं मारा जाऊँगा, (और लोग कहेंगे)—०। इसलिये भिक्षुओ! (तुम) मेरे धर्मदायाद होओ ०। तुमपर मेरी अनुकम्पा है। ०।

"भिक्षुओ! (मान लो) मैं इस समय भली प्रकार, परिपूर्ण, यथेच्छ, तृप्त्यनुसार भोजन कर चुका हूँ, और मेरे पास अधिक भिक्षान्न बच गया हो। तब भूखकी दुर्बलतासे पीड़ित दो भिक्षु आवें। उनको मैं यह कहूँ—'भिक्षुओ! मैं ० तृप्त्यनुसार भोजन कर चुका हूँ, और मेरे पास०। यदि इच्छा हो, तो खाओ। अगर तुम न खाओगे, तो मैं अब इसे तृणरहित (स्थान)में डाल दूँगा, या प्राणिरहित 'जलमें छोड़ दूँगा'। तब एक भिक्षुके (मनमें) हो—'भगवान् ० तृप्त्यनुसार भोजन कर चुके हैं, और यह भिक्षान्न अधिक बच गया है। यदि हम न खायेंगे, तो भगवान् इसे तृणरहित ०। किन्तु, भगवान्‌का यह कहा हुआ है—भिक्षुओ! मेरे धर्मदायाद होओ ०। और यह भिक्षान्न तो एक आमिष ही है। क्यों न मैं इस भिक्षान्नको बिना खाये ही, इस भूखकी दुर्बलताके साथ इस दिन रातको बिता दूँ।' (ऐसा सोच) वह उस भिक्षान्नको बिना खाये, उस भूखकी दुर्बलताके साथ उस दिन-रातको बिता दे। और दूसरे भिक्षुके (मनमें) हो—'भगवान् तृप्त हो भोजन कर चुके हैं।०। तृणरहित ०। क्यों न मैं इस भिक्षान्नको खाकर, भूखकी दुर्बलताको दूरकर इस दिन रातको बिताऊँ।' (तब) वह उस भिक्षान्नको खाकर भूखकी दुर्बलता दूरकर उस दिन रातको बिताये। तो (उनमें), वह पहिला ही भिक्षु मुझे पूज्यतर और प्रशंस-

[1] दायाद=उत्तराधिकारी।

नीयतर है। सो किसलिये ?—भिक्षुओ ! ऐसा (करना) चिरकाल तक अलोभ, सन्तोष, सल्लेख (=तप), सुभरता (=सुगमता) और उद्योगपरायणताके लिये उस भिक्षुको (उपकारी) होगा। इसलिये, भिक्षुओ ! मेरे धर्मदायाद होओ०। तुमपर मेरी अनुकम्पा ०।०।"

भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर सुगत(=बुद्ध) आसनसे उठकर विहार(=कुटी)के अन्दर चले गये।

तब भगवान्‌के चले जानेके थोड़ी ही देर बाद, आयुष्मान् सारि-पुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"आवुसो,[1] भिक्षुओ !"

"आवुस !" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—"आवुसो ! किन (कारणों)से श्रावक (=शिष्य) शास्ता (=गुरु)से अलग हो विहरते, विवेक (=एकान्तचिन्तन)की शिक्षा नहीं ग्रहण करते, और किनसे श्रावक शास्तासे अलग हो विहरते विवेककी शिक्षा ग्रहण करते हैं ?"

"आवुस ! दूरसे भी इस भाषणका अर्थ जाननेके लिये हम आयुष्मान् सारिपुत्रके पास आते हैं। अच्छा हो, आयुष्मान् सारिपुत्र ही इस वचनका अर्थ कहें। आयुष्मान् सारिपुत्र (के मुख)से (उसे) सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

"तो, आवुसो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा, आवुस !" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—"आवुसो ! यहाँ (कोई) शिष्य, गुरुसे अलग हो विहरते विवेककी शिक्षा नहीं ग्रहण करते, जिन बातों (=धर्मों)को शास्ता (=गुरु)ने छोड़नेको कहा, उन्हें नहीं छोड़ते। जोड़ने-बटोरनेवाले होते हैं। भागनेमें पहिले, और एकान्त-चिन्तनमें जुआ-गिरादेनेवाले होते हैं।, इसमें स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु तीन कारणोंसे निन्दाके पात्र होते हैं—(१) गुरुसे अलग हो विहरते, शिष्य विवेककी शिक्षा नहीं ग्रहण करते; यह पहिला कारण है, स्थविर भिक्षुओंके निन्दनीय होनेका। (२) जिन बातोंको शास्ताने छोड़नेको कहा, उन्हें नहीं छोड़ते; यह दूसरा कारण है ०। (३) जोड़ने-बटोरनेवाले होते हैं ०, यह तीसरा कारण है ०।

"आवुसो ! इन तीन कारणोंसे स्थविर भिक्षु निन्दनीय होते हैं। आवुसो ! वहाँ मध्यम (वयस्क) भिक्षु तीन कारणोंसे ०। नव (-वयस्क) भिक्षु तीन कारणोंसे निन्दनीय होते हैं—(१) गुरुसे अलग ०। इन कारणोंसे आवुसो ! शास्ताके अभावमें विहार करते शिष्य विवेककी शिक्षा ग्रहण नहीं करते।

"आवुसो ! किन कारणोंसे शास्ताके अभावमें विहरते शिष्य विवेककी शिक्षाको ग्रहण करते हैं ?—आवुसो ! यहाँ शास्ताके अभावमें विहरते श्रावक विवेककी शिक्षा ग्रहण करते हैं। जिन बातोंको शास्ताने छोड़नेको कहा, उन्हें छोड़ते हैं। जोड़ने-बटोरनेवाले नहीं होते। भागनेमें जुआ गिरा देनेवाले होते हैं, और एकान्त-चिन्तन (=प्रविवेक)में पहिले होते हैं। यहाँ, आवुसो ! स्थविर भिक्षु तीन बातोंसे प्रशंसनीय होते हैं—(१) शास्ताके अभावमें ० शिक्षा ग्रहण करते हैं, यह पहिली बात है, जिससे स्थविर ०। (२) जिन बातोंको शास्ताने छोड़नेको कहा, उन्हें छोड़ते

---

[1] स्नेह सूचक संबोधन है जो पहिले बड़ेके लिये भी प्रयुक्त किया जाता था, किन्तु बुद्धनिर्वाणके बाद छोटोंके लिये ही रह गया।

हैं ०। (३) जोड़ने-बटोरनेवाले नहीं होते ०। आवुसो ! स्थविर भिक्षु इन तीन बातोंसे प्रशंसनीय होते हैं। वहाँ मध्यम (-वयस्क) भिक्षु ०। नव(-वयस्क) भिक्षु तीन बातोंसे प्रशंसनीय होते हैं ०।०। आवुसो ! इन तीन बातोंसे भिक्षु प्रशंसनीय होते हैं। इन (बातों)से शास्ताके अभावमें विरहसे श्रावक विवेककी शिक्षा ग्रहण करते हैं।

"आवुसो ! लोभ बुरी (वस्तु) है, और द्वेष बुरी (वस्तु) है। लोभ···और द्वेषके विनाशके लिए आँख देनेवाली, ज्ञान देनेवाली मध्यमा-प्रतिपद् (= बीचका मार्ग) है, जो कि शांति, दिव्यज्ञान, संबोधि (= परमज्ञान) और निर्वाण (के प्राप्त करने)के लिये है। आवुसो ! कौन है वह आँख देनेवाली ० मध्यमा प्रतिपद् (जो कि) ० निर्वाणके लिये है ?—यही आर्यअष्टांगिक-मार्ग; जैसे कि—सम्यग् (= ठीक)-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यग्-वचन, सम्यक्-कर्मान्त (= कार-बार), सम्यग्-आजीव (= रोजी), सम्यग्-व्यायाम (= उद्योग), सम्यक्-स्मृति, और सम्यक्-समाधि। यह है आवुसो ! वह आँख देनेवाली ० मध्यमाप्रतिपद्, (जो कि) ० निर्वाणके लिये है।

"आवुसो ! वहाँ क्रोध बुरी (चीज़) है, और उपनाह (= पाखंड) बुरी चीज है ०; म्रक्ष (= अमरख) ०; प्रदाश (= पलास=निष्ठुरता) ०; ईर्ष्या ०; मात्सर्य (= कंजूसी) ०; माया (= धोखा देना) ०; शाठ्य (= शठता) ०; स्तम्भ (= जड़ता) ०; सारम्भ (= हिंसा) ०; मान ०; अतिमान ०; मद ०; प्रमाद (= भूल) बुरी (चीज) है। मद और प्रमादके विनाशके लिये आँख देनेवाली ० मध्यमा प्रतिपद् है ०। आवुसो कौन है ०।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा, (और) सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया।

४—भयभेरव-सुत्तन्त (१।१।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

तब जानुस्सोणि ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जा कर भगवान्‌से ''' यथायोग्य (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर जानुस्सोणि ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"हे गौतम! जो यह (सारे) कुल-पुत्र आप गौतमको (नेता) मान, श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित (= संन्यासी) हुये हैं; आप गौतम उनके अग्रगामी हैं, ० बहु-उपकारी हैं, ० उप-देष्टा हैं; यह जनसमुदाय आप गौतमके देखे (मार्ग) का अनुगमन करता है।"

"ऐसा ही है, ब्राह्मण! ऐसा ही है, ब्राह्मण! जो यह कुल-पुत्र मुझे (नेता) मानकर ०।"

"हे गौतम! कठिन हैं अरण्य वन-खंड, और सूनी कुटियाँ (= शयनासन); दुष्कर है एकान्त रमण (= प्रविवेक); समाधि न प्राप्त होने पर अभिरमण न करनेवाले भिक्षुके मनको, अकेला पा (यह) वन मानों हर लेते हैं।"

"ऐसा ही है, ब्राह्मण! ऐसा ही है, ब्राह्मण! कठिन है अरण्य ०। ब्राह्मण! सम्बोधि (= परमज्ञान) प्राप्त होनेसे पहिले, बुद्ध न होनेके वक्त, जब मैं बोधिसत्व[1] (ही था), तो मुझे भी ऐसा होता था—'कठिन हैं अरण्य ०।

"तब, ब्राह्मण! मेरे (मनमें) ऐसा हुआ—जो कोई अशुद्ध कायिक कर्मसे युक्त श्रमण (= संन्यासी) ब्राह्मण अरण्य, वनखण्ड, और सूनी कुटियोंका सेवन करते हैं; अशुद्ध कायिक कर्मके दोषके कारण, वह आप श्रमण-ब्राह्मण बुरे भय-भैरव (= भय और भीषणता) का आह्वान करते हैं; (लेकिन) मैं तो अशुद्ध कायिक कर्मसे युक्त हो अरण्य ० सेवन नहीं कर रहा हूँ। मेरे कायिक कर्म (= कर्मान्त) परिशुद्ध हैं, जो परिशुद्ध कायिक कर्मवाले आर्य अरण्य ० सेवन करते हैं, मैं उनमेंसे एक हूँ। ब्राह्मण! अपने भीतर इस परिशुद्ध कायिक कर्मके भावको देखकर, मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक पल्लोम (= उत्साह) हुआ।

"तब, ब्राह्मण! मेरे (मनमें) ऐसा हुआ—जो कोई अशुद्ध वाचिक कर्मवाले श्रमण-ब्राह्मण अरण्यमें ०। ० अशुद्ध मानसिक कर्मवाले श्रमण ब्राह्मण ०। ० अशुद्ध आजीविकावाले श्रमण-ब्राह्मण अरण्यमें ०। (लेकिन) मैं तो अशुद्ध आजीविकासे युक्त हो अरण्य ० सेवन नहीं कर रहा हूँ ०। ०। ब्राह्मण! अपने भीतर इस परिशुद्ध आजीविका (= रोज़ी) की विद्यमानताको देखकर, मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह हुआ।

---

[1] अपने अनेक जन्मोंके परिश्रमसे पुण्य और ज्ञानका जो इतना संचय कर चुका है, कि आगे चल कर उसका बुद्ध होना निश्चित है।

"तब, ब्राह्मण ! मेरे (मनमें) ऐसा हुआ—जो श्रमण ब्राह्मण लोभी काम (-वासनाओं) में तीव्र राग रखनेवाले (हो) अरण्यमें ०। (लेकिन) मैं तो लोभी और कामोंमें तीव्र राग रखनेवाला न हो अरण्यमें ०।०। ब्राह्मण ! अपने भीतर इस निर्लोभिता (=अन्-अभिध्यालुता) को देख०।

"तब, ब्राह्मण ! ० हिंसायुक्त चित्तवाले और मनमें दुष्ट संकल्प रखनेवाले ०।०।

"तब, ब्राह्मण ! ० स्त्यान (=शारीरिक आलस्य)—मृद्ध (=मानसिक आलस्य)से प्रेरित हो ०।०।

"तब, ब्राह्मण ! ० उद्धत और अशान्त चित्तवाले हो ०।०।

"० लोभी, कांक्षावाले और संशयालु (= विचिकित्सी) हो ०।०।०।

"० अपना उत्कर्ष (चाहने)वाले तथा दूसरेको निन्दनेवाले हो ०।०।

"० जड़ और भीरु प्रकृतिवाले हो ०।०।

"० लाभ, सत्कार और प्रशंसाकी चाहना करते ०।०।

"० आलसी उद्योग हीन हो ०।०।

"० नष्टस्मृति और मूढ़ (= सम्पजान)से वंचित हो ०।०।

"० व्यग्र (-चित्त) और विभ्रान्त-चित्त हो ०।०।

"० दुष्प्रज्ञ भेड़-गूंगे (जैसे) हो ०।०।

"ब्राह्मण ! तब मेरे (मनमें) ऐसा हुआ—जो यह सम्मानित (= अभिज्ञात) = अभि-लक्षित रातियाँ हैं, (जैसे कि) पक्षकी चतुर्दशी (= अमावास्या), पूर्णमासी (= पंचदशी) और अष्टमीकी रातें; वैसी रातोंमें, जो वह भयप्रद रोमांचकारक आराम-चैत्य[1], वन-चैत्य, वृक्ष-चैत्य हैं, वैसे शयनासनों(= वासस्थानों)में विहार करूँ, शायद तब (कुछ) भय-भैरव देखूँ। तब, ब्राह्मण ! दूसरे समय ० सम्मानित ० रातोंमें ० वैसे शयनासनोंमें विहार करने लगा। तब, ब्राह्मण ! वैसे विहरते (समय) मेरे पास (जब कोई) मृग आता था, या मोर काठ गिरा देता था, या हवा पत्तोंको फरफराती; तो मेरे (मनमें) होता—जरूर, यह वही भय-भैरव आ रहा है। तब, ब्राह्मण ! मेरे (मनमें) यह होता—क्यों मैं दूसरेमें भयकी आकांक्षासे विहर रहा हूँ ! क्यों न मैं जिस जिस अवस्थामें रहते, जैसे मेरे पास वह भय-भैरव आता है, वैसी वैसी अवस्थामें रहते उस भय-भैरवको हटाऊँ। जब, ब्राह्मण ! टहलते हुये मेरे पास वह भय-भैरव आता, तब मैं ब्राह्मण ! न खड़ा हो जाता, न बैठता, न लेटता; टहलते हुएही उस भय-भैरवको हटाता। जब ० खड़े हुये रहते मेरे पास वह भय-भैरव आता ०।० बैठे रहते ०।०।० लेटे रहते ०।०।

"ब्राह्मण ! कोई कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण हैं, (जो) रात होनेपर भी (उसे) दिन अनुभव करते हैं, दिन होनेपर भी (उसे) रात अनुभव करते हैं। इसे मैं उन श्रमण-ब्राह्मणोंके लिये संमोह (Hypnotization) का विहार कहता हूँ। मैं तो ब्राह्मण ! रात होने पर (उसे) रात ही अनुभव करता हूँ, और दिन होने पर दिन ०। जिसके बारेमें ब्राह्मण ! यथार्थमें कहते वक्त कहना चाहिये—लोकमें बहुत जनोंके हितार्थ, बहुत जनोंके सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ हित-सुखके लिये सम्मोह-रहित पुरुष उत्पन्न हुआ है। सो वह यथार्थमें कहते वक्त मेरे लिये ही कहना होगा—लोकमें ०।

---

[1] चैत्य=देवताओं भूतोंके चौरे, जिनकी पूजा उस समय बहुत प्रचलित थी। मूर्तिके अभाव लोग इन्हीं चैत्योंकी पूजा करते थे।

"ब्राह्मण ! मैंने न दबनेवाला वीर्य (=उद्योग) आरम्भ किया था, (उस समय) मेरी अमुषित स्मृति जागृत थी, (मेरा) शान्त काय अव्यग्र (=असारद्ध) था, समाधिनिष्ठचित्त एकाग्र था। (१) सो मैं ब्राह्मण ! कामोंसे रहित बुरी बातों (=अकुशलधर्मों)से रहित, विवेकसे उत्पन्न स-वितर्क और स-विचार प्रीति और सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (२) (फिर) वितर्क और विचारके शान्त होने पर भीतरी शांत तथा चित्तकी एकाग्रता वाले वितर्करहित विचाररहित प्रीति-सुखवाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (३) (फिर) प्रीतिसे विरक्त हो, उपेक्षक बन स्मृति-संप्रजन्य (=होश और अनुभव)से युक्त हो शरीरसे सुख अनुभव करते, जिसे कि आर्य उपेक्षक, स्मृतिमान् सुख-विहारी कहते हैं; उस तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (४) (फिर) सुख और दुःखके परित्यागसे सौमनस्य (=चित्तोल्लास) और दौर्मनस्य (=चित्तसंताप)के पहिले ही अस्त हो जानेसे, सुख-दुःख-रहित—जिसमें उपेक्षासे स्मृतिकी शुद्धि हो जाती है, उस चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा।

[1](१) "सो इस प्रकार चित्तके एकाग्र, परिशुद्ध=पर्यवदात, अंगण-रहित = उपक्लेश (=मल)-रहित, मृदुभूत=कार्योपयोगी, स्थिर=अचलता प्राप्त (और) समाधियुक्त हो जाने पर, पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (=पूर्वनिवासानुस्मृति)के लिये मैंने चित्तको झुकाया। फिर मैं अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा, जैसे कि एक जन्मको भी, दो जन्मको भी, तीन", चार", पाँच", दस", बीस", तीस", चालीस", पचास", सौ", हजार", सौ हजार"""अनेक संवर्त (=प्रलय) कल्पोंको भी, अनेक विवर्त (=सृष्टि-)कल्पोंको भी, अनेक संवर्त विवर्त-कल्पोंको (भी) स्मरण करने लगा—(तबमें) अमुक स्थानपर इस नाम"'गोत्र"'वर्ण"'आहारवाला अमुक प्रकारके सुख दुःखको अनुभव करता इतनी आयु तक रहा। वहाँसे च्युत हो अमुक स्थानमें उत्पन्न हुआ। वहाँ भी इस नाम"'गोत्र ०। फिर वहाँ से च्युत हो (अब) यहाँ उत्पन्न हुआ—इस प्रकार आकार और उद्देश्यके सहित अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा। ब्राह्मण! इस प्रकार प्रमाद रहित, तत्पर (तथा) आत्मसंयमयुक्त विहरते हुये, रातके पहिले याममें मुझे यह पहली विद्या प्राप्त हुई, अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ।

(२) "सो इस प्रकार चित्तके समाहित (=एकाग्र), परिशुद्ध=पर्यवदात ०[2] होने पर प्राणियोंके च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्तिके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया। सो मैं अ-मानुष, विशुद्ध, दिव्य चक्षुसे अच्छे बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगतिवाले, दुर्गतिवाले प्राणियोंको मरते उत्पन्न होते देखने लगा, कर्मानुसार गतिको प्राप्त होते प्राणियोंको पहिचानने लगा—यह आप प्राणधारी (लोग) कायिक दुराचारसे युक्त, वाचिक दुराचारसे युक्त, मानसिक दुराचारसे युक्त, आर्योंके निन्दक, मिथ्यामत-रखनेवाले, (=मिथ्या-दृष्टि), मिथ्या-दृष्टि (से प्रेरित) कर्मको करनेवाले थे। यह काया छोड़नेपर मरनेके बाद अपाय=दुर्गति, पतन, नर्क (=निरय)में प्राप्त हुये हैं। यह आप प्राणधारी (लोग) कायिक, वाचिक, मानसिक सदाचार (=सुचरित)से युक्त, आर्योंके अ-निन्दक सम्यग्-दृष्टिक (=सच्चे सिद्धान्तवाले), सम्यग्-दृष्टि-संबंधी कर्मको करनेवाले (थे); यह काया छोड़नेपर मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकको प्राप्त हुये हैं। इस प्रकार अ-मानुष, विशुद्ध दिव्य चक्षुसे ०। ब्राह्मण ! ० रातके मध्यम याममें यह मुझे दूसरी विद्या प्राप्त हुई ०।

---

[1] यही तीन विद्यायें हैं। [2] देखो ऊपर।

(३) "० ० आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया। फिर मैंने—'यह दुःख है' इसे यथार्थसे जान लिया, 'यह दुःख-समुदय (=दुःखका कारण) है' ०, 'यह दुःख-निरोध है' ०, 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थसे जान लिया। 'यह आस्रव[1] है' ०, 'यह आस्रव-समुदय है' ०, 'यह आस्रव-निरोध है' ०, 'यह आस्रवनिरोधगामिनी प्रतिपद् है' ०। सो इस प्रकार देखते, इस प्रकार जानते मेरा चित्त काम (=काम-वासना रूपी)-आस्रवोंसे मुक्त हो गया, ० भव (=जन्म ले लेनेके लोभ रूपी) आस्रवोंसे ०, अ-विद्या-आस्रवोंसे मुक्त हो गया। छूट (=विमुक्त हो) जानेपर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ। 'जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा होगया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ करनेके लिये कुछ (शेष) नहीं है'—इसे जान लिया। ब्राह्मण! ० रातके अन्तिम यासमें यह मुझे तीसरी विद्या प्राप्त हुई ०।

"ब्राह्मण! शायद तेरे (मनमें) ऐसा हो—'आज भी श्रमण गौतम अ-वीतराग, अ-वीत द्वेष, अ-वीतमोह है, इसीलिये अरण्य, वनखंड तथा सूनी कुटियाका सेवन करता है'। ब्राह्मण! इसे इस प्रकार नहीं देखना चाहिये। ब्राह्मण! दो बातोंके लिये मैं अरण्य ० सेवन करता हूँ—(१) इसी शरीरमें अपने सुखविहारके ख्यालसे; और (२) आनेवाली जनतापर अनुकम्पाके लिये (जिसमें) मेरा अनुगमनकर वह भी सुफल-भागी हो।"

"आप गौतम द्वारा आनेवाली जनता अनुकम्पित सी है, जो कि आप गौतम सम्यक् संबुद्धने अनुकंपाकी। आश्चर्य! भो गौतम! आश्चर्य! भो गौतम! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे—जिसमें कि आँखवाले रूपको देखें; ऐसेही आप गौतमने अनेक प्रकार (=पर्याय)से धर्मको प्रकाशित किया, यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आप गौतम आजसे मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

---

[1] चित्त-मल।

५—अनङ्गण-सुत्तन्त (१।१।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—"आवुसो ! भिक्षुओ !"

"आवुस"—(कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

"आवुसो ! लोकमें चार (प्रकारके) पुद्गल (= व्यक्ति) विद्यमान हैं। कौनसे चार ?— (१) आवुसो ! एक व्यक्ति अंगण-(= चित्तमल)-सहित होता हुआ भी, मेरे भीतर अंगण है, इसे ठीकसे नहीं जानता। (२) यहाँ कोई व्यक्ति अंगण-सहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण है, इसे ठीकसे जानता है। (३) यहाँ कोई व्यक्ति अंगण-रहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है, इसे ठीकसे नहीं जानता है। (४) यहाँ कोई व्यक्ति अंगण-रहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है, इसे ठीकसे जानता है।

"आवुसो ! इनमेंसे जो यह व्यक्ति अंगणसहित होता हुआ भी, मेरे भीतर अंगण है—इसे ठीकसे नहीं जानता, यह इन अंगणसहित दोनों व्यक्तियोंमें हीन (= नीच) पुरुष कहा जाता है। और आवुसो ! उनमेंसे जो यह व्यक्ति अंगण-सहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण है—इसे ठीकसे जानता है, यह इन अंगण सहित दोनों व्यक्तियोंमें श्रेष्ठपुरुष कहा जाता है। आवुसो ! यहाँ जो यह व्यक्ति अंगणरहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है—इसे ठीकसे नहीं जानता, वह इन अंगणरहित दोनों व्यक्तियोंमें हीन (= नीच)-पुरुष कहा जाता है। और आवुसो ! ० अंगण-रहित होता हुआ, ० इसे ठीकसे जानता है, वह ० श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा— "आवुस सारिपुत्र ! क्या हेतु है, क्या कारण है, जो अंगण-सहित होते हुये इन दोनों व्यक्तियोंमें एक कहा जाता है हीन पुरुष, और एक कहा जाता है श्रेष्ठ पुरुष। और आवुस सारिपुत्र ! ० क्या कारण है, जो अंगण-रहित होते हुये उन दोनों व्यक्तियोंमेंसे एक कहा जाता है हीन पुरुष, और एक कहा जाता है श्रेष्ठ पुरुष ?

"आवुस ! यहाँ जो यह व्यक्ति अंगणसहित होता भी ० ठीकसे नहीं जानता; उससे आशा होगी, कि वह उस अंगण (= चित्त-मल)के विनाशके लिये न प्रयत्न करेगा, न उद्योग करेगा, न वीर्यारम्भ (= प्रयत्न) करेगा, वह राग-युक्त, द्वेष-युक्त, मोह-युक्त, अंगण-युक्त, मलिन-चित्त ही मृत्युको प्राप्त करेगा। जैसे आवुस ! कांसेकी थाली (= कंसपाती) रज और मलसे लिप्त (ही) दूकानसे या कसेरेके घरसे लाई जाये, (और) मालिक न उसका उपयोग करें, न पर्यवदापन (= साफ) करें, (तथा) कचरेमें उसे डाल दें। इस प्रकार आवुस ! वह कांसेकी थाली, कालान्तरमें और भी

अधिक कलुटी, मलगृहीत हो जायेगी (न) ?"

"हाँ, आवुस !"

"ऐसेही आवुस ! जो यह व्यक्ति अंगण-सहित होता भी ० ठीकसे नहीं जानता, उससे आशा होगी०[1] मलिन चित्तही मृत्युको प्राप्त करेगा। आवुस ! उनमें जो यह व्यक्ति अंगण-सहित होता ० ठीकसे जानता है, उससे आशा होगी, कि वह उस अंगणके विनाशके लिये प्रयत्न ०, उद्योग ०, वीर्यारम्भ करेगा; वह राग-रहित, द्वेष-रहित, मोह-रहित, अंगण-रहित निर्मल-चित्त हो मृत्युको प्राप्त होगा। जैसे आवुस ! रज और मलसे लिप्त काँसेकी थाली दूकानसे या कसेरेके घरसे लाई जाये, और मालिक उसका उपयोग करें, साफ करें, और कचरेमें न डालें। इस प्रकार आवुस ! वह काँसेकी थाली कालान्तरमें अधिक परिशुद्ध (तथा अधिक) निर्मल हो जायेगी (न) ?"

"हाँ, आवुस !"

"ऐसेही आवुस ! जो यह व्यक्ति अंगण-सहित होते ० हुये ठीकसे जानता है, उससे आशा होगी ० निर्मल-चित्त हो मृत्युको प्राप्त होगा। आवुस ! वहाँ जो यह व्यक्ति अंगण-रहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है—इसे ठीकसे नहीं जानता, उससे उम्मीद होगी, (कि) वह शुभ-निमित्त (= वस्तुके एकतरफा सौन्दर्यकी ओर अधिक झुकाव)को मनमें करेगा, शुभ-निमित्तके मनमें करनेसे उसके चित्तमें राग चिपट जायेगा, (इस प्रकार) वह राग-द्वेष-मोह-सहित, अंगण (= राग, द्वेष, मोह यह तीन चित्त मल)-सहित, (और) मलिन-चित्त (हो) मृत्युको प्राप्त होगा। जैसे, आवुस ! (कोई) परिशुद्ध और निर्मल काँसेकी थाली दूकानसे लाई जाये, उसे मालिक न उपभोग करें, न साफ करें (बल्कि) कचरेमें डालदें। इस प्रकार आवुस ! वह काँसेकी थाली कालान्तरमें और भी अधिक कलुटी, मल-गृहीत हो जायेगी (न) ?"

"हाँ, आवुस !"

"ऐसेही आवुस ! ० ०। आवुस ! उनमें जो यह व्यक्ति अंगण-रहित होता उसे ठीकसे जानता है, उससे आशा होगी, (कि) वह शुभ-निमित्तको मनमें न करेगा, शुभ-निमित्त को मनमें न करनेसे, राग उसके चित्तमें न चिपटेगा, (इस प्रकार) वह राग-द्वेष-मोह-रहित, अंगणरहित (एवं) निर्मल-चित्त (रह) मृत्युको प्राप्त होगा। जैसे आवुस ! (कोई) परिशुद्ध और निर्मल काँसेकी थाली दूकानसे ० लाई जाये; (और) मालिक उसका उपयोग करें, साफ रखें, (और उसे) कचरेमें न डालें। इस प्रकार आवुस ! यह कंस-पाती कालान्तरमें और भी अधिक परिशुद्ध और निर्मल हो जायेगी (न) ?"

"हाँ, आवुस !"

"ऐसेही आवुस ! ० ०। आवुस मोग्गलान ! यह हेतु है, यह कारण है, जो अंगण-सहित होते हुये उन दोनों व्यक्तियोंमें ०[1]। यह हेतु है ० जो अंगणरहित होते हुये भी उन दोनों व्यक्तियोंमें ०[1]।"

"आवुस ! 'अंगण, अंगण' कहा जाता है। आवुस ! यह अंगण किस (चीज) का नाम है ?"

"आवुस ! पापकों (=बुराइयों), बुराइयों (=अकुशलों) और इच्छाकी परतंत्रताओंका नाम (ही) यह अंगण है।

---

[1] पृष्ठ १७।

(क). हो सकता है, आवुस ! कि यहाँ एक भिक्षुके (मनमें) इच्छा उत्पन्न हो—'मैं, अपराध (= आपत्ति) करूँ, (लेकिन) मेरे बारेमें भिक्षु न जानें कि इसने आपत्ति की है ।' हो सकता है, आवुस ! कि उस भिक्षुके बारेमें (दूसरे) भिक्षु जान जायें—'इसने आपत्ति की है ।' फिर वह (भिक्षु)—'(सारे) भिक्षु मेरे बारेमें जानते हैं, कि मैंने अपराध किया है'—यह (सोच), कुपित होवे, अप्रतीत (=नाराज) होवे । आवुस ! यह जो कोप है, यह जो अ-प्रत्यय (= नाराजगी) है, दोनों ही अंगण हैं । (ख). हो सकता है, आवुस ! कि यहाँ एक भिक्षुके (मनमें) इच्छा उत्पन्न हो—'मैं अपराध करूँ, (लेकिन) भिक्षु मुझे अकेलेमें दोषी ठहरावें, संघमें नहीं ।' हो सकता है, आवुस ! कि भिक्षु, उस भिक्षुको संघके बीचमें अपराधी ठहरावें, अकेलेमें नहीं । फिर वह (भिक्षु)—'भिक्षु मुझे संघके बीच में अपराधी ठहराते हैं, अकेलेमें नहीं'—यह (सोच) कुपित होवे ० । यह जो कोप है ० । (ग). हो सकता है, आवुस ! ०—'मैं अपराध करूँ, (किन्तु) सप्रतिपुद्‌गल (= बराबरका व्यक्ति) मुझे दोषी ठहरावे, अ-प्रतिपुद्‌गल नहीं ।' ०। (घ). ०—"शास्ता (= बुद्ध) मुझे ही पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश करें, दूसरे भिक्षुको पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश न करें ।' हो सकता है, आवुस ! कि शास्ता दूसरे भिक्षु को पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश करें, उस भिक्षुको पूछ पूछ कर नहीं ० । फिर वह (भिक्षु)—'शास्ता, मुझे पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश नहीं करते, दूसरे भिक्षुको पूछ पूछ कर ० करते हैं'—यह (सोच) कुपित होवे ० । ० । (ङ). ०—'अहो ! मुझे ही आगे करके भिक्षु गाँवमें भोजनके लिये प्रविष्ट होवें, दूसरे भिक्षुको आगे करके नहीं···। ० । (च). ०—'अहो ! भोजनके समय मुझे ही अग्र (= प्रथम)-आसन, अग्र-उदक, अग्र-पिंड (= प्रथम परोसा) मिले, दूसरे भिक्षुको नहीं···। ० । (छ). ०—'अहो ! भोजन समाप्त हो जानेपर, मैं ही (अन्नदाताके दानके पुण्यका) अनुमोदन करूँ, दूसरा भिक्षु नहीं···। ० । (ज). ०—'अहो ! मैं ही आराम (= आश्रम) में आये भिक्षुओंको धर्मोपदेश करूँ, दूसरा भिक्षु नहीं···। ० । ०—'अहो ! मैं ही आराममें आई भिक्षुणियोंको ० । ० । ० आराममें आये उपासकोंको ० । ० । ० आराममें आई उपासिकाओंको धर्मोपदेश करूँ, दूसरा भिक्षु नहीं···। ० । (झ). ०—'अहो ! भिक्षु मेरा ही सत्कार=गुरुकार, मान और पूजा करें, दूसरेका नहीं···। ० । ० भिक्षुणियाँ ० उपासक ० । ० । ० उपासिकायें मेरा ही सत्कार ० करें, दूसरेका नहीं···। ० ।

(ञ). ०—'अहो ! मैं ही उत्तम चीवरों (= वस्त्रों) का पानेवाला होऊँ···;···उत्तम भिक्षान्नोंका···;···उत्तम वास स्थानोंका···;···रोगियोंके उत्तम पथ्य-औषधकी चीजोंका पानेवाला होऊँ, दूसरा भिक्षु नहीं···। ० । आवुस ! इन्हीं पापकों=बुराइयों (और) इच्छाकी परतंत्रताओंका नाम अंगण है । आवुस ! जिस किसी भिक्षुके यह पापक=बुराइयाँ, इच्छाकी परतंत्रतायें अविनष्ट दिखाई पड़ती हैं, सुनाई देती हैं; चाहे वह वनवासी, एकान्त कुटी निवासी, भिक्षान्नभोजी (= पिंडपाती), बिना-ठहरे-भिक्षाचारी, पांसुकूलिक (= फेंके चीथड़ोंको सीकर पहननेवाला), (और) रूक्षचीवरधारी ही क्यों न हो, (किन्तु) स-ब्रह्मचारी (= एक व्रतके व्रती) उसका सत्कार=गुरुकार, मान, पूजा नहीं करते । सो किस लिये ?—वह देखते और सुनते हैं, कि उस आयुष्मान् की वह ० बुराइयाँ ० नष्ट नहीं हुई । जैसे आवुस ! एक परिशुद्ध, निर्मल काँसे की थाली दुकान या कसेरेके घरसे लाई गई हो । (फिर) मालिक उसमें मुर्दे साँप, मुर्दे कुत्ते, या मुर्दे मनुष्य (के मांसको) भरकर, दूसरी काँसेकी थालीसे ढाँककर बाजार (आपण=दूकान)में रख दें । उसे देखकर लोग कहें—'अहो ! यह क्या चमचमाता हुआ रक्खा है ?' फिर उसे उठाकर देखें । उसे देखते ही उनके (मनमें) घृणा, प्रतिकूलता जुगुप्सा उत्पन्न हो जाये । भूखोंको

भी खानेकी इच्छा न हो, पेटभरोंकी तो बात ही क्या ? इसी प्रकार आवुस ! जिस किसी भिक्षुकी यह बुराइयाँ ० नष्ट नहीं हुई ०, तो चाहे वह वनवासी ० ही क्यों न हो, ० । आवुस ! जि किसी भिक्षुकी यह ० बुराइयाँ ० नष्ट हो गई हैं, तो चाहे वह ग्राममें रहनेवाला, निमंत्रण खाने वाला, गृहस्थों (के दिये गये) चीवरोंको पहिननेवाला ही क्यों न हो, तोभी स-ब्रह्मचारी उसक सत्कार=पूजा करते हैं । सो किस लिये ?—वह देखते और सुनते हैं, कि इस आयुष्मान्‌की यह बुराइयाँ ० नष्ट हो गई हैं । जैसे, आवुस ! एक स्वच्छ निर्मल काँसेकी थाली दुकान या कसेरे घरसे लाई गई हो । (फिर) मालिक उसमें साफ किये शालीके भातको अनेक प्रकारके सू (= दाल आदि तियँन) और व्यंजनके साथ सजाकर एक दूसरी काँसेकी थालीसे ढाँककर बाजारमें ल दे । उसे देखकर लोग कहें—'अहो ! यह क्या चमचमाता रक्खा है !' फिर उसे उठाकर खो कर देखें । उसे देखते ही उनके (मनमें) प्रसन्नता, अनुकूलता और अ-प्रतिकूलता उत्पन्न हो जावे पेटभरोंको भी खानेकी इच्छा हो जावे, भूखोंकी तो बात ही क्या ? इसी प्रकार आवुस ! जि किसी भिक्षुकी यह ० बुराइयाँ ० नष्ट हो गई हैं ० । ० ।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् मौद्गल्यायन (= मोग्गलान)ने आयुष्मान् सारिपुत्र (= सारि पुत्त)को यह कहा—"आवुस सारिपुत्र ! (इसी संबंधमें) मुझे एक उपमा (= दृष्टान्त) प रही है ।"

"उसे कहो, आवुस मौद्गल्यायन !"

"आवुस ! एक समय मैं राजगृह, गिरिव्रजमें विहार कर रहा था । तब मैं पूर्वा समय (वस्त्र) पहिन, (भिक्षा-)पात्र और चीवर लेकर राजगृहमें भिक्षाटनके लिये प्रविष्ट हुआ उस समय समिति यानकारपुत्र, रथके (पहियेकी) पुट्ठीको गढ़ रहा था, और उसके प भूत-पूर्व यानकार-वंशिक पंडुपुत्त आजीवक[1] उपस्थित था । तब ० पंडुपुत्त आजीवक चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—अहो ! (अच्छा हो जो) यह समिति यानकार-पु इस पुट्ठीके इस वंक (=टेढ़ापन) = इस जिह्म, इस दोषको गढ़ डाले, और इस प्रकार पुट्ठी (= नेमि) वंक-जिह्म-दोषसे रहित हो, ठीक सारमें प्रतिष्ठित हो जावे । आवुस ! जै जैसा ० पंडुपुत्त आजीवकके चित्तमें वितर्क होता था, वैसाही वैसा समिति यानकारपुत्र उ पुट्ठीके वंक ० को गढ़ता था । तब आवुस ! ० पंडुपुत्त आजीवक प्रसन्न चित्त हो बोल उठा 'हृदयसे (मेरे) हृदय की (बात) को जानकर मानो गढ़ रहा है' । ऐसे ही आवुस ! जो पुद् (= व्यक्ति) अश्रद्धालु हैं, जो (धर्ममें) श्रद्धासे नहीं बल्कि जीविकाके लिये घरसे बेघर बन प्रव्र हुये हैं, जोकि शठ, मायावी, पाखंडी (= केतुभी), उद्धत, अभिमानी (= उन्नल), चपल, मुख असंयतभाषी, असंयत-इन्द्रिय, भोजनकी मात्राको न जाननेवाले, जागरणमें न तत्पर, श्राम (= संन्यासके आदर्श) की पर्वाह न करनेवाले, भिक्षुओं की शिक्षाके प्रति तीव्र आदर न रखनेव ओढ़ने बटोरने वाले, भागनेमें अग्रगामी, एकान्त चिन्तनमें धुरा (= जुआ) फेंक देनेवाले, आल (= कुसीदी), अनुद्योगी, मुषित-स्मृति, बेसमझ, विभ्रान्त-चित्त, दुष्प्रज्ञ, गूंगे-भेड़ जैसे (पुद हैं; इस उपदेश द्वारा उनके हृदयको हृदयसे जान कर मानो आयुष्मान् सारिपुत्र गढ़ रहे हैं । जो कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये हैं, जोकि अ-शठ, अ-मायावी, पाख रहित, अनुद्धत, अन्-अभिमानी, अ-चपल, अ-मुखर संयत-भाषी, संयत-इन्द्रिय, भोजनकी म जाननेवाले, जागरणमें तत्पर, श्रामण्यका ख्याल रखनेवाले, शिक्षा के प्रति तीव्र आदर भाव र

[1] उस समयके नंगे साधुओंका एक सम्प्रदाय ।

वाले, न जोड़ने बटोरनेवाले, भागनेमें जुआ फेंक देनेवाले, एकान्त-चिन्तन (= प्रविवेक)में अग्रगामी, निरालस, उद्योगी, संयमी (= पहितत्त), स्मृति-संयुक्त, समझदार, समाहित=एकाग्र-चित, प्रज्ञावान्, गूँगे-और-भेड़से नहीं हैं, वह आयुष्मान् सारिपुत्रके इस धर्मोपदेशको सुनकर मानो वचन और मनसे पान कर रहे हैं, आहार कर रहे हैं। क्या खूब? (आपने) सब्रह्मचारियोंको बुराइयोंसे उठाकर भलाइयोंमें स्थापित कर दिया। जैसे, आवुस! शौकीन अल्पवयस्क तरुण स्त्री या पुरुष शिरसे स्नान कर, कमलकी माला, या जूहीकी माला, या मोगरे (= अतिमुक्तका) की मालाको पा दोनों हाथोंसे उसे ग्रहण कर, (अपने) उत्तम-अंग=शिरपर रक्खे; इसी प्रकार आवुस! जो कुल-पुत्र श्रद्धापूर्वक घरसे प्रव्रजित हुये हैं०[1] गूँगे—और-भेड़ से नहीं हैं, वह, आयुष्मान् सारिपुत्रके इस धर्मोपदेशको सुनकर मानो वचन और मनसे पानकर रहे हैं ०।"

इस प्रकार दोनों महानागों (= महावीरों)ने एक दूसरेके सुभाषितका अनुमोदन किया।

६—आकङ्खेय्य-सुत्तन्त (१।१।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ! शील सम्पन्न होकर विहरो; प्रातिमोक्ष-संवर (= सदाचार-नियम रूपी संरक्षण)से संरक्षित हो विहरो; आचार-गोचर (= धर्माचरण)से संयुक्त हो, छोटी सी भी बुराईसे भय खाते शिक्षापदों (= आचार-नियमों)को ग्रहणकर, उनका अभ्यास करो। भिक्षुओ! यदि भिक्षु चाहता है कि वह सब्रह्मचारी (= गुरुभाई) भिक्षुओंका प्रिय = मनाप और सम्मान-भाजन होवे; तो वह शीलोंका पूरा करनेवाला बने, भीतरसे चित्तको शमन करनेमें तत्पर, अखंडित ध्यान (तथा) विपश्यना (= प्रज्ञा)से युक्त हो, सूने घरोंको शरण ले।

"भिक्षुओ! यदि भिक्षु चाहता है, कि वह चीवर (= वस्त्र), पिंडपात (= भिक्षान्न), शयनासन (= वासस्थान) (और) ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कार (रोगीके पथ्य और औषधकी चीज़ें) का पाने वाला हो, तो वह शीलोंका ही पूरा करनेवाला बने ०।

"भिक्षुओ! यदि भिक्षु चाहता है, कि जिनके चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारका मैं उपयोग करता हूँ, उनके वह (दान-)कार्य महाफलवाले=महानृशंसवाले हों, तो वह शीलोंका ही पूरा करनेवाला बने ०।

"० जो मेरे ज्ञातिवाले रक्त-संबंधी मृत-प्रेत (लोकान्तर-प्राप्त) हैं। (और जोकि) प्रसन्न-चित्तसे मेरी याद करते हैं, उनका वह कर्म महाफल=महानृशंस होवे, तो वह ०।

"० मैं अ-रति (= उचाट)को हरानेवाला होऊँ, अ-रति मुझे न हरा सके, उत्पन्न अ-रतिको मैं पराजित करके विहरूँ; तो वह ०।

"० मैं भय-भैरवको हरानेवाला होऊँ ०; तो वह ०।

"० इसी जन्ममें सुख-पूर्वक विहार करनेवाला, चित्त-सम्बन्धी चारों ध्यानोंका पूर्णतया बिना दिक्कत और कठिनाईके लाभी (= पानेवाला) होऊँ; तो वह ०।

"० जो वह रूप(-लोक)[1] से परे आरूप्य (= लोक-संबंधी) शान्त विमोक्ष (= मुक्ति) हैं, उन्हें मैं कायासे प्राप्त कर विहरूँ; तो वह ०।

[1] इस संसारसे परे लोक जहाँ तेजोमय प्राणी निवास करते हैं, उससे भी परे अ-रूप-लोक है।

"०तीनों संयोजनों[1]के क्षयसे स्रोत-आपन्न यन पतन-रहित, नियत, संबोधि (= परमज्ञान)-परायण होऊँ, तो वह ० ।

"०तीनों संयोजनोंके क्षयसे, राग-द्वेष-मोहके क्षीण होनेसे सकृदागामी होऊँ, इस लोकमें एक ही बार और आकर दुःखका अन्त करूँ, तो वह० ।

"० पाँच अवरभागीय संयोजनोंके क्षयसे औपपातिक (= दिव्ययोनि-उत्पन्न) उस (अगले जन्म लेनेवाले) लोकमें निर्वाण प्राप्त करनेवाला होऊँ, उस लोकसे फिर लौटकर (यहाँ) आनेवाला न होऊँ, तो वह ० ।

"० मैं अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंका अनुभव करूँ—एक होकर अनेक हो जाऊँ, आविर्भाव, तिरोभाव, दीवार-प्राकार-पर्वतमें निर्लिप्त हो वैसे ही चलूँ, जैसे आकाशमें पक्षी उड़ते हैं; पृथिवीमें वैसे ही डूबूँ उतराऊँ, जैसे पानीमें; पानी पर (भी) वैसे ही बिना भीगे चलूँ, जैसे पृथिवी पर; आकाशमें आसन मारकर वैसे ही चलूँ, जैसे पक्षी = शकुन; ऐसे महाऋद्धिवाले=महानुभाव इन चाँद और सूर्यको भी हाथसे छूऊँ, परिमार्जन करूँ; (इसी) कायासे ब्रह्मलोकपर्यन्त (सब) को अपने वशमें कर लूँ; तो वह ० ।

"० मैं अ-मानुष विशुद्ध दिव्य श्रोत्र-इन्द्रियसे उभय प्रकारके शब्दोंको सुनूँ—दिव्य (शब्दों)को भी, और मानुष(शब्दों)को भी, दूरवालेको भी और समीप वाले (शब्द)को भी; तो वह ० ।

"० मैं दूसरे सत्वों दूसरी व्यक्तियोंके चित्तोंको (अपने) चित्तसे देखकर जानलूँ—सराग चित्त होने पर 'सराग चित्त है'—जान जाऊँ, वीतराग चित्त०, स-द्वेषचित्त०, वीत-द्वेष चित्त०, स-मोह चित्त०, वीत-मोह चित्त०, संक्षिप्त (= एकाग्र)-चित्त०, विक्षिप्त चित्त०, महद्गत (= विशाल) चित्त०, अ-महद्गत चित्त०, स-उत्तर (= जिसमे बढ़कर भी कोई हो) चित्त०, अनुत्तर (= अनुपम) चित्त०, समाहित चित्त ०, अ-समाहित, चित्त०, विमुक्त चित्त०, अ-विमुक्त चित्त०; तो वह० ।

"० अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों(= पूर्वजन्मों)को जानूँ, जैसे कि—एक जन्मको भी ०[2]; तो वह ० ।

"० मैं अ-मानुष विशुद्ध दिव्य चक्षुसे अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण०[3] प्राणियोंको ०[3] देखूँ—यह आप प्राणी ०[3]; तो वह ० ।

"० मैं आस्रवोंके क्षयसे जो आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति है, प्रज्ञाद्वारा विमुक्ति (= मुक्ति) है, उसे इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार करूँ; तो वह० ।

"भिक्षुओ ! शील[4]-सम्पन्न हो विहरो ०[5] ।

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया ।

---

[1] मानसिक बंधन । [2] दे०, पृष्ठ, १५ । [3] दे०, पृष्ठ, १५,१६ ।
[4] हिंसा आदि आठ पापकर्मोसे विरत होना । [5] दे० पृष्ठ २२ ।

७—वत्थ-सुत्तन्त (१।१।७)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ! जैसे कोई मैला कुचैला वस्त्र (=वत्थ) हो, उसे रंगरेज (=रजक) ले जाकर जिसकिसी रंगमें डाले—चाहे नीलमें, चाहे पीतमें, चाहे लोहित (=लाल) में, चाहे मंजिष्ठ (=मजीठके रंग)में; वह बदरंग ही रहेगा, अशुद्धवर्ण ही रहेगा। सो किस लिये?—भिक्षुओ! वस्त्रके अशुद्ध होनेसे। ऐसे ही भिक्षुओ! चित्तके मलिन होनेसे दुर्गति अ-निवार्य है।

"जैसे, भिक्षुओ! उजला साफ वस्त्र हो, उसे रंगरेज ले जाकर जिसकिसी ही रंगमें डाले०, वह सुरंग निकलेगा, शुद्धवर्ण निकलेगा। सो किस लिये?—भिक्षुओ! वस्त्रके शुद्ध होनेके कारण। ऐसे ही भिक्षुओ! चित्तके अन्-उपक्लिष्ट (=निर्मल) होने पर सुगति अ-निवार्य (=लाजिमी) है (=प्रातिकाङ्क्षा)।

"भिक्षुओ! कौनसे चित्तके उपक्लेश (=मल) हैं?—(१) अभिध्या=विषम लोभ चित्तका उपक्लेश है; (२) व्यापाद (=द्रोह)०, (३) क्रोध०, (४) उपनाह (=पाखंड)०; (५) म्रक्ष (=अमरख)०; (६) प्रदाश (=निष्ठुरता)०; (७) ईर्ष्या०; (८) मात्सर्य (=कंजूसी) ०; (९) माया (=वंचना)०; (१०) शाठ्य ०; (११) स्तम्भ (=जड़ता)०; (१२) सारम्भ (=हिंसा) ०; (१३) मान ०; (१४) अतिमान ०, (१५) मद ०; (१६) प्रमाद ०

"भिक्षुओ! जो भिक्षु—'अभिध्या=विषम लोभ चित्तका उपक्लेश है'—यह जानकर अभिध्या ० चित्तके उपक्लेशको त्यागता है। 'व्यापाद चित्तका उपक्लेश है'—यह जानकर ०। क्रोध० उपनाह ०। म्रक्ष ०। प्रदाश ०। ईर्ष्या ०। मात्सर्य ०। माया०। शाठ्य०। स्तम्भ ०। सारम्भ ० मान ०। अतिमान ०। मद ०। प्रमाद ०।

"भिक्षुओ! जब भिक्षुने—'अभिध्या=विषमलोभ चित्तका उपक्लेश है,—यह जानक चित्तके उपक्लेश अभिध्या ० को त्याग दिया है। व्यापाद ०। क्रोध ०। उपनाह ०। म्रक्ष ० प्रदाश ०। ईर्ष्या ०। मात्सर्य ०। माया ०। शाठ्य ०। स्तम्भ ०। सारम्भ ०। मान ० अतिमान ०। मद ०। प्रमाद ०। सो वह बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धा (=प्रसाद)से युक्त होता है—'वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध (=परमज्ञानी), विद्या-और-आचरणसे संपन्न (=परिपूर्ण) सुगत (=सुन्दर गतिको प्राप्त) लोकविद्, पुरुषोंको दमन करने (=सन्मार्गपर लाने)के लि अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योंके शास्ता (=उपदेशक) बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं'। व

धर्ममें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात (सुन्दररीतिसे कहा गया) है, (वह) सांदृष्टिक (= इसी शरीरमें फल देनेवाला), अकालिक (= कालान्तरमें नहीं, सद्यः फलप्रद), एहिपस्सिक (= यहीं दिखाई देनेवाला), औपनयिक (= निर्वाणके पास लेजानेवाला), विज्ञ (पुरुषों)को अपने अपने भीतर (ही) विदित होनेवाला है' । वह [1] संघमें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्‌का श्रावक (= शिष्य-संघ) सुमार्गारूढ (= सुप्रतिपन्न) है, ० ऋजु-प्रतिपन्न (= सरल मार्गपर आरूढ) है,० न्याय (मार्ग)-प्रतिपन्न है, ० सामीचि-प्रतिपन्न (= ठीक मार्गपर आरूढ) है, यह जो चार पुरुष-युगल (= स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्), आठ पुरुष-पुद्गल (= स्त्री पुरुष भेदसे स्रोत आपन्न आदि आठ) हैं, यही भगवान्‌का श्रावकसंघ है, (जो कि) आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनने योग्य, दक्षिणेय (= दानदेने योग्य), हाथ जोड़ने योग्य, और लोकके लिये पुण्य (बोने)का क्षेत्र है' ।

"जब उसके वह (मल) त्यक्त, वमित, मोचित, नष्ट, विसर्जित होते हैं; (और)—'मैं बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त हूँ'—यह (सोचकर) वह अर्थ-वेद (= अर्थज्ञान), धर्मवेद (= धर्म-ज्ञान)को पाता है, (और) धर्मवेद संबंधी प्रमोद (= प्रामोद्य) को पाता है। प्रमुदित (पुरुष)को प्रीति (= संतोष) होती है। प्रीतिमान्‌की काया शांत होती है, प्रश्रब्धकाय सुख अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है—'मैं धर्ममें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त हूँ'—यह (सोचकर) वह ०। 'मैं संघमें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त हूँ'—यह (सोचकर) वह ०। जब उसके यह (मल) त्यक्त ० होते हैं, तो वह अर्थवेद को, धर्म-वेद को पाता है ०। सुखीका चित्त एकाग्र होता है।

"भिक्षुओ! वह ऐसे शीलवाला, ऐसे धर्मवाला, ऐसी प्रज्ञावाला, भिक्षु चाहे काली (भुसी आदि) चुनकर बने शालीके भातको, अनेक सूप और व्यंजनके साथ खाये, तो भी उसको अन्तराय (= विघ्न) नहीं होगा। भिक्षुओ! जैसे मैला कुचैला वस्त्र स्वच्छ जलको प्राप्त हो शुद्ध साफ हो जाता है; उल्कामुख (= भट्ठीकी घड़िया)में पड़कर सोना शुद्ध साफ हो जाता है; ऐसेही भिक्षुओ! ऐसे शीलवाला, ऐसे धर्मवाला, ऐसी प्रज्ञावाला भिक्षु चाहे० शालीके भातको० ।

"वह मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाको परिपूर्णकर विहरता है, वैसे ही दूसरी दिशाको, वैसे ही तीसरी०, ० चौथी०। इस प्रकार ऊपर नीचे आड़े-बेड़े, सबका विचार रखनेवाला, सबके अर्थ, विपुल, महान्, प्रमाणरहित, वैररहित, व्यापार-रहित, मैत्री-युक्त चित्तसे सारे लोकको पूर्ण-कर विहार करता है।

"वह करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशाको०। मुदिता-युक्त चित्तसे एक दिशाको०। उपेक्षा-युक्त चित्तसे एक दिशाको०।

"वह जानता है कि 'यह निकृष्ट है', 'यह उत्तम (= प्रणीत) है'—इन (लौकिक) संज्ञाओंसे ऊपर निस्सरण (= निकास) है। ऐसा जानते, ऐसा देखते हुये, उसका चित्त काम (वासना रूपी) आस्रवसे मुक्त हो जाता है, भव-आस्रवसे ०, अविद्या-आस्रवसे०। मुक्त (= छूट) जानेपर, 'मुक्त होगया हूँ'—यह ज्ञान होता है; और जानता है—जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्य-वास समाप्त होगया, करना था सो कर लिया, अब दूसरा यहाँ (कुछ करनेको) नहीं है। भिक्षुओ! यह भिक्षु स्नान करे बिना ही स्नात (= नहाया) कहा जाता है।"

[1] यही तीनों वाक्य (बुद्ध-धर्म-संघ)की अनुस्मृति (= स्मरण) कही जाती है।

उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान्‌के अविदूरमें बैठा था। तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"क्या आप गौतम स्नानके लिये बाहुकानदी चलेंगे?"

"ब्राह्मण! बाहुकानदीमें क्या (लेना) है? बाहुकानदी क्या करेगी?"

"हे गौतम! बाहुकानदी लोकमान्य (=लोक-संमत) है, बाहुकानदी बहुत जनोंद्वारा पवित्र (=पुण्य) मानी जाती है। बहुतसे लोग बाहुकानदीमें (अपने) किये पापोंको बहाते हैं।"

तब भगवान्‌ने सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणको गाथाओंमें कहा—

"बाहुका, अधिकक्का, गया, और सुन्दरिकामें।
सरस्वती, और प्रयाग तथा बाहुमती नदीमें।
काले कर्मोंवाला मूढ़ चाहे नित्य नहाये, (किन्तु) शुद्ध नहीं होगा।
क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग, और क्या बाहुलिका नदी?
(वह) पापकर्मी=कृतकिल्बिष दुष्ट नरको नहीं शुद्ध कर सकते।
शुद्ध (नर)के लिये सदाही फल्गु है, शुद्धके लिये सदा ही उपोसथ[1] है।
शुद्ध और शुचिकर्माके व्रत सदा ही पूरे होते रहते हैं।
ब्राह्मण! यहीं नहा, सारे प्राणियोंका क्षेम कर।
यदि तू झूठ नहीं बोलता, यदि प्राण नहीं मारता।
यदि बिना दिया नहीं लेता, (और) श्रद्धावान् मत्सर-रहित है।
(तो) गया जाकर क्या करेगा, क्षुद्र जलाशय (=उदपान) भी तेरे लिये गया है।"

ऐसा कहने पर सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने भगवान्‌को यह कहा—

"आश्चर्य! हे गौतम!! आश्चर्य! हे गौतम!!०[2] यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आप गौतमके पास मैं प्रव्रज्या (=संन्यास) पाऊँ, उपसम्पदा[3] पाऊँ।"

सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके बाद, आयुष्मान् भारद्वाज एकान्तमें प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते, थोड़े ही समयमें जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त (=निर्वाण)को, इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर विहरने लगे। 'जन्म क्षीण होगया०[4] नहीं है'—जान लिया। आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतोंमेंसे एक हुये।

---

[1] व्रतका दिन। [2] देखो पृष्ठ १६। [3] भिक्षु संघमें प्रवेशकी प्रक्रिया। [4] देखो पृष्ठ १६।

८—सल्लेख-सुत्तन्त (१।१।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् महाचुन्द सायंकालमें प्रतिसल्लयन(= ध्यान)से उठकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर आयुष्मान् महाचुन्दने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते! जो यह आत्मवाद-संबन्धी या लोकवाद-संबन्धी अनेक प्रकारकी दृष्टियाँ (= दर्शन, मत) दुनियामें उत्पन्न होती हैं; भन्ते! इस प्रकार (इनके) आदिको ही मनमें (विचार) करनेसे इन दृष्टियोंका प्रहाण (= नाश) होता है, इन दृष्टियोंका परित्याग होता है?"

"चुन्द! जो यह० दृष्टियाँ दुनियामें उत्पन्न होती हैं; (उनको) जहाँ यह दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं, जहाँ यह आश्रय ग्रहण करती हैं, जहाँ पर व्यवहृत होती हैं, (वहाँ)—'यह मेरा नहीं', 'न यह मैं हूँ', 'न मेरा यह आत्मा है'—इसे इस प्रकार यथार्थ तौरपर ठीकसे जानकर देखनेपर, इन दृष्टियोंका प्रहाण होता है, इन दृष्टियोंका परित्याग होता है।

"हो सकता है, चुन्द! यहाँ कोई भिक्षु कामोंसे विरहित[1]० प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरे। उसके (मनमें) ऐसा हो—'मैं सल्लेख(= तप)के साथ विहर रहा हूँ'। लेकिन, चुन्द! आर्य-विनय (= आर्यधर्म)में इन्हें सल्लेख नहीं कहा जाता; आर्यविनयमें इन्हें दृष्टधर्म-सुखविहार (= इसी जन्ममें सुखपूर्वक विहार करना) कहते हैं।

"हो सकता है, चुन्द! यहाँ कोई भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त होनेपर ०[1] द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरे। उसको ऐसा हो—०। इन्हें आर्यविनयमें दृष्टधर्म-सुखविहार कहते हैं।

"हो सकता है, चुन्द! यहाँ कोई भिक्षु प्रीतिसे विरक्त हो०[1] तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरे। ०। ०।

"हो सकता है, चुन्द! ० ०[1] चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरे। ०। इसे आर्यविनयमें दृष्टधर्म-सुखविहार कहते हैं।

"हो सकता है, चुन्द! यहाँ कोई भिक्षु रूप-संज्ञा (= रूपके विचार)को सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिघ (= प्रतिहिंसा)की संज्ञाओंके सर्वथा अस्त हो जानेसे, नानापनकी संज्ञाओंको मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है'—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरे। उसको ऐसा हो—'मैं सल्लेखके साथ विहर रहा हूँ'। लेकिन, चुन्द! आर्य विनयमें इन्हें सल्लेख नहीं कहा जाता; आर्यविनयमें इन्हें शान्तविहार कहते हैं।

---

[1] देखो पृष्ठ २५।

"होसकता है, चुन्द ! ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरे । ० इन्हें शान्तविहार कहते हैं ।

"० ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'कुछ नहीं'—इस आकिंचन्य (= न-कुछ-भी-पना) आयतनको प्राप्त हो विहरे । ० ० ।

"० ० आकिंचन्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन (=जहाँ न संज्ञाही हो न असंज्ञा ही) को प्राप्त हो विहरे । ० ० ।

"किन्तु, चुन्द ! यहाँ सल्लेख (= तप) करना चाहिये—(१) दूसरे हिंसक (= विहिंसक) होंगे, हम यहाँ अहिंसक रहेंगे—यह सल्लेख करना चाहिये । (२) दूसरे प्राण मारनेवाले होंगे, हम यहाँ प्राण मारनेसे विरत रहेंगे—यह सल्लेख करना चाहिये । (३) दूसरे बिना दिया लेनेवाले ० । (४) दूसरे अ-ब्रह्मचारी ० । (५) दूसरे मृषा(= झूठ)-वादी ० । (६) दूसरे पिशुनभाषी (= चुगुलखोर) ० । (७) दूसरे परुष (=कठोर)-भाषी ० । (८) दूसरे संप्रलापी (= बकवादी) ० । (९) दूसरे अभिध्यालु (=लोभी) ० हम यहाँ अनभिध्यालु रहेंगे । (१०) दूसरे व्यापन्न(= हिंसक)चित्त ० अव्यापन्न चित्त ० । (११) दूसरे मिथ्या-दृष्टि ० सम्यग्दृष्टि ० । (१२) दूसरे मिथ्या-संकल्प ० सम्यक्-संकल्प० । (१३) दूसरे मिथ्याभाषी ० सम्यग्-भाषी ० । (१४) दूसरे मिथ्या-कर्मान्त (= कायिककर्म) ० सम्यक्-कर्मान्त० । (१५) ० मिथ्या-आजीव (= अनुचितरीतिसे रोजी कमानेवाले) सम्यग्-आजीव ० (१६) ० मिथ्या-व्यायाम (= प्रयत्न) ० सम्यग् ० व्यायाम ० । (१७) ० मिथ्या(= अयुक्त)स्मृति ० सम्यक् स्मृति ० । (१८) ० मिथ्या-समाधि ० सम्यक्-समाधि ० । (१९) ० मिथ्या-ज्ञानी ० सम्यग्-ज्ञानी ० । (२०) ० मिथ्या-विमुक्ति ० सम्यग्-विमुक्ति (-मुक्ति) (२१) ० स्त्यान ० मृद्ध (= शरीर और मनके आलस्य)-संयुक्त ० स्त्यान-मृद्ध-रहित ० । (२२) ० उद्धत ० अनुद्धत ० । (२३) ० विचिकित्सक (= संशयालु) ० विचिकित्सा पारंगत ० । (२४) ० क्रोधी ० अक्रोधी ० । (२५) ० उपनाही (= पाखंडी) ० अनुपनाही ० । (२६) ० म्रक्षी (=कीनावाले) ० अम्रक्षी ० । (२७) प्रदाशी (= निष्ठुर) ० अ-प्रदाशी० । (२८) ० ईर्ष्यालु ० ईर्ष्यारहित ० । (२९) ० मत्सरी ० अ-मत्सरी ० । (३०) ० शठ ० अ-शठ ० । (३१) ० मायावी (= वंचक) ० अ-मायावी ० । (३२) ० स्तब्ध (= जड़) ० अ-स्तब्ध । (३३) ० अतिमानी (= अभिमानी) ० अनतिमानी ० । (३४) ० दुर्वचा ० सुवचा ० । (३५) ० पाप-मित्र (= बुरोंको दोस्त बनानेवाले) ० कल्याण-मित्र ० । (३६) ० प्रमत्त ० अ-प्रमत्त ० । (३७) ० अश्रद्धालु ० श्रद्धालु ० । (३८) ० निर्लज्ज ० लज्जावान् ० । (३९) ० अनपत्रपी (= उचित भयको भी न माननेवाले) ० अपत्रपी ० । (४०) ० अल्पश्रुत (= अशिक्षित) ० बहुश्रुत ० । (४१) ० कुसीद (= आलसी) ० उद्योगी ० । (४२) ० मूढ़-स्मृति ० उपस्थित-स्मृति ० । (४३) ० दुष्प्रज्ञ ० प्रज्ञा-सम्पन्न ० । (४४) दूसरे सान्दृष्टि (= ऐहिकलाभ)-परामर्षी (= सोच करनेवाला) आधान-ग्राही (= हठी), दुष्प्रतिनिस्सर्गी (= कठिनाईसे त्याग करनेवाले) होंगे, हम यहाँ अ-सान्दृष्टि-परामर्षी अनाधान-ग्राही सुप्रतिनिस्सर्गी रहेंगे—यह सल्लेख करना चाहिये ।

"चुन्द ! अच्छी बातों (= धर्मों)के विषयमें विचारके उत्पन्न होनेको भी मैं हितकर कहता हूँ, काया और वचनसे (उनके) अनुष्ठानके बारेमें तो कहना ही क्या है ? चुन्द ! (१) दूसरे हिंसक होंगे, और हम अहिंसक रहेंगे—यह विचार उत्पन्न करना चाहिये ० । (४४) दूसरे सान्दृष्टि-परामर्षी०—यह विचार उत्पन्न करना चाहिये ।

"जैसे, चुन्द ! कोई ! विषम (= कठिन) मार्ग है, और उसके परिक्रमण (= फेर खाने)-

के लिये दूसरा सम-मार्ग हो; जैसे चुन्द ! विषम तीर्थ (= नावका घाट) हो, और उसके परिक्रमण-के लिये दूसरा सम तीर्थ हो; ऐसे ही चुन्द ! (१) हिंसक पुरुष पुद्गल (= व्यक्ति)को अहिंसा परिक्रमणके लिये होती है। ०। (४४) सान्दृष्टि-परामर्षी आधान-ग्राही दुष्प्रतिनिस्सर्गी पुरुषपुद्गलको असान्दृष्टिता अ-परामर्षिता अनाधान-ग्राहिता सुप्रतिनिस्सर्गिता परिक्रमणके लिये होती है।

"जैसे चुन्द ! जो कोई भी अकुशल धर्म (= बुरे काम) हैं, वह सभी अधोभाव (= अधोगति)को पहुँचानेवाले हैं, जो कोई भी कुशल धर्म (= अच्छे काम) हैं, वह सभी उपरि-भावको पहुँचानेवाले हैं, वैसे ही चुन्द ! (१) हिंसक पुरुष = पुद्गलको अहिंसा ऊपर पहुँचानेवाली होती है। ०। (४४) सान्दृष्टिपरामर्षी आधान-ग्राही दुष्प्रतिनिस्सर्गी पुरुष = पुद्गलको असान्दृष्टिता, अ-परामर्षिता अनाधान-ग्राहिता सुप्रतिनिस्सर्गिता ऊपर पहुँचानेवाली होती है।

"चुन्द ! जो स्वयं गिरा हुआ है, वह दूसरे गिरे हुयेको उठायेगा, यह सम्भव नहीं है; किन्तु, जो चुन्द ! अपने गिरा हुआ नहीं है, वह दूसरे गिरे हुयेको उठायेगा, यह सम्भव है। चुन्द ! जो स्वयं अदान्त (= मनके संयमसे रहित), अ-विनीत, अ-परिनिर्वृत (= निर्वाणको न प्राप्त) है, वह दूसरेको दान्त, विनीत, परिनिर्वृत करेगा, यह सम्भव नहीं; किन्तु, जो चुन्द ! स्वयं दान्त, विनीत, परिनिर्वृत है, वह दूसरेको दान्त, विनीत, परिनिर्वृत करेगा, यह सम्भव है। ऐसेही चुन्द ! (१) हिंसक पुरुषके लिये अहिंसा परिनिर्वाणके लिये होती है। ०। (४४) सान्दृष्टि-परामर्षी आधानग्राही दुष्प्रतिनिस्सर्गी पुरुष-पुद्गलको असान्दृष्टिता-अपरामर्षिता अनाधान-ग्राहिता सुप्रतिनिस्सर्गिता परिनिर्वाण(= दुःखविनाश)के लिये होती है।

"यह मैंने चुन्द ! सल्लेख-पर्याय (= सलेख नामक धर्मोपदेश) उपदेशा, चित्तुप्पाद-पर्याय उपदेशा, परिक्रमण-पर्याय उपदेशा, उपरिभाव-पर्याय उपदेशा, परिनिर्वाण-पर्याय उपदेशा।

"चुन्द ! श्रावकों(= शिष्यों)के हितैषी, अनुकम्पक, शास्ता(= उपदेशक)को अनुकम्पा करके जो करना चाहिये, वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। चुन्द ! यह वृक्षमूल हैं, यह सूने घर हैं, ध्यानरत होओ। चुन्द ! मत प्रमाद (= गफलत) करो, मत पीछे अफसोस करनेवाले बनना—यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन (= उपदेश) है।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् चुन्दने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया।

(चालीस पदों और पांच संधियों में (जो) उपदेशा गया। सागरसमान-गंभीर (यह) सल्लेख नामक सूत्रान्त है।)

९—सम्मादिट्ठि-सुत्तन्त (१।१।९)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार क

वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—"आवुसो भिक्षुओ. .

"आवुस !" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—"आवुसो ! सम्यग्-दृष्टि (= सम्मादिट्ठि) सम्यग्दृष्टि कही जाती है, आवुसो ! कैसे आर्यश्रावक (= आर्यधर्मी) सम्यग्दृष्टि (= ठीक सिद्धान्तवाला) होता है ? उसकी दृष्टि सीधी, वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान्, (और) इस सद्धर्मको प्राप्त (होता है) ?"

"आवुस ! इस भाषणका अर्थ जाननेके लिये हम दूरसे भी आयुष्मान् सारिपुत्रके पास आते हैं। अच्छा हो, आयुष्मान् सारिपुत्र ही इस वचनका अर्थ कहें। आयुष्मान् सारिपुत्र (के मुख)से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

"तो आवुसो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो कहता हूँ।"

"अच्छा आवुस !" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—"जब, आवुसो ! आर्यश्रावक अकुशल(= बुराई)को जानता है, अकुशल-मूलको जानता है; कुशल(= भलाई, पुण्य)को जानता है; कुशलमूलको जानता है; इतनेसे आवुसो ! आर्यश्रावक सम्यग्-दृष्टि होता है। उसकी दृष्टि सीधी (होती है), वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान, (और) इस सद्धर्मको प्राप्त होता है।

"क्या है, आवुसो ! अ-कुशल ? क्या है अ-कुशलमूल ? क्या है कुशल ? क्या है कुशल-मूल—? आवुसो ! (१) प्राणातिपात (= हिंसा) अकुशल है; (२) अदत्तादान (= चोरी) अकुशल है; (३) काम(= स्त्री-संसर्ग)में मिथ्याचार (= दुराचार) ०; (४) मृषावाद (= झूठ बोलना) ०; (५) पिशुनवचन (= चुगली) ०; (६) परुषवचन (= कठोर भाषण) ०; (७) संप्रलाप (= बकवाद) ०; (८) अभिध्या (= लालच) ०; (९) व्यापाद (= प्रतिहिंसा) ०; (१०) मिथ्यादृष्टि (= झूठी धारणा) ०।—यह आवुसो ! अकुशल कहा जाता है। क्या है आवुसो ! अकुशल-मूल ?—(१) लोभ अकुशल-मूल है, (२) द्वेष ० (३) मोह अकुशल-मूल है।—यह आवुसो ! अकुशल-मूल कहा जाता है। क्या है आवुसो ! कुशल ?—(१) प्राणातिपातसे विरति (= विरत होना) कुशल है; (२) अदत्तादानसे विरति ०; (३) कामोंमें मिथ्याचारसे विरति ०; (४) मृषावादसे विरति ०; (५) पिशुनवचनसे विरति ०; (६) परुष-वचनसे विरति ०; (७) संप्रलापसे विरति ०; (८) अन्-अभिध्या ०; (९) अ-व्यापाद ०; (१०) सम्यग्दृष्टि कुशल है।—यह आवुसो ! कुशल कहा जाता है। क्या है आवुसो ! कुशलमूल ?—(१) अ-लोभ कुशल-मूल

है; (२) अ-द्वेष ०; (३) अ-मोह कुशल-मूल है।—यह आवुसो! कुशल-मूल कहा जाता है। जब आवुसो! आर्यश्रावक इस प्रकार अकुशलको जानता है, इस प्रकार अकुशल-मूलको जानता है। इस प्रकार कुशलको जानता है। इस प्रकार कुशलमूलको जानता है; (तो) वह राग-अनुशय (= ० मल) का परित्यागकर, प्रतिघ(= प्रतिहिंसा)अनुशयको हटाकर, अस्मि (= मैं हूँ) इस दृष्टि-मान (= धारणाके अभिमान)-अनुशयको उन्मूलन कर, अविद्याको नष्ट कर, विद्याको उत्पन्न कर, इसी जन्ममें दुःखोंका अन्त करनेवाला होता है। इतनेसे भी आवुसो! आर्य-श्रावक सम्यग्दृष्टि होता है०।

"ठीक आवुस!" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन कर अनुमोदन कर, आयुष्मान् सारिपुत्रसे आगेका प्रश्न पूछा—"क्या आवुस! और भी पर्याय (= प्रकार) है, जिससे कि आर्यश्रावक सम्यग्-दृष्टि होता है ०?"

"है, आवुसो! जब आवुसो! आर्यश्रावक आहारको जानता है, आहार-समुदय (= आहारकी उत्पत्ति)को जानता है, आहार-निरोध ०, आहार-निरोध-गामिनी प्रतिपद् (= आहारके विनाशकी ओर ले जानेवाले मार्ग)को जानता है। इतनेसे आवुसो! आर्यश्रावक सम्यग्दृष्टि होता है ०। क्या है आवुसो! आहार, क्या है आहार-समुदय,० आहार-निरोध,० आहार निरोध गामिनी प्रतिपद्?—आवुसो! सत्त्वोंकी स्थिति (और) होने वालोंकी सहायताके लिये भूतों (=प्रणियों)के यह चार आहार हैं। कौनसे चार?—(१) स्थूल या सूक्ष्म कवलिंकार (=ग्रास-करके खाया जानेवाला) आहार, (२) स्पर्श दूसरा (३) मनकी संचेतना (=ख्याल) तीसरा, (४) विज्ञान चौथा। तृष्णाका समुदय (=उत्पत्ति) (ही) आहारका समुदय है। तृष्णाका निरोध आहारका निरोध है। यह आर्य-अष्टांगिक मार्ग आहार-निरोध गामिनी प्रतिपद् है; जैसे कि—(१) सम्यग्-दृष्टि (= ठीक धारणा), (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यग्-वचन, (४) सम्यग्-कर्मान्त (= कर्म) (५) सम्यग्-आजीव, (६) सम्यग्-व्यायाम (= ०उद्योग), (७) सम्यक्-स्मृति; (८) सम्यक्-समाधि। जब आवुसो! आर्यश्रावक इस प्रकार आहारको जानता है ०, तो वह सर्वथा रागानुशयका परित्याग कर ०[1] दुःखोंका अन्त करनेवाला होता है। इतने से आवुसो!।

"ठीक आवुस!" यह (कह) उन भिक्षुओंने ०[1] आगेका प्रश्न पूछा—०[1]।"

"है, आवुसो! जब आवुसो! आर्यश्रावक दुःख को जानता है, दुःख-समुदय (= दुःखकी उत्पत्ति, या कारण)को जानता है, दुःख-निरोधको जानता है, (और) दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपद्को जानता है; तब आवुसो! आर्यश्रावक सम्यग्दृष्टि होता है०[1]। क्या है आवुसो! दुःख, क्या है दुःख-समुदय, क्या है दुःख-निरोध, क्या है दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपद्?—जाति (=जन्म) भी दुःख है, जरा भी दुःख, व्याधि भी दुःख, मरण भी दुःख, शोक परिदेव (= रोना-काँदना) दुःख=दौर्मनस्य (=मनःसंताप) उपायास (=परेशानी) भी दुःख है, किसी (चीज)की इच्छा करके उसे न पाना (यह) भी दुःख है; संक्षेपमें पाँचों उपादान (=विषयके तौर पर ग्रहण करने योग्य) स्कन्ध (ही) दुःख हैं। इसे आवुसो! दुःख कहा जाता है। क्या है आवुसो! दुःख-समुदय? यह जो नन्दी उन उन (भोगों)का अभिनन्दन करनेवाली, रागसे संयुक्त, फिर फिर जन्मने की तृष्णा है, जैसे कि—(१) काम (= इंद्रिय-संभोग)की तृष्णा, (२) भव (= जन्मने)की तृष्णा, (३) विभव(= धन)की तृष्णा।—यह आवुसो! दुःख-समुदय कहा

---

[1] देखो ऊपर।

जाता है। क्या है आवुसो! दुःख-निरोध?—जो उस तृष्णाका संपूर्णतया विराग, निरोध, त्याग=प्रतिनिस्सर्ग, मुक्ति, अनालय (=उसमें लीन न होना)।—यह कहा जाता है आवुसो! दुःखनिरोध। क्या है आवुसो! दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद्?—यह आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ० है। (४) जैसे कि (१) सम्यग् दृष्टि ०[1] (८) सम्यक्-समाधि। जब आवुसो! आर्य-श्रावक इस प्रकार दुःखको जानता है ०।०। इतनेसे आवुसो! ०।

"ठीक, आवुस! ०[1]।"

"है, आवुसो! जब आवुसो! आर्यश्रावक जरा-मरणको जानता है, ० समुदय ०, ० निरोध ०, ० निरोध गामिनी प्रतिपद्को जानता है, तब आवुसो! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है आवुसो! जरा-मरण, ० समुदय, ० निरोध, ० निरोध-गामिनी प्रतिपद्?—जो उन उन प्राणियोंकी उन उन प्राणि-शरीरोंमें जरा (=बुढ़ापा) जीर्णता, खाण्डित्य (=दाँत टूटना), पालित्य (=बाल पकना), वलित्वक्ता (=झुर्री पड़ना), आयु-क्षय, इन्द्रिय-परिपाक (=० विकार)।—यह कही जाती है आवुसो! जरा क्या है आवुसो! मरण?—जो उन उन प्राणियोंकी उन उन प्राणि-शरीरोंमे च्युति=च्यवन होना, भेद (=वियोग), अन्तर्धान, मृत्यु, मरण=कालक्रिया, स्कन्धोंका विलग होना, कलेवरका निक्षेप (=पतन)।—यह कहा जाता है आवुसो! मरण। इस प्रकार यह जरा और यह मरण (दोनों मिलकर) जरा-मरण होते हैं। जाति-समुदय (=जन्मका होना) जरा-मरण-समुदय है, जाति-निरोध (होनेसे), जरा-मरण-निरोध होता है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग जरा मरण निरोध गामिनी प्रतिपद् है; जैसे कि ०[1]। जब आवुसो! ०[1]।"

"ठीक आवुस! ०[1]"

"है, आवुसो! जब आवुसो! आर्यश्रावक तृष्णाको जानता है, ० समुदय ०, ० निरोध ०, ० निरोधगामिनी प्रतिपद्को जानता है; तब आवुसो! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है, आवुसो! तृष्णा, ० समुदय, ० निरोध, ० निरोधगामिनी प्रतिपद्?—आवुसो! तृष्णाके यह छः आकार (=काय,=समुदाय) हैं—रूप-तृष्णा, शब्द-तृष्णा, गन्ध-तृष्णा, रस-तृष्णा, स्प्रष्टव्य-(=स्पर्शका विषय)-तृष्णा, धर्म (=मनके विषयकी)-तृष्णा। वेदना (=अनुभव, महसूस करना)-समुदय (ही) तृष्णा-समुदय है, वेदना-निरोध (ही) तृष्णा-निरोध है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग तृष्णा-निरोध गामिनी प्रतिपद् है; जैसे कि ०[1]। जब आवुसो! ०[1]।"

"ठीक, आवुस! ०[1]"

"है, आवुसो! ० वेदनाको जानता है, ० समुदय ०, ० निरोध ०, ० निरोध-गामिनी प्रतिपद्को जानता है। तब आवुसो! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है, आवुसो! वेदना, ० समुदय, ० निरोध, ० निरोध गामिनी प्रतिपद्?—आवुसो! वेदनाके यह छ आकार हैं—(१) चक्षुः-संस्पर्शजा (=चक्षुके संयोगसे उत्पन्न) वेदना (=एहसास, अनुभव); (२) श्रोत्र-संस्पर्शजा वेदना, (३) घ्राण-संस्पर्शजा वेदना, (४) जिह्वा-संस्पर्शजा वेदना, (५) काय-संस्पर्शजा वेदना, (६) मनः-संस्पर्शजा वेदना। स्पर्श (=इन्द्रिय और विषयका संयोग)-समुदय (से ही) वेदना-समुदय (होता है), स्पर्श-निरोध से वेदना-निरोध होता है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग-वेदना-निरोध गामिनी प्रतिपद् है, जैसे कि ०[1]। जब आवुसो ०[1]।

"ठीक आवुस! ०[1]"

---

[1] देखो पृष्ठ २१।

"है, आवुसो ! ० स्पर्श (= इन्द्रिय और विषयका संयोग)को जानता है, ० समुदय, ००। तब आवुसो ! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है आवुसो ! स्पर्श, ० समुदय, ० ० ?—आवुसो ! स्पर्शके यह प्रकार (या समुदाय) हैं—(१) चक्षुः-संस्पर्श, (२) श्रोत्र-संस्पर्श, (३) घ्राण-संस्पर्श, (४) जिह्वा-संस्पर्श, (५) काय-संस्पर्श, (६) मनः-संस्पर्श। षड्-आयतन (= चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय या त्वक् और मन यह छः इन्द्रियाँ)-समुदय (ही) स्पर्श-समुदय है। षडायतन-निरोध (से) स्पर्श-निरोध (होता है) । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग स्पर्श-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है, जैसे कि ०[1]। तब आवुसो ०[1]।

"ठीक आवुस ! ० [1]"

"है, आवुसो ! ० षडायतनको जानता है, ० समुदय ०। ००। तब आवुसो ! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है आवुसो ! षडायतन, ० निरोध, ०० ?—आवुसो ! यह छ आयतन (= इन्द्रिय) हैं—(१) चक्षुः-आयतन, (२) श्रोत्र-आयतन, (३) घ्राण-आयतन, (४) जिह्वा-आयतन, (५) काय-आयतन, (६) मन-आयतन। नाम-रूप (= विज्ञान और रूप Mind and matter)-समुदय, षडायतन-समुदय है, नाम-रूप-निरोध (ही) षडायतन-निरोध है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०[1]।०[1]।

"ठीक आवुस ! ०[1]"

"है, आवुसो ! ० नाम-रूपको जानता है, ० समुदय ०,००। तब आवुसो ! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है आवुसो ! नाम-रूप, ० निरोध, ०० ?—(१) वेदना (= विषय और इन्द्रियके संयोगसे उत्पन्न मन पर प्रथम प्रभाव), (२) संज्ञा (= वेदनाके अनंतरकी मनकी अवस्था), (३) चेतना (= संज्ञाके अनंतरकी मनकी अवस्था) (४) स्पर्श, मनसिकार (= मनपर संस्कार),—यह आवुसो ! नाम हैं। चार महाभूत और चार महाभूतों को लेकर (बने) रूप, यह आवुसो रूप कहा जाता है। इस प्रकार यह नाम, (और) यह रूप, (दोनों मिलकर) आवुसो ! नाम-रूप कहा जाता है। विज्ञान-समुदय नाम-रूप-समुदय है। विज्ञान-निरोध, नाम-रूप-निरोध है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०[1]।०[1]।

"ठीक आवुस ! ० [1]"

"है, आवुसो ! ० विज्ञानको जानता है, ० समुदय, ००। तब आवुसो ! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है आवुसो ! विज्ञान, ० समुदय, ०० ?—आवुसो ! यह छ विज्ञानके समुदाय (= काय) हैं—(१) चक्षुः-विज्ञान, (२) श्रोत्र-विज्ञान, (३) घ्राण-विज्ञान, (४) जिह्वा-विज्ञान, (५) काय-विज्ञान, (६) मनो-विज्ञान। संस्कार-समुदय विज्ञान-समुदय है, संस्कार-निरोध विज्ञान-निरोध है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०[1]। ०[1]।

"ठीक आवुस ! ०[1]"

"है, आवुसो ! ० संस्कारोंको जानता है। ० समुदय, ००। तब आवुसो ! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है आवुसो ! संस्कार, (= क्रिया, गति) ० समुदय, ०० ?—आवुसो ! यह तीन संस्कार हैं—(१) काय-संस्कार, (२) वचन-संस्कार, (३) चित्त-संस्कार-निरोध है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०[1]।०[1]।

"ठीक आवुस ! ०[1]"

"है, आवुसो ! ० अविद्याको जानता है, ० समुदय, ००। तब आवुसो ! आर्यश्रावक ०[1]।

---

[1] देखो पृष्ठ ३१।

क्या है आवुसो अविद्या, ० समुदय, ०० ?—आवुसो ! जो यह दुःखके विषयमें अज्ञान, दुःख समुदयके विषयमें अज्ञान, दुःख-निरोधके विषयमें अज्ञान, दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्के विषयमें अज्ञान, इसे आवुसो ! अविद्या कहा जाता है। आस्रव-समुदय अविद्या-समुदय है। आस्रव-निरोध अविद्या-निरोध है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०[1]। ०[1]।

"ठीक आवुस ! ०[1]"

"है, आवुसो ! ० आस्रव (=चित्तमल)को जानता है, ० समुदय, ००। तब आवुसो ! आर्यश्रावक ०[1]। क्या है आवुसो ! आस्रव, ० समुदय, ०० ?—आवुसो ! यह तीन आस्रव हैं—(१) काम-आस्रव, (२) भव-(=जन्मनेका) आस्रव, (३) अविद्या-आस्रव। अविद्या-समुदय आस्रव-समुदय है, अविद्या-निरोध आस्रव-निरोध है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०[1]।

इतनेसे आवुसो ! आर्यश्रावक सम्यग्-दृष्टि होता है, उसकी दृष्टि सीधी (होती है), वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान्, (और) इस सद्धर्मको प्राप्त होता है।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया।

१०—सति-पट्ठान-सुत्तन्त (१।१।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कुरु[1] (देश)में कुरुओंके निगम (=कस्बा) कम्मास-दम्ममें विहार करते थे।

वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

"भिक्षुओ! यह जो चार स्मृति-प्रस्थान (=सति-पट्ठान) हैं, वह सत्त्वोंके—शोक कष्टकी विशुद्धि के लिए; दुःख=दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाण-की प्राप्ति और साक्षात्करनेके लिये, एकायन (=अकेला) मार्ग है। कौनसे चार?—भिक्षुओ! यहाँ (इस धर्ममें) भिक्षु कायामें [2]काय-अनुपश्यी हो, उद्योगशील अनुभव (=संप्रजन्य) ज्ञान-युक्त, स्मृति-मान्, लोक (=संसार या शरीर)में अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (=दुःख)-को हटाकर विहरता है। वेदनाओं (=सुखादि)में [3]वेदनानुपश्यी हो ० विहरता है। चित्तमें चित्तानुपश्यी ०। धर्मोंमें धर्मानुपश्यी ०।

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु [4]कायामें, कायानुपश्यी हो विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु अरण्यमें, वृक्षके नीचे, या शून्यागारमें, आसन मारकर, शरीरको सीधाकर, स्मृतिको सामने रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते साँस छोड़ता है, स्मरण रखते ही साँस लेता है। लम्बी साँस छोड़ते वक्त, 'लम्बी साँस छोड़ता हूँ'—जानता है। लम्बी साँस लेते वक्त, 'लम्बी साँस लेता हूँ'—जानता है। छोटी साँस छोड़ते, 'छोटी साँस छोड़ता हूँ'—जानता है। छोटी साँस लेते 'छोटी साँस लेता हूँ'—जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये, साँस छोड़ना सीखता है। सारी कायाको जानते हुये साँस लेना सीखता है। कायाके संस्कार (=गति, क्रिया)को शांत करते साँस छोड़ना सीखता है। कायाके संस्कारको शांत करते साँस लेना सीखता है। जैसे कि—भिक्षुओ! एक चतुर खरादकार (=भ्रमकार) या खरादकारका अन्तेवासी लम्बे (काष्ठ)को रंगते समय 'लम्बा रंगता हूँ'—जानता है। छोटेको रंगते समय 'छोटा रंगता हूँ'—जानता है। ऐसेही भिक्षुओ! भिक्षु लम्बी साँस छोड़ते ०, लम्बी साँस लेते ०, छोटी साँस छोड़ते ०, छोटी साँस लेते ० जानता है। सारी

---

[1] कुरुके बारेमें देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ११८। [2] शरीरको उसके असल स्वरूप केश-नख-मल-मूत्र आदि रूपमें देखनेवाला 'काये कायानुपश्यी' कहा जाता है। [3] सुःख, दुःख, न दुःख न सुख इन तीन चित्तकी अवस्था रूपी वेदनाओंको जैसा हो वैसा देखनेवाला 'वेदनामें वेदनानुपश्यी ०।' [4] यही आनापान (=प्राणायाम) कहलाता है।

कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये साँस छोड़ना सीखता है, ० साँस लेना ०। काय-संस्कारको शांत करते साँस छोड़ना सीखता है, ० साँस लेना ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है। कायाके बाहरी भागमें ०। कायाके भीतरी और बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मको देखता विहरता है। कायामें व्यय (=खर्च, विनाश) धर्मको देखता विहरता है। कायामें समुदय-व्यय (=उत्पत्ति-विनाश) धर्मको देखता विहरता है। 'काया है'—यह स्मृति, ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है। (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं, और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भी भिक्षुओ! भिक्षु कायामें काय बुद्धि रखते विहरता है।

"[1] फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुये 'जाता हूँ'—जानता है। बैठे हुये 'बैठा हूँ'—जानता है। सोये हुये 'सोया हूँ'—जानता है। जैसे जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसेही उसे जानता है। इसी प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है, कायाके बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है। कायाके भीतरी और बाहरी भागोंमें कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय-(=उत्पत्ति)-धर्म देखता विहरता है, ० व्यय-(=विनाश) धर्म ०, ० समुदय-व्यय-धर्म ०। ०।

"[2] और भिक्षुओ! भिक्षु जानते (=अनुभव करते) हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आलोकन=विलोकन करता है। ० सिकोड़ना फैलाना ० [3]संघाटी, पात्र, चीवरका धारण करता है। जानते हुये आसन, पान, खादन, आस्वादन, करता है। ० पाखाना (=उच्चार), पेशाब (=परसाव), करता है। चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते, जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है। ०।

"[4] और भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर, केश-मस्तकसे नीचे, इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता (=अनुभव करता) है—इस कायामें हैं—केश, रोम, नख, दाँत, त्वक् (=चमड़ा), मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थि (के भीतरकी) मज्जा, वृक्क, हृदय (कलेजा), यकृत, क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत (=अंत-गुण), उदरस्थ (वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=वर), आँसू, वसा (=चर्बी), लार, नासा-मल, [5]लसिका, और मूत्र। जैसे भिक्षुओ! नाना अनाज शाली, व्रीहि (=धान), मूँग, उड़द, तिल, तण्डुलसे दोनों मुखभरी डेहरी (=गुठोली, पुटोली) हो, उसको आँखवाला पुरुष खोलकर देखे—यह शाली हैं, यह व्रीहि हैं, यह मूँग हैं, यह उड़द हैं, यह तिल हैं, यह तंडुल हैं। इसी प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेके ऊपर केश-मस्तकसे नीचे इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता है—इस कायामें हैं ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है। ०।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु इस [6]कायाको (इसकी) स्थितिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है—इस कायामें हैं—पृथिवी धातु (=पृथिवी महाभूत), आप (=जल)-धातु, तेज (=अग्नि) धातु, वायु-धातु। जैसे कि भिक्षुओ! दक्ष (=चतुर) गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी, गायको मारकर बोटी बोटी काटकर चौरस्तेपर बैठा हो। ऐसे ही भिक्षुओ! भिक्षु इस कायाको स्थितिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है। ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागको ०।

---

[1] यही ईर्या-पथ है। [2] यही संप्रजन्य है। [3] भिक्षुओंकी दोहरी चादर। [4] प्रतिकूल-मनसिकार। [5] केहुनी आदि जोड़ोंमें स्थित तरल पदार्थ। [6] धातु-मनसिकार।

"[1]और भिक्षुओ ! भिक्षु एक दिनके मरे, दो दिनके मरे, तीन दिनके मरे, फूले, नीले पड़ गये, पीब-भरे, (मृत)-शरीरको श्मशानमें फेंको देखे। (और उसे) वह इसी (अपनी) कायापर घटावै—यह भी काया इसी धर्म (=स्वभाव)-वाली, ऐसी ही होनेवाली, इससे न बच सकनेवाली है। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०। ०।

"और भिक्षुओ ! भिक्षु कौओंसे खाये जाते, चील्होंसे खाये जाते, गिद्धोंसे खाये जाते, कुत्तोंसे खाये जाते, नाना प्रकारके जीवोंसे खाये जाते, श्मशानमें फेंके (मृत-)शरीरको देखै। वह इसी (अपनी) कायापर घटावै—यह भी काया०। ०।

"और भिक्षुओ ! भिक्षु माँस-लोहू-नसोंसे बँधे हड्डी-कंकालवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देखे ०। ०।

"० माँस-रहित लोहू-लगे, नसोंसे बँधे०। ०। ० माँस-लोहू-रहित नसोंसे बँधे०। ०। ० बंधन-रहित हड्डियोंको दिशा-विदिशामें फेंकी देखे—कहीं हाथकी हड्डी है, ० पैरकी हड्डी ० ० जंघाकी हड्डी ०, ० उरूकी हड्डी ०, कमरकी हड्डी ०, ० पीठके काँटे ०, ० खोपड़ी ०, और इसी (अपनी) [2]कायापर घटाये ०। ०।

"और भिक्षुओ ! भिक्षु शंखके समान सफेद वर्णके हड्डीवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देखे ०। ०। ० वर्षों-पुरानी जमाकी हड्डियोंवाले ०। ०। ० सड़ी चूर्ण होगई हड्डियोंवाले ०। ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु [3]वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी (हो) विहरता है?—भिक्षुओ ! भिक्षु सुख-वेदनाको अनुभव करते 'सुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। दुःख-वेदनाको अनुभव करते 'दुःखवेदना अनुभवकर रहा हूँ'—जानता है। अदुःख-असुख वेदनाको अनुभव करते 'अदुःख-असुख-वेदना अनुभवकर रहा हूँ'—जानता है। स-आमिष (= भोग-पदार्थ-सहित) सुख-वेदनाको अनुभव करते ०। निर्-आमिष सुख-वेदना ०। स-आमिष दुःख-वेदना ०। निर्-आमिष दुःख-वेदना ०। स-आमिष अदुःख-असुख-वेदना ०। निर्-आमिष अदुःख-असुख-वेदना ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ०। ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु चित्तमें [4]चित्तानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु स-राग चित्तको 'स-राग चित्त है'—जानता है। विराग (= राग-रहित)) चित्तको 'विराग चित्त है'—जानता है। स-द्वेष चित्तको 'सद्वेष चित्त है'—जानता है। वीत-द्वेष (= द्वेष-रहित) चित्तको 'वीत-द्वेष चित्त है'—जानता है। स-मोह चित्तको ०। वीत-मोह चित्तको ०। संक्षिप्त चित्तको ०। विक्षिप्त चित्तको ०। महद्-गत (= महापरिमाण) चित्तको ०। अ-महद्गत चित्तको ०। स-उत्तर ०। अन्-उत्तर (= उत्तम) ०। समाहित (= एकाग्र) ०। अ-समाहित ०। विमुक्त ०। अ-विमुक्त ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ०। ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मोंमें [5]धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी (हो) विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच [6]नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी काम-च्छन्द (= कामुकता)को 'मेरेमें भीतरी काम-च्छन्द विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी कामच्छन्दको 'मेरेमें भीतरी कामच्छन्द नहीं विद्यमान है'—जानता है। अन्-उत्पन्न कामच्छन्दकी जैसे

[1] श्मशान। [2] चौदह (१) कायानुपश्यना समाप्त। [3] (२) वेदनानुपश्यना। [4] (३) चित्तानुपश्यना। [5] (४) धर्मानुपश्यना। [6] पाँच नीवरण—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा।

उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (= विनाश) होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट कामच्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी व्यापाद (= द्रोह)को—'मेरेमें भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी व्यापादको—'मेरेमें भीतरी व्यापाद नहीं विद्यमान है'—जानता है। जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नहीं उत्पन्न होता, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी स्त्यान-मृद्ध (= थीन-मिद्ध = शरीर-मनकी अलसता) ०।०।

० भीतरी औद्धत्य-कौकृत्य (= उद्धच-कुक्कुच = उद्वेग-खेद,) ०।०।

० भीतरी विचिकित्सा (= संशय) ०।०।

"इस प्रकार भीतर धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहर धर्मोंमें (भी) धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर ०। धर्मोंमें समुदय (= उत्पत्ति) धर्मका अनुपश्यी (= अनुभव करनेवाला) हो विहरता है। । ० व्यय (= विनाश)-धर्म ०। ० उत्पत्ति-विनाश-धर्म ०। स्मृतिके प्रमाणके लिये ही, 'धर्म है'—यह स्मृति उसको बराबर विद्यमान रहती है। वह (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं और मेरा) करके ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादान [1]स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादान स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है? भिक्षुओ! भिक्षु (अनुभव करता है)—'यह रूप है', 'यह रूपकी उत्पत्ति (= समुदय)', 'यह रूपका अस्त-गमन (= विनाश) है'। ० संज्ञा ०। ० संस्कार ०। ० विज्ञान ०। इस प्रकार अध्यात्म (= शरीरके भीतरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। बहिर्धा (= शरीरके बाहरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी ०। शरीरके भीतरी-बाहरी धर्मों (= वस्तुओं)में समुदय (= उत्पत्ति)—धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें विनाश (= व्यय)—धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें उत्पत्ति-विनाश-धर्मको अनुभव करता विहरता है। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है'—यह स्मृति उसको बराबर विद्यमान रहती है। वह अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादान-स्कंधोंमें धर्म (= स्वभाव) अनुभव करता (= धर्म-अनुपश्यी) विहरता है।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु छः आध्यात्मिक (= शरीरके भीतरी), बाह्य (= शरीरके बाहरी) [2]आयतन धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु छः भीतरी बाहरी आयतन(-रूपी) धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु चक्षुको अनुभव करता है, रूपोंको अनुभव करता है, और जो उन दोनों (= चक्षु और रूप) करके संयोजन[3] उत्पन्न होता है, उसे भी अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न संयोजनकी

---

[1]स्कंध—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

[2]आयतन—चक्षुः, श्रोत्र, घ्राण (= नासिका), जिह्वा (= रसना), काय (= त्वक्), मन। इनमें पहिले पाँच बाह्यआयतन है, मन आध्यात्मिक (= शरीरके भीतरका) आयतन है।

[3]संयोजन दश यह है—प्रतिघ (= प्रतिहिंसा), मान (= अभिमान), दृष्टि (धारणा, मत), विचिकित्सा (= संशय), शील-व्रत-परामर्श (= शील और व्रतका ख्याल), भव-राग (आवागमन-प्रेम), ईर्षा, मात्सर्य और अ-विद्या। संयोजनका शब्दार्थ बन्धन है।

उत्पत्ति होती है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका प्रहाण (= विनाश) होता है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार प्रहीण (= विनष्ट) संयोजनकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे भी जानता है। श्रोत्रको अनुभव करता है; शब्दको अनुभव करता है ०। घ्राण (सूंघनेकी शक्ति, घ्राण-इंद्रिय)को अनुभव करता है। गंधको अनुभव करता है ०। जिह्वा ० र ०। ०। काया (= त्वक्-इंद्रिय, ठंडा गर्म आदि जाननेकी शक्ति) ०, स्प्रष्टव्य (= ठंडा गर्म आदि ०। ०। मनको अनुभव करता है। धर्म (= मनके विषय)को अनुभव करता है। दोनों (= मन और धर्म) करके जो [1]संयोजन उत्पन्न होता है, उसको भी अनुभव करता है। ०। इस प्रकार अध्यात्म (= शरीरके भीतर) धर्मों (= पदार्थों)में धर्म (= स्वभाव) अनुभव करता विहरता है, बहिर्धा (= शरीरके बाहर) ०, अध्यात्म-बहिर्धा ०। धर्मोंमें उत्पत्ति-धर्मको ०, ० विनाश-धर्मको ०, ० उत्पत्ति-विनाश-धर्मको ०। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ०। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले छः आयतन धर्मों (= पदार्थों) में धर्म (= स्वभाव) अनुभव करता विहरता है।

"और भिक्षुओ! भिक्षु सात [2]बोधि-अङ्ग धर्मों (= पदार्थों)में धर्म (= स्वभाव) अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ। ०? भिक्षुओ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (= अध्यात्म) स्मृति संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अङ्ग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी स्मृति संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अङ्ग नहीं है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न स्मृति संबोधि-अङ्गकी उत्पत्ति होती है; उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति संबोधि अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है; उसे भी जानता है। ० भीतरी धर्म-विचय (= धर्म-अन्वेषण) संबोधि-अङ्ग ०। ०वीर्य ०। ० प्रीति ०। ० प्रश्रब्धि ०। ० समाधि ०। विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अङ्ग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अङ्ग नहीं है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अङ्गकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है; उसे जानता है। इस प्रकार शरीरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता; शरीरके बाहर ०, शरीरके भीतर-बाहर ०। ०। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात संबोधि-अङ्ग धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु चार [3]आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करते विहरता है। कैसे ०? भिक्षुओ! 'यह दुःख है'—ठीक ठीक (= यथाभूत = जैसा है वैसा) अनुभव करता है। 'यह दुःखका समुदय (= कारण) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखका निरोध

---

[1] संयोजन दस यह हैं—प्रतिघ (= प्रतिहिंसा), मान (= अभिमान), दृष्टि (= धारणा, मत), विचिकित्सा (= संशय), शील-व्रत-परामर्श (= शील और व्रतका ख्याल), भव-राग (= आवागमन-प्रेम), ईर्षा, मात्सर्य और अ-विद्या। संयोजनका शब्दार्थ बन्धन है।

[2] सात बोध्यङ्ग—स्मृति, धर्म-विचय (= धर्म-अन्वेषण), वीर्य (= उद्योग), प्रीति (= हर्ष), प्रश्रब्धि (= शांति), समाधि, उपेक्षा। संबोधि = बोधि (= परम ज्ञान) प्राप्त करनेमें यह परम सहायक हैं, इसलिये इन्हें बोधि-अङ्ग कहा जाता है।

[3] आर्य-सत्य चार हैं—दुःख, समुदय, निरोध, निरोध-गामिनी-प्रतिपद्।

(= विनाश) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखके निरोधकी ओर ले जानेवाला मार्ग (= दुःख-निरोध गामिनी-प्रतिपद्) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है।

"इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। ०। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें किसी (वस्तु)को भी (मैं और मेरा) करके नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

"जो कोई भिक्षुओ! इन चार स्मृति-प्रस्थानोंको इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसको दो फलोंमें एक फल (अवश्य) होना चाहिये—इसी जन्ममें आज्ञा (= अर्हत्व)का साक्षात्कार, या [1]उपाधि शेष होनेपर अनागामी-भाव। रहने दो भिक्षुओ! सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानोंको इस प्रकार छः वर्ष भावना करे ०। ० पाँच वर्ष। चार वर्ष ०। ० तीन वर्ष ०। ० दो वर्ष ०। ० एक वर्ष ०। ० सात मास ०। ० छः मास ०। ० पाँच मास ०। ० चार मास ०। ० तीन मास ०। ० दो मास ०। ० एक मास ०। ० अर्द्ध मास ०। ० सप्ताह ०।

"भिक्षुओ! 'यह जो चार स्मृति-प्रस्थान हैं; यह सत्त्वोंके शोक-कष्टकी विशुद्धिके लिये, दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (= सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन मार्ग है।' यह जो (मैंने) कहा, इसी कारणसे कहा।"

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो, उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया।[2]

१—इति मूलपरियायवग्ग (१।१)

११—चूल-सीहनाद-सुत्तन्त (१।२।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ! यहाँ ही प्रथम श्रमण (=संन्यासी महात्मा) (है), यहाँ द्वितीय श्रमण, यहाँ तृतीय श्रमण, यहाँ चतुर्थ श्रमण है, दूसरे मत (= प्रवाद) श्रमणोंसे शून्य हैं।—इस प्रकार भिक्षुओ! अच्छी तरहसे सिंहनाद (= सीहनाद) करो।

"हो सकता है भिक्षुओ! अन्य तैर्थिक (= दूसरे मतवाले) यह कहें—'आयुष्मानोंको क्या आश्वास = क्या बल है, जिससे कि तुम आयुष्मान् यह कहते हो—यहाँ ही श्रमण है, ०'। ऐसा कहनेवाले अन्य मतानुयायियोंको भिक्षुओ! तुम ऐसा कहना—'आवुसो! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्यक् संबुद्धने हमें चार धर्म (=बात) बतलाये हैं, जिनको हम अपने भीतर देखतेहुये ऐसा कहते हैं—'यहाँ ही श्रमण है ०। कौनसे चार?—आवुसो! (१) हमारी शास्ता (= उपदेशक)में श्रद्धा (= प्रसाद) है, (२) धर्ममें श्रद्धा है, (३) शील (= सदाचार)में परिपूर्ण कारिता (= पूरा करनेवाला होना), (४) सहधर्मी गृहस्थ और प्रव्रजित हमारे प्रिय = मनाप हैं। आवुसो! उन भगवान् = सम्यक्-सम्बुद्धने हमें यह चार धर्म बतलाये हैं, जिनको हम अपने भीतर देखतेहुये ऐसा कहते हैं—यहाँ ही श्रमण ०।'

"हो सकता है, भिक्षुओ! अन्य मतानुयायी यह कहें—'आवुसो! (१) जो हमारा शास्ता (= गुरु) है, (उस) शास्तामें हमारी भी श्रद्धा है; जो हमारा धर्म है, (उस) धर्ममें हमारी भी श्रद्धा है; (२) जो हमारे शील (= सदाचार) हैं, (उन) शीलोंमें हमारी भी परिपूर्णकारिता है। हमारे भी सहधर्मी गृहस्थ और प्रव्रजित प्रिय = मनाप हैं। आवुसो! तुम्हारे और हमारेमें यहाँ क्या विशेष = नाना-करण = अभिप्राय है? ऐसा कहनेवाले अन्यमतानुयायियोंको भिक्षुओ! तुम ऐसा कहना—'आवुसो! क्या (आप लोगोंकी) एकनिष्ठा है, या पृथग् (= अलग) निष्ठा?' ठीकसे उत्तर देनेपर भिक्षुओ! अन्यमतावलम्बी यह उत्तर देंगे—'एक निष्ठा है आवुसो! पृथग् निष्ठा नहीं है।' 'आवुसो! वह निष्ठा क्या सरागके सम्बन्धमें है, या वीतरागके सम्बन्धमें?' ठीकसे उत्तर देनेपर अन्यमतावलम्बी यह कहेंगे—'वीतरागके सम्बन्धमें है यह निष्ठा, आवुसो! सरागके सम्बन्धमें नहीं।' 'आवुसो! वह निष्ठा क्या सद्वेषके सम्बन्धमें है या वीतद्वेषके सम्बन्धमें ०?' ०'० वीतद्वेषके सम्बन्धमें ०।' '० समोहके सम्बन्ध में, या वीतमोहके ०?' ० '० वीतमोहके सम्बन्धमें ०।' '० स-तृष्णके सम्बन्धमें, या वीत-तृष्णके ०?'० '० वीततृष्णके सम्बन्धमें ०।' '० स-उपादान (= बटोरनेवाले)के सम्बन्धमें, या अनुपादानके ०?' ०'० अनुपादानके

सम्बन्धमें ०।' '० विद्दसु (= ज्ञानी) ० या अ-विद्दसुके ०?' ० '० विद्दसुके सम्बन्धमें ०।' '० अनुरुद्ध = प्रतिविरुद्धके सम्बन्धमें या अन्-अनुरुद्ध = अप्रतिविरुद्धके ० ०?' ० '० अनुरुद्ध = अप्रतिविरुद्धके सम्बन्धमें ०।' '० प्रपंचाराम = प्रपंचरतिके सम्बन्धमें या निष्प्रपंचारामके ०?' ० '० निष्प्रपंचारामके सम्बन्धमें यह निष्ठा है आवुसो! प्रपंचाराम = प्रपंचरतिके सम्बन्धमें नहीं।'

"भिक्षुओ! दो प्रकारकी दृष्टियाँ (= धारणायें) हैं—भव (= संसार)-दृष्टि, विभव (= अ-संसार)दृष्टि। भिक्षुओ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण भवदृष्टिमें लीन, भवदृष्टिको प्राप्त, भवदृष्टिमें तत्पर हैं; वह विभवदृष्टिसे विरुद्ध हैं; और, भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण विभवदृष्टिमें लीन, विभवदृष्टिको प्राप्त, विभवदृष्टिमें तत्पर हैं, वह भवदृष्टिसे विरुद्ध हैं। भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय (= उत्पत्ति) अस्तगमन, आस्वाद, आदिनव (= परिणाम) निस्सरण (= निकास) को यथार्थतया नहीं जानते, वह सराग (हैं), सद्वेष, समोह, सतृष्णा, स-उपादान, अ-विद्दसु (= अज्ञानी), अनुरुद्ध = प्रतिविरुद्ध, प्रपंचाराम प्रपंचरत, हैं; वह जाति, जरामरण, शोक-परिदेव (= क्रंदन)-दुःख-उपायासोंसे नहीं छूटे हैं—यह मैं कहता हूँ। (और) भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय ०को यथार्थतया जानते हैं, वह वीतराग (हैं), वीतद्वेष ० निष्प्रपंचरत हैं, वह जाति, जरामरण, ०से छूटे हैं—यह मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ! यह चार उपादान (= आग्रह, ग्रहण) हैं। कौनसे चार?—(१) काम (= इन्द्रियभोग)-उपादान। (२) दृष्टि (= धारणा)-उपादान, (३) शील-व्रत-उपादान; (४)-आत्मवाद-उपादान।

भिक्षुओ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण (अपनेको) सर्व-उपादान-परिज्ञावादी (= सारे उपादानोंके त्यागका मत रखनेवाले) कहतेहुये भी, वह ठीक तौरसे सारे उपादानोंके परिज्ञा (= परित्याग) को प्रज्ञापित नहीं करते। काम-उपादान की परिज्ञाको कहते हैं, (किन्तु) दृष्टि ०, शील-व्रत ०, आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापित करते। सो किस कारण?—यह आप श्रमण ब्राह्मण (उन) तीन बातों (= स्थानों)को ठीकसे नहीं जानते, इसीलिये यह श्रमण ब्राह्मण (अपनेको) सर्व-उपादान-परिज्ञावादी कहते भी ०, आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापन करते।

"भिक्षुओ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण (अपनेको) सर्व-उपादान-परिज्ञा-वादी कहते भी ०। काम ०, (और) दृष्टि-उपादानकी परिज्ञाको प्रज्ञापते हैं, (किन्तु) शीलव्रत ०, (और) आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापते। सो किस कारण?— ० उन दो बातोंको ठीकसे नहीं जानते ०।

"भिक्षुओ! कोई कोई ० कहते भी ०। काम ०, दृष्टि ०, (और) शीलव्रत-उपादानकी परिज्ञा (= परित्याग)को प्रज्ञापते (= बतलाते) हैं, (किन्तु) आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञा नहीं प्रज्ञापते। सो किस कारण?— ० इस एक बातको ठीकसे नहीं जानते ०।

"भिक्षुओ! इस प्रकारके धर्मविनय (= मत)में जो शास्ताके सम्बन्धमें श्रद्धा है, वह सम्यग्गत (= ठीक स्थानमें) नहीं कही जाती; जो धर्ममें श्रद्धा ०; जो शीलोंमें परिपूर्ण-कारिता ०; जो सहधर्मियोंमें प्रिय-मनापता है, वह सम्यग्गत नहीं कही जाती। सो किस कारण? क्योंकि यह ऐसे धर्म-विनय (= मत)के विषयमें है, (जो कि) दुराख्यात (= ठीकसे नहीं व्याख्यान किया गया) दुष्प्रवेदित (= ठीकसे न जाना गया), अ-नैर्याणिक (= न पार करानेवाला), अन्-उपशम-संवर्तनिक (= शांतिको न प्राप्त करानेवाला), अ-सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित (= यथार्थज्ञानी द्वारा नहीं जाना गया) है।

"भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध (अपनेको) सर्व-उपादान-परिज्ञावादी कहतेहुये,

ठीक तौरसे सभी उपादानोंकी परिज्ञाको प्रज्ञापते हैं—काम-उपादान ०, दृष्टि ०, शीलव्रत ०, (और) आत्मवाद (= आत्मा कोई नित्यवस्तु है, यह सिद्धान्त)-उपादानकी परिज्ञाको प्रज्ञापते हैं। भिक्षुओ ! ऐसे धर्ममें जो शास्ताके सम्बन्धमें श्रद्धा है, वह सम्यग्गत (= ठीक स्थानमें) कही जाती है; ० ०। सो किस हेतु ?—क्योंकि यह ऐसे धर्मके विषयमें है, (जो कि) सु-आख्यात, सुप्रवेदित, नैर्याणिक, उपशम-संवर्तनिक (और) सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित है।

"भिक्षुओ ! यह चार उपादान किस निदान(= कारण)वाले = किस समुदयवाले, किस जातिवाले = किस प्रभव(= उत्पत्ति)वाले हैं ?—यह चारों उपादान तृष्णा-निदानवाले, तृष्णा-समुदयवाले, तृष्णा-जातिवाले, (और) तृष्णा-प्रभववाले हैं।

"भिक्षुओ ! तृष्णा किस निदानवाली है, ० ?—वेदना-निदानवाली ०।

" ० वेदना किस निदानवाली, ० ?—स्पर्श-निदानवाली ०।

" ० स्पर्श किस निदानवाला, ० ?—षडायतन[1]-निदानवाला ०।

" ० षडायतन किस निदानवाला, ० ?—नाम-रूप-निदानवाला ०।

" ० नामरूप किस निदानवाला, ० ?—विज्ञान-निदानवाला ०।

" ० विज्ञान किस निदानवाला, ० ?—संस्कार-निदानवाला ०।

" ० संस्कार किस निदानवाले, ० ?—अविद्या-निदानवाले ०।

"जब भिक्षुओ ! भिक्षुको अविद्या नष्ट हो जाती है, और विद्या उत्पन्न हो जाती है; अविद्या के विरागसे (तथा) विद्याकी उत्पत्तिसे न काम-उपादान पकड़ा (= उपाघ) जाता है, न दृष्टि-उपादान, ० न आत्मवाद-उपादान पकड़ा जाता है; उपादान (= पकड़ना) न करनेसे भयभीत नहीं होता, भयभीत न होनेपर इसी शरीरसे निर्वाणको प्राप्त हो जाता है। 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, और अब यहाँ कुछ (करने को) नहीं है'—यह जान लेता है।"

भगवान्‌ने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनंदन किया।

१२—महासीहनाद-सुत्तन्त (१।२।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें अपरपुर-वन-खंडमें विहार करते थे।

उस वक्त सुनक्खत्त लिच्छविपुत्तको इस धर्मको छोड़कर चले गये थोड़ाही समय हु था। वह वैशालीमें परिषद्में इस प्रकार कहता था—"श्रमण गौतमके पास आर्य-ज्ञान-दर्शन पराकाष्ठता, उत्तरमनुष्यधर्म (=दिव्य-शक्ति) नहीं है। विमर्श (=चिन्तन) में सोचे, अपने प्रति भासे जाने, तर्कसे प्राप्त धर्मको (ही) श्रमण गौतम उपदेशता है। जिस (मनुष्य) के लिये ध उपदेशता है, वह अपने दुःख-क्षयको प्राप्त होता है।"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र पूर्वाह्ण समय पहिन कर पात्र-चीवर (=भिक्षापात्र, वस्त्र) वैशालीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। आयुष्मान् सारिपुत्रने सुनक्खत्त (=सुनक्षत्र) लिच्छवि को वैशालीमें परिषद्के बीचमें यह वचन बोलते सुना—"श्रमण गौतमके पास ० (=दि शक्ति) नहीं ०।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र वैशालीमें पिंडचार करके, भोजनके पश्चात् भिक्षासे निवृ हो, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवन्दनकर एक ओर बैठ गये। एक ओ बैठकर आ.सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! हालहीमें इस धर्मको छोड़कर गया हुआ, सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र, वैशाली परिषद्के बीचमें यह वचन बोल रहा है—'श्रमण गौतमके पास० (दिव्य शक्ति) नहीं है०।

१—"सारिपुत्र! सुनक्खत्त मोघ-पुरुष (=फ़ज़ूलका आदमी) क्रोधी है, क्रोधसे ही उस यह वचन कहा होगा। सारिपुत्र! निन्दा करनेके ख्यालसे (बोलते हुये) भी सुनक्खत्त मोघपुरुष तथागतकी प्रशंसा ही करी। सारिपुत्र! यह तथागतकी प्रशंसा ही है, जो कोई ऐसा कहे— जिसके लिये धर्म उपदेशता है, वह अपने दुःख क्षयको प्राप्त होता है।' सारिपुत्र! सुनक्खत्त मोघपुरुषका यह भी मुझमें धर्म-सम्बन्ध नहीं—"यह भगवान् अर्हत् ०[1] बुद्ध भगवान् हैं।' सारि पुत्र! सुनक्खत्त मोघपुरुषका यह भी० नहीं—'इस प्रकार यह भगवान् अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंक अनुभव करते हैं—एक होकर अनेक हो जाते हैं ०[2]। कायासे ब्रह्मलोक पर्यन्तको अपने वशमें क लेते हैं।' सारिपुत्र ०!—'यह भगवान् अमानुष विशुद्ध दिव्य श्रोत्रोंसे उभय प्रकारके शब्दोंक सुनते हैं ०[2]। सारिपुत्र! ० —'यह भगवान् दूसरे सत्वों-दूसरे व्यक्तियोंके चित्तोंको (अपने चित्तसे देखकर जान लेते हैं—०[2] अविमुक्त चित्त होनेपर 'अविमुक्त चित्त है'—जान लेते हैं।'

२—"सारिपुत्र! तथागतके यह दस तथागत-बल हैं, जिनको प्राप्तकर तथागत उ

---

[1] देखो पृष्ठ २४। [2] देखो पृष्ठ २१।

(=आर्षभ) स्थानको पाते हैं, परिषद्में सिंहनाद करते हैं, ब्रह्मचक्र (=धर्मचक्र)को चलाते हैं, कौनसे दस ?—(१) सारिपुत्र ! तथागत स्थानको स्थानके तौरपर, और अ-स्थानको अ-स्थानके तौरपर, यथार्थतया जानते हैं। जो कि सारिपुत्र ! तथागत स्थानको० जानते हैं, यह भी तथागत के लिये तथागत-बल है, जिस बलको प्राप्तकर ० ब्रह्मचक्र चलाते हैं।

"(२) और फिर सारिपुत्र ! तथागत अतीत, भविष्य और वर्तमानके किये कर्मोंके विपाकको स्थान, और हेतुपूर्वक ठीकसे जानते हैं ०। ब्रह्मचक्र चलाते हैं।

"(३) और फिर सारिपुत्र ! तथागत सर्वत्रगामिनी प्रतिपद् (= मार्ग, ज्ञान)को ठीकसे जानते हैं ०। ब्रह्म ०।

"(४) और फिर सारिपुत्र ! तथागत अनेक धातु (=ब्रह्मांड) नाना धातुवाले लोकोंको ठीकसे जानते हैं ०। ब्रह्म ०।

"(५) ० नाना अधिमुक्ति (=स्वभाव)वाले सत्त्वों (= प्राणियों)को ठीकसे जानते हैं ०। ०।

"(६) ० दूसरे सत्वों = दूसरे पुद्गलोंकी इन्द्रियोंके परत्व-अपरत्व (= प्रबलता दुर्बलता)को ०। ०।

"(७) ० ध्यान, विमोक्ष,[1] समाधि, समापत्ति,[2] के संक्लेश (= मल), व्यवदान (= निर्मल-करण), उत्थान, को ०। ०।

"(८) ० अनेक प्रकारके पूर्व-निवासको याद करते हैं ०[3] इस प्रकार आकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण कर सकते हैं ०।

"(९) ० अमानुष विशुद्ध दिव्य-चक्षुसे ०[4] प्राणियोंको उत्पन्न होते मरते ०[4] स्वर्गलोक को प्राप्त हुये हैं। ०

"(१०) और फिर सारिपुत्र ! आस्रवों (= चित्तमलों)के क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति (= मुक्ति) प्रज्ञाकी विमुक्तिको इसी जन्ममें साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहरते हैं। जो कि सारिपुत्र ! तथागत आस्रवोंके क्षयसे ० प्राप्त कर विहरते हैं, यह भी तथागतके लिये तथागत-बल है, जिस बलको प्राप्त कर तथागत उच्च स्थानको पाते हैं, (और) परिषद्में सिंहनाद करते हैं, ब्रह्म-चक्र चलाते हैं।

"सारिपुत्र ! तथागतके यह दस तथागत-बल हैं, जिन बलोंको प्राप्त कर ० ब्रह्म चक्र चलाते हैं।

"सारिपुत्र ! ऐसे जाननेवाले, ऐसे देखनेवाले मुझे जो कहे—'श्रमण गौतमके पास ० "उत्तर-मनुष्य-धर्म नहीं है ०। तर्कसे प्राप्त धर्मको श्रमण गौतम उपदेशता' है। सारिपुत्र ! यदि वह उस वचनको न छोड़े, उस चित्त (= ख्याल)को न छोड़े, उस दृष्टिको विसर्जित न करे, तो नर्कमें डाला जैसा होगा। जैसे सारिपुत्र ! शील-सम्पन्न (= सदाचारयुक्त), समाधि-सम्पन्न, प्रज्ञा-सम्पन्न, भिक्षु इसी जन्ममें आज्ञा (= मोक्ष) को पाये, वैसेही इस सम्पद्को भी मैं सारिपुत्र ! कहता हूँ, कि यदि (वह) उस वचनको न छोड़े ० नर्कमें डाला जैसा होगा।

३—"सारिपुत्र ! यह चार तथागतके वैशारद्य हैं, जिन वैशारद्यों (= विशारदपन) को

---

[1] विमोक्ष आठ हैं, देखो शब्दानुक्रमणी। [2] एक प्रकारका ध्यान।

[3] देखो पृ० १९। [4] देखो पृष्ठ ४४।

प्राप्त कर तथागत ० परिषद्में सिंहनाद करते हैं ० । कौनसे चार ?—(१) 'अपनेको सम्यक् सम्बुद्ध कहनेवाले तेरे इन धर्मों (बातों)को नहीं बोध किया, तो उनके विषयमें कोई श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या लोकमें कोई (दूसरा) धर्मानुसार पूछ न बैठे'—मैं ऐसा कोई कारण सारिपुत्र ! नहीं देखता । सारिपुत्र ! ऐसे किसी कारणको न देखते मैं क्षेमको प्राप्त हो, अभयको प्राप्त हो, वैशारद्यको प्राप्त हो, विहरता हूँ । (२) 'अपनेको क्षीणास्रव (= अर्हत्) कहनेवाले तेरे यह आस्रव (= चित्त-दोष) क्षीण नहीं हुये, तो उनके विषयमें कोई श्रमण ० धर्मानुसार पूछ न बैठे'—ऐसा कोई कारण ० विहरता हूँ । (३) 'जो अन्तराय-कर्म (= विघ्नकारी कर्म) कहे गये हैं, उन्हें सेवन करनेसे वह अन्तराय (= विघ्न) नहीं कर सकते' ० यहाँ उनके विषयमें कोई श्रमण ० धर्मानुसार पूछ न बैठे'—ऐसा कोई कारण ० विहरता हूँ । (४) 'जिस मतलबके लिये धर्म उपदेश किया, वह ऐसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर नहीं ले जाता—इसके विषयमें कोई श्रमण ० धर्मानुसार पूछ न बैठे'—ऐसा कोई कारण सारिपुत्र ! नहीं देखता । ० विहरता हूँ ।

सारिपुत्र ! यह चार तथागतके वैशारद्य हैं ० जिन वैशारद्योंको प्राप्त कर ० तथागत परिषद्में सिंहनाद करते हैं, ब्रह्मचक्र चलाते हैं ।

"सारिपुत्र ! ऐसा जाननेवाले, ऐसा देखनेवाले मुझे जो कहे—'श्रमण गौतम ०[1]ऐसा होता । जैसे सारिपुत्र ! शील सम्पन्न ०[2] ।

४—"सारिपुत्र ! यह आठ परिषद् (= सभा) हैं । कौनसी आठ ?—(१) क्षत्रिय-परिषद्, (२) ब्राह्मण-परिषद्, (३) गृहपति(= वैश्य)-परिषद्, (४) श्रमण-परिषद्, (५) चातुर्महाराजिक-परिषद्, (६) त्रायस्त्रिंश[3]-परिषद्, (७) मार-परिषद्, (८) ब्रह्म-परिषद् । सारिपुत्र ! यह आठ परिषद् हैं । सारिपुत्र ! इन चार वैशारद्योंको मानकर तथागत इन आठ परिषदोंमें जाते हैं, अवगाहन करते हैं । जानता हूँ, सारिपुत्र ! मैं अनेकशत क्षत्रिय-परिषदोंमें जानेको और वहाँ पर भी, पहिले भाषण किये जैसा, पहिले बाते जैसा साक्षात्कार (होता है) । सारिपुत्र ! ऐसा कोई बात देखनेका कारण नहीं पाता, कि वहाँ मुझे भय या घबराहट हो । क्षेमको प्राप्त हो अभयको प्राप्त हो, वैशारद्यको प्राप्त हो, मैं विहार करता हूँ । जानता हूँ सारिपुत्र ! मैं अनेक शत ब्राह्मण-परिषदोंमें जानेको ० । ० गृहपति-परिषदोंमें ० । ० श्रमण ० । ० ० ब्रह्माकी परिषदों में० ।

"सारिपुत्र ! ऐसा जाननेवाले, ऐसा देखनेवाले मुझे ०[4] ।

५—"सारिपुत्र ! यह चार योनियाँ हैं । कौनसी चार ?—(१) अंडज योनि, (२) जरायुज योनि, (३) संस्वेदज योनि, (४) औपपातिक योनि । क्या है सारिपुत्र ! अंडज-योनि ?—सारिपुत्र ! जो प्राणी अण्डेके कोशको फोड़ कर उत्पन्न होते हैं, यह सारिपुत्र ! अण्डज-योनि कही जाती है । क्या है सारिपुत्र ! जरायुज-योनि ?—सारिपुत्र ! जो प्राणी वस्तिकोष (= जरायु)को फोड़कर उत्पन्न होते हैं ० । क्या है सारिपुत्र ! संस्वेदज-योनि ?—सारिपुत्र ! जो प्राणी सड़ी मछलीमें उत्पन्न होते हैं, सड़े मुर्देमें उत्पन्न होते हैं, सड़े कुल्माष (= दाल) में ०, चन्दनिका (गड़हे) में, या ओलिगल्ल (= गड़ही) में उत्पन्न होते हैं ० । क्या है सारिपुत्र ! औपपातिक-योनि ?—सारिपुत्र ! देवता, नरकके जीव, कोई कोई मनुष्य और कोई कोई विनिपातिक (= नीचे गिरनेवाले); यह सारिपुत्र ! औपपातिक-योनि कही जाती है ।

---

[1] देखो पृष्ठ ४४ । [2] देखो पृष्ठ ४४ । [3] देव समुदायों के नाम । [4] देखो पृष्ठ ४४ ।

"सारिपुत्र ! ऐसा जाननेवाले ०[1] ।

६—"सारिपुत्र ! यह पाँच गतियाँ हैं । कौनसी पाँच—(१) नरक, (२) तिर्यग् (= पशु पक्षी आदि) योनि, (३) प्रेत्य-विषय (=प्रेत), (४) मनुष्य, (५) देवता । सारिपुत्र ! मैं नरकको जानता हूँ, नरकगामी मार्गको = निरयगामिनी प्रतिपद्को भी जैसे (मार्गपर) आरूढ हो काया छोड़नेपर, मरनेके अनन्तर (प्राणी) अपाय = दुर्गति = विनिपात नरकमें उत्पन्न होते हैं, उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं तिर्यग्-योनिको जानता हूँ, तिर्यग् योनिगामी मार्ग ० उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं प्रेत्य-विषयको जानता हूँ, प्रेत्य-विषयगामी मार्ग० उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं मनुष्यको जानता हूँ ० । ० । ० देवोंको जानता हूँ, देवलोकगामी मार्गको = देवलोकगामिनी प्रतिपदको भी, जैसे मार्गपर आरूढ हो काया छोड़नेपर मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होते हैं, उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं निर्वाणको जानता हूँ, निर्वाणगामी मार्गको = निर्वाण-गामिनी प्रतिपद्को, जैसे मार्गपर आरूढ हो आस्रवोंके क्षय, चित्तकी विमुक्तिको इसी शरीरमें जान कर साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता है; उसे भी जानता हूँ ।

(क) "सारिपुत्र ! यहाँ मैं किसी व्यक्ति(= पुद्गल)को इस प्रकार चित्तसे परख करके जानता हूँ, कि यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरूढ है, जैसी चालढाल रखता है, उस मार्गपर आरूढ हो, काया छोड़नेपर मरनेके बाद जैसे अपाय = दुर्गति = विनिपात नरकमें उत्पन्न होगा । फिर दूसरे समय अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षुसे, उसे काया छोड़, मरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न हो अत्यन्त दुःखमय, तीव्र कटु वेदना (= यातना)को अनुभव करते देखता हूँ । जैसे कि सारिपुत्र ! पुरुष-भर (= पोरिसा)से अधिक ऊँचा लौ-बिना, धूमबिना, अंगारोंका ढेर हो । (कोई) घाम (=धूप)में तप्त घामसे पीड़ित, थका, प्यासा पुरुष एकायन मार्गसे उसी अंगारका ध्यान करके आये । उसको (कोई) आँखवाला पुरुष देखकर यह कहे—'यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरूढ है, जैसी चालढाल रखता है, ऐसे मार्गपर आरूढ हो, इन्हीं अंगारोंमें पहुँचेगा' । फिर दूसरे समय उसे अंगारोंमें गिरकर अत्यन्त दुःख-मय ० वेदनाको अनुभव करते देखे; ऐसेही सारिपुत्र ! यहाँ किसी व्यक्तिको इस प्रकार चित्तसे परख करके जानता हूँ ० । ० अनुभव करते देखता हूँ ।

(ख) "सारिपुत्र ! यहाँ मैं किसी व्यक्तिको इस प्रकार चित्तसे परखकर जानता हूँ, यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरूढ है ०[2] मरनेके बाद तिर्यग्-योनिमें उत्पन्न होगा । फिर दूसरे समय अमानुष ०[2] देखता हूँ । जैसे कि सारिपुत्र ! पुरुष-भरसे अधिक ऊँचा ० । ० अनुभव करते देखता हूँ ।

(ग) "सारिपुत्र ! यहाँ मैं किसी व्यक्तिको इस प्रकार चित्तसे परखकर जानता हूँ, ० ०[2] मरनेके बाद प्रेत्यविषयमें उत्पन्न होगा । फिर दूसरे समय अमानुष ०[2] दिव्य चक्षुसे, उसे काया छोड़ मरनेके बाद प्रेत्य-विषयमें उत्पन्न हो दुःखमय तीव्र, कटु वेदना अनुभव करते देखता हूँ । जैसेकि सारिपुत्र ! (किसी) विषम (=प्रतिकूल) भूमिमें उत्पन्न पत्र=पलाश से कृश कबरी छाया (= घनी छाया नहीं) वाला वृक्ष हो । तब कोई घाम में तप्त ० पुरुष एकायन मार्ग (= एक मात्र मार्ग)से उसी वृक्षका ख्याल करके आये । उसको (कोई) आँखवाला पुरुष देखकर यह कहे— 'यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरूढ है, जैसी चालढाल रखता है, ऐसे मार्गपर आरूढ हो (यह) इसी वृक्षके पास आयेगा' । फिर दूसरे समय (उसे) उस वृक्षकी छायामें बैठे या लेटे दुःखमय वेदना अनुभव करते देखे । ऐसे ही सारिपुत्र ! यहाँ किसी व्यक्तिको इस प्रकारसे चित्तसे परखकर जानता हूँ, ० ० वेदना अनुभव करते देखता हूँ ।

---

[1] देखो पृष्ठ ४४ ।

[2] देखो ऊपर ।

(घ) "सारिपुत्र! यहाँ किसी व्यक्तिको इस प्रकार चित्तसे परखकर जानता हूँ, ०[1] मनुष्यों में उत्पन्न होगा। ० अमानुष ० दिव्य चक्षुसे ०[1] उत्पन्न हो बहुत सुखमय वेदना अनुभव करते देखता हूँ। जैसे सारिपुत्र! (किसी) सम (=अनुकूल) भूमिमें उत्पन्न बहुत पत्र=पलाशयुक्त घनी छायावाला वृक्ष हो। तब घाममें तप्त ० पुरुष एकायन मार्गसे उसी वृक्षका ख्याल करके आये ०[2]। फिर दूसरे समय उस वृक्षकी छायामें बैठे या लेटे बहुत सुखमय वेदना अनुभव करते देखे। ऐसे ही सारिपुत्र! यहाँ किसी व्यक्तिको इस प्रकार चित्तसे परखकर जानता हूँ, ० ० वेदना अनुभव करते देखता हूँ।

(ङ) "सारिपुत्र ०,०[1] सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होगा। ० अमानुष ० दिव्य-चक्षुसे ० उत्पन्न हो बहुत सुखमय वेदना अनुभव करते देखता हूँ। जैसे सारिपुत्र! एक प्रासाद हो, जिसमें लिपापुता शांत (=निवात), कपाटयुक्त, जंगलेबन्द कूटागार (=ऊपरी तलका मकान) हो; उसमें बैलके चमड़ेके बिछौनेवाला, पटिक (=गलीचे) पटलिक बिछौनेवाला पलंग हो, जिसपर उत्तरच्छद (ऊपरसे ढाँकनेकी चद्दर) सहित कादलिमृग (=समूरी चर्म)का श्रेष्ठ प्रत्यस्तरण (=लिहाफ) हो, (सिरहाने, पैरहाने) दोनों ओर लाल तकिये हों। तब कोई घाममें तप्त ० पुरुष एकायन मार्गसे उसी प्रासादका ख्याल करके आये। उसको कोई आँखवाला पुरुष देखकर यह कहे—'० यह इसी प्रासादके पास आयेगा।' फिर दूसरे समय (उसे) उसी प्रासादमें, उसी कूटागारमें, उसी पलंगपर बैठकर या लेटकर एकान्त सुखमय वेदनाको अनुभव करते देखे। ऐसेही सारिपुत्र! यहाँ किसी व्यक्तिको ०, ० ० वेदना अनुभव करते देखता हूँ।

(च) "सारिपुत्र! ०, ०[1] आस्रवोंके क्षय=चित्तकी विमुक्ति प्रज्ञाकी विमुक्तिको इसी शरीर में जानकर साक्षात् कर=प्राप्त कर विहरेगा। फिर दूसरे समय उसे आस्रवोंके क्षय चित्तकी विमुक्ति प्रज्ञाकी विमुक्तिको इसी शरीरमें जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरते हुये देखता हूँ, एकान्त सुखमय वेदनाको अनुभव करते देखता हूँ। जैसे सारिपुत्र! (कोई) स्वच्छ जलवाली, शीतल जलवाली, सुन्दर जलवाली, सफेद सुन्दर घाटवाली, रमणीय पुष्करिणी हो, उसके तीरपर करीबमें वन खण्ड हो। तब कोई घाममें तप्त ० पुरुष ० उसी पुष्करिणीका ख्याल करके आये। ०। फिर दूसरे समय उसे उस पुष्करिणीमें प्रविष्ट हो स्नानकर, पानकर, सारी पीड़ा-थकावटको दूर कर, निकल कर, उसी वन खण्डमें बैठे या लेटे नितान्त सुखमय वेदनाको अनुभव करते देखे। ऐसेही सारिपुत्र! ० ०।

"सारिपुत्र! ऐसा जाननेवाले ०[4]।

७—"सारिपुत्र! मैं चतुरंग (=चार अंगों)से युक्त ब्रह्मचर्यका पालन करना जानता हूँ—(१) तपस्वियोंमें मैं परम तपस्वी होता था; (२) रूक्षाचारियोंमें मैं परम रूक्षाचारी (=रूक्ष) होता था; (३) जुगुप्सुओं)में मैं परम जुगुप्सु (=अनुकम्पा रखनेवाला) होता था; (४) प्रविविक्तों (=एकान्तसेवियों, विवेकवालोंओंमें मैं परम विविक्त था।

(१) यहाँ सारिपुत्र! मेरी यह तपस्विता (=तपश्चर्या) थी—मैं अ-चेलक (=नग्न) था, मुक्ताचार (=सरभंग), हस्तापलेखन (=हाथ-चट्टा), नएहिभदन्तिक (=बुलाई भिक्षाका त्यागी), न-तिष्ठ-भदन्तिक (=ठहरिये कह, दी गई भिक्षाका त्यागी) था, न अभिहट (=अपने लिये की गई भिक्षा) को, न (अपने) उद्देश्यसे किये गयेको (और) न निमंत्रणको

[1] देखो पृष्ठ ४७। [2] देखो पृष्ठ ४७। [3] देखो पृष्ठ ४७। [4] देखो पृष्ठ ४४।

खाता था; न कुम्भी (=घड़े)के मुखसे ग्रहण करता था, न खलोपी (=थरी)के मुखसे ०, न (दो) पटरोंके बीचसे ०, न (दो) डंडोंके बीचसे ०, न मुसलोंके बीचसे ०, न दो भोजन करने वालोंका (०) न गर्भिणीका (०), न (दूध) पिलातीका (०), न अन्य पुरुषके पास गईका (०) न संकित्ती (=चंदावाले)में (०), (वहाँसे) जहाँ (कि) कुत्ता खड़ा हो; न (वहाँ) जहाँ (कि) मक्खी भनभना रही हो; न मछली, न मांस, न सुरा (=अर्क उतारी शराब), न मेरय (=कच्ची शराब), न तुषोदक (=चावलकी शराब?) पीता था; सो मैं एकागारिक (=एकही घरमें भिक्षा करनेवाला) होता था; या एक कवल (भर) खानेवाला होता था; या द्वि-आगारिक दो (घर) आहार करनेवाला होता था; या दो कवल खानेवाला होता था, (०) सप्त-आगारिक (=सात घरोंसे भिक्षा लेनेवाला) होता था, या सात कवल खानेवाला; एक कलछी (=दवी) भर भोजनसे भी गुजारा करता था; दो कलछी ०; (०); सात कलछी ०; एकाहिक (=एक दिनमें एक बार) आहार करता था; द्वयाहिक (=दो दिन में एकबार) आहार करता था; सप्ताहिक आहार करता था; इस प्रकार अर्धमासिक बारी बारीसे भोजन ग्रहण करता विहरता था; शाकाहारी था, सँवाभोजी भी था; नीवार (=तिन्नी) भक्षी भी था; दद्दुल (=कोदो?) भक्षी था, हट (=एक तृण) भक्षी था; कण (=खेतमें छुटे हुये अनाजके दानोंका)-भक्षी था; आचाम (=माँड)-भक्षी था; पिण्याक(=खली)-भक्षी था; तृण-भक्षी था; गोबर-भक्षी था, वनमूल फलाहारसे गुजारा करता था, (जमीन पर) गिरे फलोंका खानेवाला था; सनके वस्त्र धारण करता था, श्मशान (-वस्त्र) भी धारण करता था; मुर्देके कपड़ेको धारता था; पांसुकूल (=फेंके कपड़े) भी धारता था; तिरीट (=एक छाल) भी धारता था; अजिन (=मृगचर्म) भी धारता था; अजिनक्षिप (=मृगचर्म खंड) भी धारता था; कुशचीरको भी धारता था, वल्कल चीर भी धारता था; (काष्ठ-) फलक-चीर भी धारता था, केश-कम्बल भी ०; बाल-कम्बल भी ०; उल्लूक-पक्षको भी ०; केश-दाढ़ी नोचनेवाला था, केश-दाढ़ी नोचनेके व्यापारमें लग्न होते उब्भट्ठिक (=ठढे-सरी) भी था; आसन-त्यागी बन उकडूँ-बैठनेवाला भी था; उकडूँ बैठनेके व्यापारमें लग्न हो काँटे-पर सोनेवाला भी था; कंटकके प्रश्रय (=खाट)पर शय्या करता था, शामको जल शयनके व्यापारमें लग्न होता था।—ऐसे अनेक प्रकारसे कायाके आतापन सन्तापनके व्यापारमें लग्न हो विहरता था, सारिपुत्र! यह मेरी तपस्विता (=तपश्चर्या) थी।

(२) "वहाँ सारिपुत्र! यह मेरा रूक्षाचार था।—पपड़ी पड़े अनेक वर्षके मैलको शरीरमें संचित किये रहता था; सारिपुत्र! जैसे पपड़ी पड़ा अनेक वर्षोंका तिन्दुका काष्ठ हो, इसी प्रकार सारिपुत्र! पपड़ी पड़े ०। वैसा होते (भी) मुझे यह न होता था—अहोवत! इस अपने मैलको अपने हाथसे परिमार्जित करूँ, या दूसरे मेरे इस मैलको (अपने) हाथसे परिमार्जित करें—मुझसे यह भी सारिपुत्र! न होता था। यह सारिपुत्र! मेरा रूक्षाचार था।

(३) "वहाँ सारिपुत्र! यह मेरी जुगुप्सा (=अनुकम्पा) थी;—मैं सारिपुत्र! (प्राणियोंको) याद करते जाता था, याद करते आता था; जलके बिन्दु तकमें मुझे दया बनी रहती थी—विषम (स्थानोंमें) स्थित क्षुद्र प्राणियोंको कहीं मार न दूँ। यह सारिपुत्र! मेरी अनुकम्पा थी।

(४) "वहाँ, सारिपुत्र! यह मेरा प्रविवेक (=एकान्त सेवन) था। मैं सारिपुत्र! किसी अरण्य-स्थानमें प्रवेश कर विहरता था। जब मैं (किसी) गोपालक (=ग्वाले)को या पशु-पालकको, या तृणहारक(=घसियारे)को, या काष्ठहारक (=लकड़हारे)को, या वनकर्मिक (=वनमें काम करनेवाले)को देखता, सो (एक) वनसे (दूसरे) वनमें, गहनसे गहनको, निम्न (=खड्ड)से निम्नको, स्थलसे सो किस कारण?—'वह

मुझे न देखें, और मैं उन्हें न देखूँ'। जैसे सारिपुत्र! आरण्यक मृग मनुष्यको देखकर वनसे वनको ० चला जाता है; ऐसे ही सारिपुत्र! जब मैं (किसी) गोपालकको ०। यह सारिपुत्र! मेरा प्रविवेक था।

"सो मैं सारिपुत्र! छिपकर (= चतुर्गुण्ठित) उन गोष्ठोंमें जाता था, जिससे गायें और गोपाल चले गये होते। जाकर जो वह तरुण (= बहुत छोटे) दूध पीनेवाले बछड़ोंके गोबर होते उन्हें खाता; यहाँ तक कि सारिपुत्र! मुझे अपना ही मूत्र-करीष (= मल) भी त्याज्य न होता; अपने ही मूत्र-करीषका आहार करता। यह सारिपुत्र! मेरा विकट भोजन था।

"सो मैं सारिपुत्र! एक भीषण वन-खण्डमें प्रवेश कर विहरता था। सारिपुत्र! उस भीषण वन-खण्डकी भीषणता यह थी; कि जो कोई अ-वीतराग (पुरुष) उस वन-खण्ड में प्रवेश करता, (उसके) रोम बहुत अधिक खड़े हो जाते थे। सो मैं सारिपुत्र! हेमन्तकी हिमपात समय वाली अन्तराष्टक[1] रातोंमें रात भर चौडेमें विहरता था, (और) दिनको वनखण्डमें। ग्रीष्मके अन्तिम मासमें दिनको चौडेमें विहरता और रातको वनखण्डमें। (उस समय) सारिपुत्र! अश्रुत पूर्व यह अद्भुत गाथा मुझे प्रतिभासित हुई—

"अकेला भीषण वनमें (ग्रीष्म)-तप्त (और) शीत-पीड़ित वह नग्न आगके-पास-न-बैठा, एषणा (= इच्छाओं)से दूर मुनि।'

"सो मैं सारिपुत्र! मुर्देकी हड्डियोंका सिरहाना बना श्मशानमें शयन करता था। (उस समय) सारिपुत्र! गोमण्डल (= चरवाहे) पास आकर (मेरे ऊपर) थूकते भी थे, मूतते भी थे, धूल भी फेंकते थे, कर्ण-छिद्रोंमें सींक भी करते थे, (तो भी) सारिपुत्र! उनके विषयमें मुझे कोई बुरा भाव उत्पन्न होता नहीं मालूम होता। यह सारिपुत्र! मेरा उपेक्षा-विहार था।

८—"सारिपुत्र! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण 'आहारसे शुद्धि होती है'—इस वाद (= मत) वाले इस प्रकारकी दृष्टिवाले होते हैं। 'मैं बेरसे गुजारा करूँगा'—कह, वह बेरको खाते हैं, बेर-चूर्ण खाते हैं, बेरके शर्बतको पीते हैं; अनेक प्रकारके बेरसे बने भोजनको खाते हैं। (एक समय) मैं भी सारिपुत्र! एक बेरके बराबर आहारको ही जानता था। शायद सारिपुत्र! तुम्हारे मनमें हो—'उस समय बेर बड़ा होता होगा'। सारिपुत्र! ऐसा नहीं ख्याल करना चाहिये। उस समय भी बेर इतना ही बड़ा होता था, जितना कि आजकल। सो सारिपुत्र! एक बेर (भर) आहार करनेसे मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया। उस अल्पाहारतासे वैसे मेरे अंग प्रत्यंग हो गये थे, जैसे आसीतिक (= अस्सी वर्षके बूढ़े)के पोर (= पर्व) या काल (= वृक्ष)के पर्व। ० जैसे ऊँटका पाँव, वैसे मेरे कूल्हे हो गये थे,। ० जैसे वट्टनावली (= रस्सीकी ऐंठन) वैसे ही उन्नत-अवनत मेरे पीठ-की (हड्डीवाले) काँटे हो गये थे। ० जैसे पुरानी शालामें कड़ियाँ अवलग्न-विलग्न (= खिसकी) होती हैं, वैसे ही मेरी पसलियाँ हो गईं। ० जैसे गहरे कूयें (= उदपान)में (कूयेंकी) गहराईके कारण आकायिक (= तारे) दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही अक्षि-कूपों (= आँखके गढ़हों)में नीचे धँस जानेके कारण आँखकी पुतलियाँ दिखाई पड़ती थीं। ० जैसे सारिपुत्र! कच्चा ही तोड़ा कड़वा अलाबू (= लौका) धूप हवासे सम्पुटित (= चिपुक) हो जाता है, मुर्झा जाता है, ऐसे ही मेरे शिरका चमड़ा हो गया था। ० जब मैं सारिपुत्र! पेटके चमड़ेको पकड़ता तो पीठके काँटेको ही पकड़ लेता था, पृष्ठकंटकों को पकड़ते वक्त पेटके चमड़ेको ही पकड़ लेता था। मेरे पेटका चमड़ा

[1] माघके अन्तकी चार और फागुनके आरम्भकी चार रातें।

सारिपुत्र! पृष्ठ-कंटक से सट गया था। ० सो मैं सारिपुत्र! मल-मूत्रके परित्याग करनेके लिये उठना चाहता था, तो वहीं भहराकर गिर जाता था। ० उसी अल्पाहारताके कारण सो मैं सारिपुत्र! उस शरीरको सहारा देते गात्रको (जब) हाथसे सहराता तो सड़ी जड़वाले लोम शरीरसे उखड़ पड़ते थे।

"सारिपुत्र! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण, 'आहारसे शुद्धि होती है'—इस तरहके वादवाले, इस तरहकी दृष्टिवाले होते हैं। 'मूँग पर गुजारा करूँगा' ०[1]। 'तिलसे गुजारा करूँगा'—०[1]। 'तंडुलसे गुजारा करूँगा'—कह, वह तंडुल खाते हैं, तण्डुल चूर्ण खाते हैं, तण्डुलका पानी पीते हैं, ० तण्डुलसे बने अनेक प्रकारके आहारको खाते हैं। मैं भी सारिपुत्र! (एक समय) तण्डुल बराबर आहारको ही जानता था। शायद सारिपुत्र! ०[1] लोम शरीरसे उखड़ पड़ते थे।

"सारिपुत्र! उस ईर्या (= आचार) से भी, उस दुष्कर-कारिका (= तपस्या) से भी मैं उत्तर-मनुष्य-धर्म (= दिव्य-शक्ति) अलमार्य-ज्ञान-दर्शन (= उत्तम ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा)-को नहीं पा सका। सो किस हेतु?—इसी आर्य-प्रज्ञा (= उत्तम ज्ञान) के न पानेसे, जो यह आर्य प्रज्ञा मिले, मिलनेपर, वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जाती है।

९—"सारिपुत्र! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण—'संसारके (= जन्म मरण) से शुद्धि होती है'—इस तरहके वादवाले इस तरहकी दृष्टिवाले होते हैं। (किन्तु) सारिपुत्र! ऐसा संसार सुलभ नहीं है, जिसमें इस दीर्घ कालमें मैंने वास न किया हो; सिवाय शुद्धावास देवताओंके, यदि शुद्धावास देवताओंमें मैं संसरण करता, तो सारिपुत्र! मैं इस लोकमें न आता।

१०—"सारिपुत्र! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण—'उत्पत्ति से शुद्धि होती है'— ० दृष्टिवाले होते हैं ०[2] न आता।

११—"०—'आवाससे शुद्धि होती है'— ० दृष्टिवाले ०[3]।

१२—"०—'यज्ञसे शुद्धि होती है'— ० दृष्टिवाले होते हैं। किन्तु सारिपुत्र! ऐसा यज्ञ सुलभ नहीं, जिसे कि मैंने इस दीर्घ कालमें न किया हो; और उसे (दूसरे) मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाने या महाशाल (= महाधनी) ब्राह्मणने किया हो।

१३—"०'—अग्निपरिचर्या (= हवन) से शुद्धि होती है'—०[4]।

१४—"०—'जब तक यह पुरुष दहर (= तरुण) युवा बहुत ही काले केशोंवाला प्रथम वयस सुन्दर यौवनसे युक्त होता है; तब (वह) परम प्रज्ञा (और) नैपुण्यसे युक्त होता है। जब यह पुरुष जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त जन्मसे ८०, ९० या सौ वर्षका हो जाता है; तो उस प्रज्ञा (और) नैपुण्यसे च्युत होता है। लेकिन सारिपुत्र! इसे इस तरह नहीं देखना (= मानना) चाहिये। मैं सारिपुत्र! इस समय जीर्ण=वृद्ध ० वयःप्राप्त, मेरी आयु ८० को पहुँच गई है; यहाँ सारिपुत्र! मेरे चार श्रावक (= शिष्य) शतवर्ष आयुवाले=वर्ष-शत-जीवी, (जो कि) परम गति, स्मृति, मति, धृतिसे युक्त, तथा परम प्रज्ञा=नैपुण्य (= वैयक्त्य) से समन्वित हैं। जैसे सारिपुत्र। दिक्षित=कृतहस्त=कृत-उपासन, बलवान् धनुर्धारी शीघ्र, बिना श्रम (बाण) फेंक तिर्छी ताल-छायाका अतिक्रमण=अतिपात न करदे; ऐसे ही सारिपुत्र! ० मति, स्मृति, धृतिसे युक्त ०, इस प्रकार परम प्रज्ञा=नैपुण्यसे युक्त हैं। (यदि वह) चारों स्मृतिप्रस्थानों[5]को लेकर (मुझसे) प्रश्न पूछें। पूछनेपर मैं उनका उत्तर दूँ। मेरे उत्तरको वह धारण करें। फिर दूसरी बार आगे पूछें; सारिपुत्र! अशन—पान—खादन—शयन (के समय) को छोड़, मल-मूत्र-त्याग

---

[1] देखो पृष्ठ ५०, बेरकी जगह। [2] देखो ऊपर (९)। [3] देखो ऊपर (९)। [4] देखो ऊपर (१२)। [5] देखो पृष्ठ ३५।

मुझे न देखें, और मैं उन्हें न देखूँ'। जैसे सारिपुत्र! आरण्यक मृग मनुष्यको देखकर वनसे वनको ० चला जाता है, ऐसे ही सारिपुत्र! जब मैं (किसी) गोपालकको ०। यह सारिपुत्र! मेरा प्रविवेक था।

"सो मैं सारिपुत्र! छिपकर (= चतुर्गुण्डित) उन गोठोंमें जाता था, जिससे गायें और गोपाल चले गये होते। जाकर जो वह तरुण (= बहुत छोटे) दूध पीनेवाले बछड़ोंके गोबर होते उन्हें खाता; यहाँ तक कि सारिपुत्र! मुझे अपना ही मूत्र-करीष (= मल) भी त्याज्य न होता; अपने ही मूत्र-करीषका आहार करता। यह सारिपुत्र! मेरा विकट भोजन था।

"सो मैं सारिपुत्र! एक भीषण वन-खण्डमें प्रवेश कर विहरता था। सारिपुत्र! उस भीषण वन-खण्डकी भीषणता यह थी, कि जो कोई अ-वीतराग (पुरुष) उस वन-खण्ड में प्रवेश करता, (उसके) रोम बहुत अधिक खड़े हो जाते थे। सो मैं सारिपुत्र! हेमन्तकी हिमपात समय वाली अन्तराष्टक[1] रातोंमें रात भर चौड़ेमें विहरता था, (और) दिनको वनखण्डमें। ग्रीष्मके अन्तिम मासमें दिनको चौड़ेमें विहरता और रातको वनखण्डमें। (उस समय) सारिपुत्र! अश्रुत पूर्व यह अद्भुत गाथा मुझे प्रतिभासित हुई—

"अकेला भीषण वनमें (ग्रीष्म)-तप्त (और) शीत-पीड़ित वह नग्न आगके-पास-न-बैठा, एषणा (= इच्छाओं) से दूर मुनि।'

"सो मैं सारिपुत्र! मुर्दोंकी हड्डियोंका सिरहाना बना श्मशानमें शयन करता था। (उस समय) सारिपुत्र! गोमण्डल (= चरवाहे) पास आकर (मेरे ऊपर) थूकते भी थे, मूतते भी थे, धूल भी फेंकते थे, कर्ण-छिद्रोंमें सींक भी करते थे, (तो भी) सारिपुत्र! उनके विषयमें मुझे कोई बुरा भाव उत्पन्न होता नहीं मालूम होता। यह सारिपुत्र! मेरा उपेक्षा-विहार था।

८—"सारिपुत्र! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण 'आहारसे शुद्धि होती है'—इस वाद (= मत) वाले इस प्रकारको दृष्टिवाले होते हैं। 'मैं बेरसे गुजारा करूँगा'—कह, वह बेरको खाते हैं, बेर-चूर्ण खाते हैं, बेरके शर्बतको पीते हैं; अनेक प्रकारके बेरसे बने भोजनको खाते हैं। (एक समय) मैं भी सारिपुत्र! एक बेरके बराबर आहारको ही जानता था। शायद सारिपुत्र! तुम्हारे मनमें हो—'उस समय बेर बड़ा होता होगा'। सारिपुत्र! ऐसा नहीं ख्याल करना चाहिये। उस समय भी बेर इतना ही बड़ा होता था, जितना कि आजकल। सो सारिपुत्र! एक बेर (भर) आहार करनेसे मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया। उस अल्पाहारतासे जैसे मेरे अंग प्रत्यंग हो गये थे, जैसे आसीतिक (= अस्सी वर्षके बूढ़े)के पोर (= पर्व) या काल (= वृक्ष)के पर्व। ० जैसे ऊँटका पाँव, वैसे मेरे चूतड़ हो गये थे,। ० जैसे वट्टनावली (= रस्सीकी ऐंठन) वैसे ही उन्नत-अवनत मेरे पीठ-की (हड्डीवाले) काँटे हो गये थे। ० जैसे पुरानी शालामें कड़ियाँ अवलग्न-विलग्न (= खिसकी) होती हैं, वैसे ही मेरी पसलियाँ हो गईं। ० जैसे गहरे कूयें (= उदपान)में (कूयेंकी) गहराईके कारण आकाशिक (= तारे) दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही अक्षि-कूपों (= आँखके गड्ढों)में नीचे धँस जानेके कारण आँखकी पुतलियाँ दिखाई पड़ती थीं। ० जैसे सारिपुत्र! कच्चा ही तोड़ा कड़वा अलाबु (= लौका) धूप हवासे सम्पुटित (= चिपुक) हो जाता है, मुर्झा जाता है, ऐसे ही मेरे शिरका चमड़ा हो गया था। ० जब मैं सारिपुत्र! पेटके चमड़ेको पकड़ता तो पीठके काँटेको ही पकड़ लेता था, पृष्ठकंटकों को पकड़ते वक्त पेटके चमड़ेको ही पकड़ लेता था। मेरे पेटका चमड़ा

---

[1] माघके अन्तकी चार और फागुनके आरम्भकी चार रातें।

सारिपुत्र ! पृष्ठ-कंटक से सट गया था । ० सो मैं सारिपुत्र ! मल-मूत्रके परित्याग करनेके लिये उठना चाहता था, तो वहीं भहराकर गिर जाता था । ० उसी अल्पाहारताके कारण सो मैं सारिपुत्र ! उस शरीरको सहारा देते गात्रको (जब) हाथसे सहराता तो सड़ी जड़वाले लोम शरीरसे उखड़ पड़ते थे ।

"सारिपुत्र ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण, 'आहारसे शुद्धि होती है'—इस तरहके वादवाले, इस तरहकी दृष्टिवाले होते हैं । 'मूँग पर गुजारा करूँगा' ०[1] । 'तिलसे गुजारा करूँगा'—०[1] । 'तंडुलसे गुजारा करूँगा'—कह, वह तंडुल खाते हैं, तण्डुल चूर्ण खाते हैं, तण्डुलका पानी पीते हैं, ० तण्डुलसे बने अनेक प्रकारके आहारको खाते हैं । मैं भी सारिपुत्र ! (एक समय) तण्डुल बराबर आहारको ही जानता था । शायद सारिपुत्र ! ०[1] लोम शरीरसे उखड़ पड़ते थे ।

"सारिपुत्र ! उस ईर्या (= आचार)से भी, उस दुष्कर-कारिका (= तपस्या)से भी मैं उत्तर-मनुष्य-धर्म (= दिव्य-शक्ति) अलमार्य-ज्ञान-दर्शन (= उत्तम ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा)-को नहीं पा सका । सो किस हेतु ?—इसी आर्य-प्रज्ञा (= उत्तम ज्ञान)के न पानेसे, जो यह आर्य प्रज्ञा जिसे, मिलनेपर, वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जाती है ।

९—"सारिपुत्र ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण—'संसारके (= जन्म मरण)से शुद्धि होती है'—इस तरहके वादवाले इस तरहकी दृष्टिवाले होते हैं । (किन्तु) सारिपुत्र ! ऐसा संसार सुलभ नहीं है, जिसमें इस दीर्घ कालमें मैंने वास न किया हो; सिवाय शुद्धावास देवताओंके; यदि शुद्धावास देवताओंमें मैं संसरण करता, तो सारिपुत्र ! मैं इस लोकमें न आता ।

१०—"सारिपुत्र ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण—'उत्पत्ति से शुद्धि होती है'— ० दृष्टिवाले होते हैं ०[2] न आता ।

११—"०—'आवाससे शुद्धि होती है'— ० दृष्टिवाले ०[3] ।

१२—"०—"यज्ञसे शुद्धि होती है'— ० दृष्टिवाले होते हैं । किन्तु सारिपुत्र ! ऐसा यज्ञ सुलभ नहीं, जिसे कि मैंने इस दीर्घ कालमें न किया हो; और उसे (दूसरे) मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाने या महाशाल (= महाधनी) ब्राह्मणने किया हो ।

१३—"०'—अग्निपरिचर्या(= हवन)से शुद्धि होती है'—०[4] ।

१४—"०—'जब तक यह पुरुष दहर (= तरुण) युवा बहुत ही काले केशोंवाला प्रथम वयस सुन्दर यौवनसे युक्त होता है, तब (वह) परम प्रज्ञा (और) नैपुण्यसे युक्त होता है । जब यह पुरुष जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त जन्मसे ८०, ९० या सौ वर्षका हो जाता है; तो उस प्रज्ञा (और) नैपुण्यसे च्युत होता है । लेकिन सारिपुत्र ! इसे इस तरह नहीं देखना (= मानना) चाहिये । मैं सारिपुत्र ! इस समय जीर्ण=वृद्ध ० वयःप्राप्त, मेरी आयु ८० को पहुँच गई है; यहाँ सारिपुत्र ! मेरे चार श्रावक (= शिष्य) शतवर्ष आयुवाले=वर्ष-शत-जीवी, (जो कि) परम गति, स्मृति, मति, धृतिसे युक्त, तथा परम प्रज्ञा=नैपुण्य (= वैयक्त्य)से समन्वित हैं । जैसे सारिपुत्र । शिक्षित=कृतहस्त=कृत-उपासन, बलवान् धनुर्धारी शीघ्र, बिना श्रम (बाण) फेंक तिर्छी ताल-छायाका अतिक्रमण=अतिपात न करदे; ऐसे ही सारिपुत्र ! ० मति, स्मृति, धृतिसे युक्त ०, इस प्रकार परम प्रज्ञा=नैपुण्यसे युक्त हैं । (यदि वह) चारों स्मृतिप्रस्थानों[5]को लेकर (मुझसे) प्रश्न पूछें । पूछनेपर मैं उनका उत्तर दूँ । मेरे उत्तरको वह धारण करें । फिर दूसरी बार आगे पूछें; सारिपुत्र ! अशन—पान—खादन—शयन (के समय)को छोड़, मल-मूत्र-त्याग

---

[1] देखो पृष्ठ ५०, बेरकी जगह । [2] देखो ऊपर (९) । [3] देखो ऊपर (९) । [4] देखो ऊपर (१२) । [5] देखो पृष्ठ १५ ।

(के समय)को छोड़, निद्रा-थकावटके दूर करनेके समयको छोड़ तथागतकी धर्मदेशना अखंड ही रहेगी, सारिपुत्र ! तथागतका धर्मपद—व्याख्यान अखंड ही रहेगा तथागतका प्रश्नोत्तर० । फिर यह मेरे शतवर्षं आयुवाले०[1] चार श्रावक सौ वर्षके अनन्तर मृत्युके प्राप्त होवें; (तो भी) सारिपुत्र ! किसी तरह मुझे निग्रह नहीं कर सकते, तथागतकी प्रज्ञा=नैपुण्यमें फरक नहीं आसकता ।

"सारिपुत्र ! ठीक कहते हुये यह कहे—'सम्मोह धर्मसे रहित (एक) सत्त्व (= व्यक्ति) लोकमें बहुजनोंके हितार्थ, बहुजनोंके सुखार्थ, लोकपर अनुकम्पार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ, हित और सुखके लिये उत्पन्न हुआ है' (तो) यह ठीकसे कहते हुये मेरे ही लिये कहे—सम्मोह धर्मसे रहित ० ० उत्पन्न हुआ है ।"

उस समय आयुष्मान् नागसमाल भगवान्की पीठकी ओर खड़े होकर भगवान्को पंखा झल रहे थे । तब आयुष्मान् नागसमालने भगवान्को यह कहा—"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते !! भन्ते ! इस धर्मपर्याय (= धर्मोपदेश)को सुनकर रोमांच हो गया । भन्ते ! इस धर्मपर्यायका नाम क्या है ?"

"तो नागसमाल ! तू इस धर्मपर्यायको लोमहर्षण-पर्याय ही समझ ।"

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् नागसमालने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।

१३—महादुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त (१।२।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

तब बहुतसे भिक्षु पूर्वाह्णके समय पहिनकर पात्रचीवर ले श्रावस्तीमें पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुये। तब उन भिक्षुओंको हुआ—श्रावस्तीमें भिक्षाचार करनेके लिये अभी बहुत सवेरा है, क्यों न हम जहाँ अन्य-तैर्थिक (= दूसरे मतवाले) परिव्राजकोंका आराम है, वहाँ चलें। तब वह भिक्षु जहाँ अन्यतैर्थिक परिव्राजकोंका आराम था, वहाँ गये; जाकर अन्य तैर्थिक परिव्राजकोंके साथ (यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ)···एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंसे अन्य तैर्थिक परिव्राजकोंने यह कहा—

"आवुसो! श्रमण गौतम कामों (= भोगों)के परित्यागको कहते हैं, हम भी कामोंके परित्यागको कहते हैं। आवुसो! श्रमण गौतम रूपोंके परित्यागको कहते हैं, हम भी ०। ■ वेदनाके परित्यागको कहते हैं। यहाँ आवुसो! हमारे और श्रमण गौतमके धर्मोपदेशमें या धर्मोपदेशके अनुशासन करनेमें क्या विशेष (= भेद) है, क्या अधिक है, क्या नानाकरण (= अन्तर) है?"

तब उन भिक्षुओंने उन अन्यतैर्थिक परिव्राजकोंके भाषणका न अनुमोदन (= अभिनंदन) किया, न प्रतिवाद (= प्रतिक्रोश) किया। बिना अनुमोदन किये, बिना प्रतिवाद किये वह (सोचकर) आसनसे उठकर चल दिये, कि भगवान्‌के पास इस भाषणका अर्थ समझेंगे। तब वह भिक्षु श्रावस्तीमें भिक्षाचार करके, भोजनोपरान्त पिंडपातसे निवटकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! (आज) हम पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले श्रावस्तीमें पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुये ०[1], कि भगवान्‌के पास इस भाषणका अर्थ समझेंगे।"

"भिक्षुओ! ऐसा कहनेवाले अन्यतैर्थिकोंको तुम्हें यह कहना चाहिये—'आवुसो! क्या है कामों (= भोगों)का आस्वाद, क्या है परिणाम (= आदिनव), क्या है निस्सरण (= निकास)? क्या है रूपोंका आस्वाद ०? क्या है वेदनाओंका आस्वाद ०?' ऐसा कहनेपर भिक्षुओ! अन्यतैर्थिक परिव्राजक नहीं (उत्तर) दे सकेंगे, और (इस)पर विघात (= रोष)को प्राप्त होंगे। सो किस हेतु?—क्योंकि भिक्षुओ! वह (उनका) विषय नहीं है। भिक्षुओ! देव, मार (= प्रजापति देवता), ब्रह्मा सहित सारे लोकमें; श्रमण ब्राह्मण देव-मानुष सहित सारी प्रजामें, मैं उस (पुरुष)को नहीं देखता, जो इन प्रश्नोंका उत्तर दे चित्तको सन्तुष्ट करे, सिवाय तथागत या तथा-

---

[1] देखो ऊपर।

गतके शिष्य या यहाँसे सुने हुयेके।

१—"भिक्षुओ! क्या है कामोंका दुष्परिणाम? भिक्षुओ! यहाँ कुल-पुत्र जिस (किसी) शिल्प से—चाहे मुद्रासे, या गणनासे, या संख्यानसे, या कृषिसे, या वाणिज्यसे, गो-पालनसे, या वाण-अस्त्रसे, या राजाकी नौकरीसे, या किसी अन्य शिल्पसे— शीत-उष्ण-पीड़ित, डँस-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप (=साँप बिच्छू)के स्पर्शसे उत्पीड़ित होता, भूख-प्याससे मरता, जीविका करता है। भिक्षुओ! यह कामोंका दुष्परिणाम है। इसी जन्ममें कामके हेतु=काम-निदान, कामके अधिकरण (=विषय)से (यह लोक) दुःखोंका पुंज है। भिक्षुओ! उस कुलपुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते=उत्थान करते, मेहनत करते, वह भोग नहीं उत्पन्न होते, (तो) वह शोक करता है, दुःखी होता है, चिल्लाता है, छाती पीटकर क्रंदन करता है, मूर्छित होता है—'हाय! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मेहनत निष्फल हुई!!' भिक्षुओ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम है ०। दुःखका पुंज है। यदि भिक्षुओ! उस कुलपुत्रको इस प्रकार उद्योग करते ० वह भोग उत्पन्न होते हैं, तो वह उन भोगोंकी रक्षाके लिये दुःख=दौर्मनस्य झेलता है—'कहीं मेरे भोगको राजा न हर ले, चोर न हर ले जायें, आग न डाहे, पानी न बहा ले जाये, अप्रिय दायाद न ले जायें' उसके इस प्रकार रक्षा=गोपन करते उन भोगोंको राजा हर ले जाते हैं ०; वह शोक करता है ०—'जो भी मेरा था, वह भी मेरा नहीं है'। भिक्षुओ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर भिक्षुओ! कामोंके हेतु=काम-निदान, कामोंके विषयसे, कामोंके लिये राजा भी राजाओंसे झगड़ते हैं; क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंसे झगड़ते हैं; ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे ०; गृहपति (=वैश्य) गृहपतियोंसे ०; माता पुत्रके साथ झगड़ती है; पुत्र भी माताके साथ ०; पिता भी पुत्रके साथ ०; पुत्र भी पिताके साथ ०; भाई भाईके साथ ०; भाई भगिनीके साथ ०; भगिनी भाईके साथ ०; मित्र मित्रके साथ झगड़ते हैं। वह वहाँ कलह=विग्रह=विवाद करते, एक दूसरेपर हाथों से भी आक्रमण करते हैं, ढलोंसे भी ०, डंडोंसे भी ० शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं। वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको। भिक्षुओ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर भिक्षुओ! कामोंके हेतु ढाल-तलवार (=असि-चर्म) लेकर, तीर-धनुष चढ़ाकर, दोनों ओरसे व्यूह रचे, संग्राममें दौड़ते हैं। बाणोंके चलाये जातेमें, शक्तियोंके फेंके जातेमें, तलवारोंकी चकाचौंधमें, वह बाणोंसे विद्ध होते हैं, शक्तियोंसे ताड़ित होते हैं, तलवारसे शिरच्छिन्न होते हैं। वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्युसमान दुःखको। यह भी भिक्षुओ! कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर भिक्षुओ! कामोंके हेतु ०, ढाल-तलवार लेकर, धनुर्बाण चढ़ाकर, भीगे-लिपे प्राकारों (=उपकारी=शहर-पनाह)की ओर दौड़ते हैं। बाणोंके चलाये जाते में ०[1]।

"और फिर भिक्षुओ! कामोंके हेतु ० सेंध भी लगाते हैं, (गाँव) उजाड़ कर ले जाते हैं, चोरी (=एकागारिक, एक घरमें घुसकर चुराना) भी, रहजनी (=परिपन्थ) भी करते हैं, परस्त्री-गमनभी करते हैं। तब उन्हें राजा लोग पकड़कर नाना प्रकारके दंड (=कम्मकरण) देते हैं—चाबुकसे भी पिटवाते हैं, बेंतसे भी ०, जुर्माना भी करते हैं, हाथ भी काटते हैं, पैर भी काटते हैं, हाथ-पैर भी काटते हैं, कान भी ०, नाक भी ०, कान-नाक भी ०, बिलंग-थालिक[2] भी करते

[1] देखो ऊपर का पैरा।

[2] खोपड़ी हटा शिरपर तप्त लोहेका-गोला रखना।

हैं, शंखमुंडिका[1] भी ०, राहुमुख[2] भी ०, ज्योतिमालिका[3] भी ०, हस्त-प्रज्योतिका[4] भी ०, एरकवर्तिका[5] भी ०, चीरकवासिका[6] भी ०, ऐणेयक[7] भी ०, बडिशमंसिका[8] भी ०, कार्षापणक[9] भी ०, खारापतच्छिका[10] भी ०, परिघपरिवर्तिका[11] भी ०, पलाल-पीठक[12] भी ०, तपाये तेलसे भी नहलाते हैं, कुत्तोंसे भी कटवाते हैं, जीतेजी शूलीपर चढ़ाते हैं, तलवारसे शिर कटवाते हैं। वह वहाँ मरणको प्राप्त होते हैं, मरण समान दुःखको भी ०। यह भी भिक्षुओ! कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर भिक्षुओ! कामके हेतु कायासे दुश्चरित (= पाप) करते, वचनसे ०, मनसे दुश्चरित करते हैं। वह काय ०-वचन ० मनसे दुश्चरित करके, शरीर छोड़ने पर मरनेके बाद, अपाय = दुर्गति = विनिपात, निरय (= नर्क) में उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ! यह कामोंका जन्मान्तरमें दुष्परिणाम दुःख-पुंज काम-हेतु=काम-निदान (ही है) कामोंका झगड़ा कामों (= भोगों) हीके लिये होता है।

३—"क्या है भिक्षुओ! कामोंका निस्सरण (= निकास)?—भिक्षुओ! जो यह कामोंसे छन्द = रागका हटाना, छन्द = रागका परित्याग, यह कामोंका निस्सरण है। भिक्षुओ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण इस प्रकार कामोंके आस्वाद, कामोंके आदिनव (= दुष्परिणाम), दुष्परिणामसे निस्सरण, निस्सरणसे उसे यथाभूत (= उसके स्वरूपको यथार्थ से) नहीं जानते, वह स्वयं कामोंको छोड़ेंगे या दूसरोंको वैसा (करनेके लिये) शिक्षा देंगे, जिसपर चलकर कि वह (पुरुष) कामोंको छोड़ेगा, यह सम्भव नहीं। भिक्षुओ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार कामोंके आस्वाद, आस्वादसे दुष्परिणाम, दुष्परिणामसे निस्सरण, निस्सरणसे उसे यथाभूत जानते हैं; वह स्वयं कामोंको छोड़ेंगे, ० यह सम्भव है।

"क्या है भिक्षुओ! वेदनाओंका आस्वाद?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु कामोंसे विरहित, बुरी बातोंसे विरहित, सवितर्क और सविचार, विवेकसे उत्पन्न प्रीति और सुखवाले ०[13] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगता है। जिस समय भिक्षुओ! भिक्षु कामोंसे विरहित ० प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है; उस समय न अपनेको पीड़ित करनेका ख्याल रखता है, न दूसरेको पीड़ित करनेका ख्याल रखता है, न (अपने और पराये) दोनोंको ०। व्याबाधा (= पीड़ा पहुँचाने)

---

[1] शिरका चमड़ा आदि हटाकर उसे शंख समान बनाना।
[2] कानों तक मुँहको फाड़ देना।
[3] शरीरभरमें तेल-सिक्त कपड़ा लपेट बत्ती जलाना।
[4] हाथमें कपड़ा लपेट कर जलाना।
[5] गर्दन तक खाल खींचकर घसीटना।
[6] ऊपरकी खालको खींचकर कमरपर छोड़ना, और नीचेकी खालको घुट्टीपर छोड़ देना।
[7] केहुनी और घुटनेमें लोहशलाका ठोंक उनके बल भूमिपर स्थापितकर आग जलाना।
[8] बंशीके तरहके लोह-अंकुशोंको मुँहसे डालकर निकालना।
[9] पैसे पैसे भरके मांसके टुकड़ोंको सारे शरीरसे काटना।
[10] शरीरमें घावकर क्षार लगाना।
[11] दोनों कानोंसे कीला पारकर, उसे जमीनमें गाड़, पैर पकड़ उसीके चारोंओर घुमाना।
[12] मुँगरोंसे हड्डीको भीतर ही भीतर चूरकर, शरीरको पोआल-जैसा बना देना।
[13] देखो पृष्ठ १५।

से रहित वेदना हीको उस समय अनुभव करता है; भिक्षुओ ! वेदनाओंके आस्वादको अव्याबाधता पर्यन्त, मैं कहता हूँ ।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त होनेपर भीतरी शान्ति तथा चित्तकी एकाग्रतावाले वितर्क-रहित-विचार रहित प्रीति सुखवाले द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ०[1] तृतीय-ध्यानको ० । ०[1] चतुर्थ-ध्यानको ० । जिस समय भिक्षुओ ! भिक्षु सुख और दुःखके परित्यागसे, सौमनस्य (= चित्तोल्लास) और दौर्मनस्य (= चित्त-सन्ताप)के पहिले ही अस्त हो जानेसे, सुख-दुःख-विरहित उपेक्षासे स्मृतिकी शुद्धिवाले चतुर्थ-ध्यानको प्राप्तहो विहरने लगता है, उस समय न वह अपनेको पीड़ित करता है ०। भिक्षुओ ! वेदनाओंका आस्वादको अव्याबाधता पर्यन्त मैं कहता हूँ ।

"क्या है भिक्षुओ ! वेदनाओंका दुष्परिणाम ?—जो कि भिक्षुओ ! वेदना अनित्य, दुःख और विपरिणाम (= विकार) स्वभाववाली है; यही वेदनाओंका आदिनव (= दुष्परिणाम) है ।

"क्या है भिक्षुओ ! वेदनाओंका निस्सरण ?—जो कि भिक्षुओ ! वेदनाओंसे छन्द=रागका हटाना, छन्द = रागका प्रहाण (= त्याग) यही वेदनाओंका निस्सरण है ।

"भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण इस प्रकार वेदनाओंके आस्वादको आस्वादन करते, आदिनवको आदिनवकी भाँति, निस्सरणको निस्सरणकी भाँति ठीक तौरसे नहीं जानते, वह स्वयं वेदनाओंको त्यागेंगे, और दूसरोंको वैसा करनेके लिये अनुशासन करेंगे, यह सम्भव नहीं । किन्तु, भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण इस प्रकार वेदनाओंके आस्वादको आस्वादन न करते, आदिनवको आदिनवकी भाँति ० जानते हैं; वह स्वयं वेदनाओंको त्यागेंगे ० यह सम्भव है ।"

भगवान्‌ने यह कहा; सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया ।

१४-चूल-दुक्ख-क्खन्ध-सुत्तन्त (१।२।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य (देश)में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे।

तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे महानाम शाक्यने भगवान्से कहा—

"भन्ते! दीर्घ-रात्र(= बहुत समय)से भगवान्के उपदिष्ट धर्मको मैं इस प्रकार जानता हूँ—लोभ चित्तका उपक्लेश (= मल) है, द्वेष चित्तका उपक्लेश है, मोह चित्तका उपक्लेश है। तो भी एक समय लोभ-वाले धर्म मेरे चित्तको चिपट रहते हैं। तब मुझे भन्ते! ऐसा होता है—कौन सा धर्म (= बात) मेरे भीतर (= अध्यात्म)से नहीं छूटा है, जिससे कि एक समय लोभधर्म ०?"

"महानाम! वही धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा, जिससे कि एक समय लोभ-धर्म तेरे चित्तको ०। महानाम! यदि वह धर्म भीतरसे छूटा हुआ होता, तो तू घरमें वास न करता, कामोपभोग न करता। चूँकि महानाम! वह धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा, इसलिये तू गृहस्थ है, कामोपभोग करता है। (यह) काम (= भोग) अ-प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत उपायास (= परेशानी) देनेवाले हैं। इनमें आदिनव (= दुष्परिणाम) बहुत हैं। महानाम! जब आर्यश्रावक यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर इसे देख लेता है, तो वह कामोंसे अकुशल (= बुरे)-धर्मोंसे, अलगहीमें प्रीति-सुख या उससे भी अधिक शांततर (सुखको) नहीं पाता, वह कामोंमें 'लौटने वाला' होता है। महानाम! आर्यश्रावकको जब काम; (= भोग) अ-प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत परेशानी करनेवाले मालूम होते हैं; 'इनमें आदिनव बहुत हैं' इसे महानाम! जब आर्य-श्रावक यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर इसे देख लेता है, तो वह कामोंसे अलग, अ-कुशल धर्मोंसे पृथक् ही, प्रीति सुख या उससे शांततर (सुख) पाता है, तब वह कामोंकी ओर 'न-फिरनेवाला' होता है।

"मुझे भी महानाम! संबोधि (प्राप्त करने)से पूर्व बुद्ध न हो, बोधिसत्त्व होते समय, यह अप्रसन्न करनेवाले, बहु दुःख, बहुत परेशानी करनेवाले काम (होते थे), तब 'इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं'—यह ऐसा यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर मैंने देखा, किंतु कामोंसे अलग, अकुशल धर्मोंसे अलग, प्रीति-सुख, या उनसे शांततर (सुख) नहीं पा सका। इसलिये मैंने उतनेसे कामोंकी ओर 'न लौटने वाला' (अपने को) नहीं जाना। जब महानाम! काम अप्रसन्नकर बहु-दुःखद, बहु-आयासकर हैं; इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं' यह ऐसा ०। तो कामोंसे, अकुशलधर्मोंसे अलग ही प्रीति-सुख (तथा) उससे भी शांत-तर (सुख) पाया, तब मैंने (अपनेको) कामोंकी ओर 'न लौटनेवाला' जाना।

"महानाम! कामोंका आस्वाद (= स्वाद) क्या है?—महानाम! यह पाँच काम-गुण०। कौनसे पाँच? (१) इष्ट, कांत, रुचिकर, प्रिय-रूप, काम-युक्त, (चित्तको) रंजित करनेवाला, चक्षुसे विज्ञेय (= जानने योग्य) रूप। (२) इष्ट कान्त० श्रोत्र-विज्ञेय शब्द। (३) ० घ्राण-विज्ञेय गंध। (४) ० जिह्वा-विज्ञेय रस। (५) ० काय-विज्ञेय स्पर्श। महानाम! यह पाँच काम-गुण हैं। महानाम! इन पाँच काम गुणोंके कारण जो सुख या सौमनस्य (= दिलकी खुशी) उत्पन्न होता है, यही कामोंका आस्वाद है।

"महानाम! कामोंका आदिनव (= दुष्परिणाम) क्या है? महानाम! कुल-पुत्र जिस किसी शिल्पसे—चाहे मुद्रासे, या गणनासे, या संख्यानसे, या कृषिसे, या वाणिज्यसे, गोपालनसे, या बाण-अस्त्रसे, या राजाकी नौकरी (= राज-पोरिस) से, या किसी (अन्य) शिल्पसे, शीत-उष्ण-पीड़ित (= ०पुरस्कृत), दंश-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप (= साँप बिच्छु आदि) के स्पर्शसे उत्पीड़ित होता, भूख प्याससे मरता, जीविका करता है। महानाम! यह कामोंका दुष्परिणाम है। इसी जन्ममें (यह) दुःखोंका पुंज (= दुःख-स्कंध) काम-हेतु = काम-निदान, काम-अधिकरण (= ० विषय) कामोंहीके कारण है। महानाम! उस कुल-पुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते = उत्थान करते, मेहनत करते, वह भोग नहीं मिलते (तो) वह शोक करता है, दुःखी होता है, चिल्लाता है, छाती पीटकर क्रंदन करता है, मूर्छित होता है—'हाय! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मेहनत निष्फल हुई!!' महानाम! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ०, इसी जन्ममें दुःख-स्कंध ०। यदि महानाम! उस कुलपुत्रको इस प्रकार उद्योग करते ० वह भोग मिलते हैं। तो वह उन भोगोंकी रक्षाके विषयमें दुःख = दौर्मनस्य झेलता है—'कहीं मेरे भोगको राजा न हर लेजायें, चोर न हर लेजायें, आग न दाहे, पानी न बहाये, अ-प्रिय-दायाद न लेजायें'। उसके इस प्रकार रक्षा-गोपन करते उन भोगोंको राजा लेजाते हैं ०, वह शोक करता है ०—'जो भी मेरा था, वह भी मेरा नहीं है'। महानाम! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर महानाम! कामोंके हेतु = कामनिदान, कामोंके झगड़े (= अधिकरण) से कामोंके लिये राजा भी राजाओंसे झगड़ते हैं, क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंसे ०, ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे ०, गृहपति (= वैश्य) गृहपतियोंसे ०, माता पुत्रके साथ ०, पुत्र भी माताके साथ ०, पिता भी पुत्रके साथ ०, पुत्र भी पिताके साथ ०, भाई भाईके साथ ०, भाई भगिनीके साथ ०, भगिनी भाईके साथ ०, मित्र मित्रके साथ झगड़ते हैं। वह वहाँ कलह = विग्रह = विवाद करते, एक दूसरे पर हाथोंसे भी आक्रमण करते हैं, ढेलोंसे भी ०, डंडोंसे भी ०, शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं। वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको। महानाम! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर महानाम! कामोंके हेतु ० ढाल-तलवार (= असि-चम्म) लेकर, धनुष (= धनुष-कलाप = धनुष-लकड़ी) चढ़ाकर, दोनों ओरसे व्यूह रचे संग्राममें दौड़ते हैं। बाणोंके चलाये जातेमें, शक्तियोंके फेंके जातेमें, तलवारोंकी चमकमें, वह बाणोंसे विद्ध होते हैं, शक्तियोंसे ताड़ित होते हैं, तलवारसे शिर-छिन्न होते हैं। वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको। यह भी महानाम! कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर महानाम! कामोंके हेतु ०, तलवार लेकर, धनुष चढ़ाकर, भीगे-लिपे हुये प्राकारों (= उपकारी = शहर-पनाह) को दौड़ते हैं। बाणोंके चलाये जातेमें ०। वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं ०। यह भी महानाम! कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर महानाम! कामोंके हेतु ० सेंध भी लगाते हैं, (गाँव) उजाड़ कर लेजाते हैं, चोरी (= एकागारिक = एक घरको घेरकर चुराना) भी करते हैं, [illegible] भी करते

हैं, पर-स्त्री-गमन भी करते हैं। तब उसको राजा लोग पकड़ कर नाना प्रकारकी सजा (= कम्म-करण) कराते हैं—चाबुकसे पिटवाते हैं, बेंतसे भी ०, जुर्माना करते हैं, हाथ भी काटते हैं, पैर भी काटते हैं, हाथ पैर भी काटते हैं। कान भी ०, नाक भी ०, कान-नाक भी ० [१]विलंगथालिक भी करते हैं, शंख-मूर्धिका भी ०, राहुमुख भी ०, ज्योतिमालिका भी ०, हस्त-प्रज्योतिका भी ०, एरक-वर्तिका भी ०, चीरक-वासिका भी ०, ऐणेयक भी ०, बडिश-मांसिका भी ०, कार्षापणक भी ०, खारापतच्छिक भी ०, परिघ-परिवर्तिक भी ०, पलाल-पीठक भी ०, तपाये तेलसे भी नहलाते हैं, कुत्तोंसे भी कटवाते हैं, जीते जी शूलीपर चढ़वाते हैं, तलवारसे शीश कटवाते हैं। वह वहाँ मरणको प्राप्त होते हैं, मरण-समान दुःखोंको भी। यह भी महानाम! कामोंका दुष्परिणाम ०।

"और फिर महानाम! कामके हेतु ० कायासे दुश्चरित (= पाप) करते हैं, वचनसे ०, मनसे ० वह वह काय ०-वचन ०-मनसे दुश्चरित करके, शरीर छोड़नेपर मरनेके बाद, अपाय = दुर्गति = विनिपात, निरय (नर्क)में उत्पन्न होते हैं। महानाम! जन्मान्तरमें यह कामोंका दुष्परिणाम दुःख-पुंज काम-हेतु = काम-निदान, कामोंका झगड़ा कामों हीके लिये होता है।

एक समय महानाम! मैं राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करता था। उस समय बहुतसे निगंठ (= जैन-साधु) ऋषिगिरिकी कालशिलापर खड़े रहने(का व्रत)ले, आसन छोड़, उपक्रम करते, दुःख, कटु, तीव्र, वेदना झेल रहे थे। तब मैं महानाम! सायंकाल ध्यानसे उठकर, जहाँ ऋषिगिरिके पास कालशिला थी, जहाँपर कि वह निगंठ थे, वहाँ गया। जाकर उन निगंठोंसे बोला—'आवुसो! निगंठो! तुम खड़े क्यों हो, आसन छोड़े···दुःख, कटुक, तीव्र वेदना झेल रहे हो!' ऐसा कहनेपर उन निगंठोंने कहा—'आवुस! निगंठ नाथपुत्त (= जैनतीर्थंकर महावीर) सर्वज्ञ=सर्वदर्शी, आप अखिल (= अपरिशेष) ज्ञान = दर्शनको जानते हैं—'चलते, खड़े, सोते, जागते, सदा निरंतर (उनको) ज्ञान = दर्शन उपस्थित रहता है'। वह ऐसा कहते हैं—'निगंठो! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर-क्रिया (= तपस्या)से नाश करो, और जो इस वक्त यहाँ काय-वचन-मनसे संवृत (= पाप न करनेके कारण रक्षित, गुप्त) हो, यह भविष्यके लिये पापका न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपस्यासे अन्त होनेसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, भविष्यमें चित्त अन्-आस्रव (= निर्मल) होगा। भविष्यमें आस्रव न होनेसे, कर्मका क्षय (होगा), कर्म-क्षयसे दुःखका क्षय; दुःख-क्षयसे वेदना (= झेलना)का क्षय, वेदना-क्षयसे सभी दुःख नष्ट होंगे। *हमें यह (विचार) रुचता है = खमता है, इससे हम संतुष्ट हैं।*'

"ऐसा कहनेपर मैंने महानाम! उन निगंठोंसे कहा—'क्या तुम आवुसो! निगंठो! जानते हो 'हम पहिले थे ही, हम नहीं न थे?' 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो! निगंठो! यह जानते हो—'हमने पूर्वमें पापकर्म किये ही हैं, नहीं नहीं किये?' 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो! निगंठो! यह जानते हो—अमुक अमुक पाप कर्म किये हैं'? 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो! निगंठो! जानते हो, इतना दुःख नाश होगया, इतना दुःख नाश करना है, इतना दुःखनाश होनेपर सब दुःख नाश हो जायेगा?' 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो! निगंठो! जानते हो—इसी जन्ममें अकुशल (= बुरे) धर्मोंका प्रहाण (= विनाश), और कुशल (= अच्छे) धर्मोंका लाभ (होना है)?' 'नहीं आवुस!' 'इस प्रकार ० निगंठो! तुम नहीं जानते—हम पहिले थे, या नहीं ०। इसी जन्ममें अकुशल धर्मोंका प्रहाण, और कुशल धर्मोंका

---

१ देखो पृष्ठ ५४-५५।

लाभ (होता है) । ऐसा ही होने (हो)मे तो आवुस! निगंठो! जो लोकमें रुद्र (=भयंकर) खून-रंगे-हाथवाले, क्रूर-कर्मा, मनुष्योंमें नीच जातिवाले (=पचाजाता) हैं, वह निगंठोंमें साधु बनते हैं।' 'आवुस! गौतम! सुखसे सुख प्राप्य नहीं है, दुःखसे सुख प्राप्य है। आवुस! गौतम! यदि सुखसे सुख प्राप्य होता, तो राजा मागध श्रेणिक बिंबसार सुख प्राप्त करता। राजा मागध श्रेणिक बिंबसार आयुष्मान् (=आप)से बहुत सुख-विहारी है।' 'आयुष्मान् निगंठोंने अवश्य, बिना विचारे जल्दीमें यह बात कही।' 'आवुस! गौतम! सुखसे सुख नहीं प्राप्य है, दुःखसे सुख प्राप्य है। सुखसे यदि आवुस! गौतम! सुख प्राप्त होता, तो राजा मागध श्रेणिक बिंबसार सुख प्राप्त करता; राजा मागध श्रेणिक बिंबसार आयुष्मान् गौतमसे बहुत सुख-विहारी है। (आप लोगोंको) तो मुझे ही पूछना चाहिये—आयुष्मानोंके लिये कौन अधिक सुख विहारी है, राजा ० बिंबसार या आयुष्मान् गौतम?' 'अवश्य आवुस! गौतम! हमने बिना विचारे जल्दीमें बात कही। नहीं आवुस! गौतम! सुखसे सुख प्राप्य है ०। जाने दीजिये इसे, अब हम आयुष्मान् गौतमसे पूछते हैं—आयुष्मानोंके लिये कौन अधिक सुख-विहारी है, राजा ० बिंबसार या आयुष्मान् गौतम?' 'तो आवुसो! निगंठो! तुमको ही पूछते हैं, जैसा तुम्हें जँचे, वैसा उत्तर दो। तो क्या मानते हो आवुसो! निगंठो! क्या राजा ० बिंबसार कायासे बिना हिले, वचनसे बिना बोले, सात रात-दिन केवल (=एकांत) सुख अनुभव करते विहार कर सकता है?' 'नहीं आवुस!' 'तो क्या मानते हो, आवुसो! निगंठो! ० छः रात-दिन केवल सुख अनुभव करते विहार कर सकता है?' 'नहीं आवुस!' '० पाँच रात-दिन ०' '० चार रात-दि०।' '० तीन रात-दिन०।' '० दो रात-दिन०।' '० एक रात-दिन०?' 'नहीं आवुस!' 'आवुसो! निगंठो! मैं कायासे बिना हिले, वचनसे बिना बोले एक रात-दिन०, दो रात-दिन०, तीन रात-दिन०, चार०, पाँच०, छः०, सात रात-दिन केवल-सुख अनुभव करता विहार कर सकता हूँ। तो क्या मानते हो आवुसो! निगंठो! ऐसा होनेपर कौन अधिक सुख-विहारी है। राजा मागध श्रेणिक बिंबसार, या मैं?' 'ऐसा होनेपर तो राजा मागध श्रेणिक बिंबसारसे आयुष्मान् गौतम ही अधिक सुख-विहारी हैं।'"

भगवान्‌ने, यह कहा, महानाम शाक्यने सन्तुष्ट हो भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

१५—अनुमान-सुत्तन्त (१।२।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भर्ग[1] (देश)में, सुंसुमार-गिरि[2]के भेपकलावन मृगदावमें विहार करते थे। वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने भिक्षुओंको संबोधित किया—"आवुसो भिक्षुओ !"

"आवुस !" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको उत्तर दिया।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने यह कहा—

१—"चाहे आवुसो ! भिक्षु (जबानी) यह कहता भी है—आयुष्मान् कहें, मैं आयुष्मानोंके वचन (= दोष दिखानेवाले शब्द)का पात्र हूँ; किन्तु यदि वह दुर्वचनी है, दुर्वचन पैदाकरनेवाले धर्मोंसे युक्त है; और अनुशासन ग्रहण-करनेमें अ-क्षम (= असमर्थ) अ-प्रदक्षिण-ग्राही (= उत्साह-रहित) है। तो फिर स-ब्रह्मचारी न तो उसे (शिक्षा) वचनका पात्र मानते हैं, न अनुशासनीय मानते हैं, न उस व्यक्तिमें विश्वासोत्पन्न करना (उचित) मानते हैं।

"आवुसो ! कौनसे हैं दुर्वचन पैदाकरनेवाले धर्म ?—यहाँ आवुसो ! भिक्षु पापेच्छ (= पदनीयत) हो, पापिका (= बुरी) इच्छाओंके वशीभूत होता है। जो कि आवुसो ! भिक्षु ० पापिका इच्छाओंके वशीभूत है, यह भी आवुसो ! दुर्वचन पैदाकरनेवाला धर्म (= बात) है।

"और फिर आवुसो ! भिक्षु आत्मोत्कर्षक (= अपनी उन्नति या प्रशंसा चाहनेवाला) होता है, और दूसरेकी पतन (या निंदा) चाहनेवाला। ० यह भी आवुसो दुर्वचन पैदाकरनेवाला धर्म है।

"और फिर आवुसो ! भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधके वशीभूत ०। ०।

" ० भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधके हेतु उपनाह (= ढोंग)से युक्त होता है ०। ०।

" ० भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधके हेतु अभिषंग (= डाह)से युक्त होता है ०। ०।

" ० भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधपूर्ण वाणीका निकालनेवाला होता है ०। ०।

" ० भिक्षु दोष दिखलानेपर दोष दिखलानेवालेके लिये प्रतिस्फरण (= प्रतिहिंसा) करता है ०। ०।

" ० भिक्षु दोष दिखलानेसे, दोष दिखलाने वाले को नाराज करता है ०। ०।

" ० भिक्षु दोष दिखलानेसे, दोष दिखलानेवालेपर उल्टा आरोप करता है ०। ०।

---

[1] भर्ग आजकलके मिर्जापुर जिलेका गंगासे दक्षिणी भाग और कुछ आसपासका प्रदेश है, इसकी सीमा-गंगा-टौंस-कर्मनाशा नदियाँ एवं विन्ध्यपर्वतका कुछ भाग रहा होगा।

[2] वर्तमान चुनार (जि० मिर्जापुर, युक्त प्रान्त)।

"० भिक्षु दोष दिखलानेपर दोष दिखलानेवालेके साथ दूसरी दूसरी (बात) ले लेता है, बातको (प्रकरणसे) बाहर ले जाता है; कोप, द्वेष, अप्रत्यय (= नाराजगी) उत्पन्न कराता है ० । ० ।

"० भिक्षु दोष दिखलानेपर, दोष दिखलानेवालेके साथ अपदान (= साथ छोड़ना) अ-सम्प्रायण (= अ-स्वीकार) करता है ० । ० ।

"और फिर आवुसो ! भिक्षु म्रक्षी (= अमरखी) और प्रदाशी । (= निठुर) होता है ० । ० ।

"० ईर्ष्यालु और मत्सरी होता है ० । ० ।

"० शठ और मायावी ० । ० ।

"० स्तब्ध (= जड़) और अतिमानी (= अभिमानी) ० । ० ।

"० संदृष्टिपरामर्शी (= तुरन्त लाभ चाहनेवाला) और आधानग्राही (= हठी) और दुष्प्रति निस्सर्गी (= न त्यागनेवाला) होता है ० । ० ।

२—"चाहे आवुसो ! भिक्षु (= यह न भी कहता है—'आयुष्मान् कहें'[1] ०, किन्तु यदि वह सुवचनी है, और सुवचन पैदा करनेवाले धर्मोंसे युक्त है, और वह अनुशासन ग्रहण करनेमें क्षम (= समर्थ) प्रदक्षिण-ग्राही (= उत्साहसे ग्रहण करनेवाला) है, तो फिर सब्रह्मचारी उसे (उपदेशयुक्त) वचनका पात्र मानते हैं, अनुशासनीय मानते हैं, उस व्यक्तिमें विश्वास उत्पन्न करना (उचित) मानते हैं ।

"आवुसो ! कौनसे हैं सुवचन पैदाकरनेवाले धर्म ?—यहाँ आवुसो ! भिक्षु न पापेच्छ होता है, न बुरी इच्छाओंके वशीभूत । जो कि आवुसो ! भिक्षु न पापेच्छ है, न बुरी इच्छाओंके वशीभूत; यह भी आवुसो ! सुवचन पैदाकरनेवाला धर्म है ।

"और फिर आवुसो ! भिक्षु न आत्मोत्कर्षक होता, न पर-अपकर्षक । ० यह भी आवुसो ! सुवचन पैदा करनेवाला धर्म है ।

"० न क्रोधी होता है, न क्रोधाऽभिभूत ० । ० ।

"० न क्रोधी ० न क्रोधके हेतु उपनाही ० । ० ।

"० न क्रोधी ० न क्रोधके हेतु अभिषंगी ० । ० ।

"० न क्रोधी ० न क्रोधपूर्ण बातोंका करनेवाला होता है ० । ० ।

"० दोष दिखलानेपर दोष दिखलानेवालेको प्रतिस्फरण (= प्रतिहिंसा) नहीं करता है ० । ० ।

"० न ० नाराज करता है ० । ० ।

"० न ० उल्टा आरोप करता है ० । ० ।

"० न ० दूसरी दूसरी बात ले लेता है, न बातको प्रकरणसे बाहर लेजाता है, न कोप, द्वेष, अप्रत्यय उत्पन्न कराता है ० । ० ।

"० न ० अपदान अ-सम्प्रायण करता है ० । ० ।

"० न म्रक्षी न प्रदाशी होता है ० । ० ।

"० न ईर्ष्यालु और न मत्सरी होता है ० । ०

---

[1] देखो पृष्ठ ६१ ।

"० न शठ और न मायावी ०। ०।

"० न स्तब्ध (= जड़) और न अतिमानी (= अभिमानी) ०। ०।

"० न सन्दृष्टिपरामर्षी न आधानग्राही (= हठी) और ० सुप्रति-निस्सर्गी होता है।

३—"यहाँ आवुसो! भिक्षु अपने ही अपनेको इस प्रकार समझावे (= अनुमान करे) जो व्यक्ति पापेच्छ है, पापिका इच्छाके वशीभूत है, वह पुद्गल मुझे अप्रिय = अमनाप है। और मैं भी तो पापेच्छ हूँ, पापिका इच्छाके वशीभूत हूँ; (इसलिये) मैं भी दूसरोंको अप्रिय = अमनाप होऊँगा—यह जानते हुये आवुसो! भिक्षुको ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिये—मैं पापेच्छ नहीं होऊँगा, मैं पापिका इच्छाओंके वशीभूत नहीं होऊँगा।

"जो पुद्गल आत्मोत्कर्षक होता है, और पर-अपकर्षक; वह मुझे अप्रिय = अमनाप होता है; और (यहाँ) मैं ही आत्मोत्कर्षक, और पर-अपकर्षक हूँ; (इसलिये) मैं भी दूसरोंको अप्रिय = अमनाप होऊँगा—यह जानते हुये आवुसो! भिक्षुको ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिये—मैं आत्मोत्कर्षक नहीं होऊँगा, मैं पर-अपकर्षक नहीं होऊँगा।

"जो पुद्गल क्रोधी होता है, क्रोधके वशीभूत ०।

"० क्रोधी होता है, क्रोधके हेतु उपनाही ०।

"० क्रोधी ० क्रोधके हेतु अभिषंगी ०।

"० क्रोधी ० क्रोध-पूर्ण वचन निकालनेवाला ०।

"जो पुद्गल दोष दिखाये जानेपर, दोष दिखलानेवालेको प्रति-स्फरण करता है ०।

"० दोष दिखलानेवालेको नाराज कराता है ०।

"० दोष दिखलानेवालेपर उल्टा आरोप करता है ०।

"० दूसरी दूसरी बात ले लेता है, बातको प्रकरणसे बाहर ले जाता है; कोप, द्वेष अप्रत्यय (= नाराज़गी) उत्पन्न करता है ०।

"० अपक्षात और सम्प्रायण करता है ०।

"० म्रक्षी और प्रदाशी होता है ०।

"० ईर्ष्यालु और मत्सरी होता है ०।

"० शठ और मायावी होता है ०।

"० स्तब्ध और अतिमानी होता है ०।

"जो पुद्गल सन्दृष्टि-परामर्षी आधानग्राही और दुष्प्रति-निस्सर्गी होता है, वह पुद्गल मुझे अप्रिय है (= अमनाप है) और यहाँ मैं ही हूँ, सन्दृष्टि-परामर्षी ०; (इसलिये) मैं भी दूसरोंको अप्रिय = अमनाप होऊँगा—यह जानते हुये आवुसो! भिक्षुको ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिये—मैं सन्दृष्टि-परामर्षी ० नहीं होऊँगा।

४—"यहाँ आवुसो! भिक्षुको अपने आप इस प्रकार प्रत्यवेक्षण (= परीक्षण) करना चाहिये—क्या मैं पापेच्छ हूँ, पापिका इच्छाओंके वशीभूत हूँ। यदि आवुसो! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते देखे, कि वह पापेच्छ है, पापिका इच्छाओंके वशीभूत है; तो आवुसो! उस भिक्षुको उन बुरे = अकुशल धर्मों (= बातों)के परित्यागके लिये उद्योग करना चाहिये। परन्तु यदि आवुसो! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते देखे, कि वह पापेच्छ नहीं है, पापिका इच्छाओंके वशीभूत नहीं है; तो आवुसो! उस भिक्षुको उसी प्रीति = प्रामोद्य (= खुशी)के साथ रात दिन कुशल धर्मों (= अच्छी बातों)को सीखते विहार करना चाहिये।

"और फिर आवुसो! भिक्षुको अपने आप इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—क्या मैं

आत्मोत्कर्षक हूँ, पर-अपकर्षक। यदि ०।

" ० —क्या मैं क्रोधी, क्रोधके वशीभूत हूँ ०।

" ० —क्या मैं क्रोधी, क्रोध-हेतु उपनाही हूँ ०।

" ० —क्या मैं क्रोधी, ० अभिषंगी ०।

" ० —क्या मैं क्रोधी, ० क्रोध-पूर्ण वचन निकालनेवाला ०।

" ० —क्या मैं दोष दिखाने वालेपर, दोष दिखानेवालेका प्रतिस्फरण (= प्रतिहिंसा) करता हूँ ०।

" ० — ० ,दोष दिखानेवालेको नाराज करता हूँ ०।

" ० — ० दोष दिखानेवालेपर उल्टा आरोप करता हूँ ०।

" ० — ० दूसरी दूसरी बात ले लेता हूँ, बातको प्रकरणसे बाहर ले जाता हूँ, कोप, द्वेष, अप्रत्यय उत्पन्न करता हूँ।

" ० — ० अपदान और सम्भाषण करता हूँ ०।

" ० — ० म्रक्षी और प्रदाशी हूँ ०।

" ० — ० ईर्ष्यालु और मत्सरी हूँ ०।

" ० — ० शठ और मायावी हूँ ०।

" ० — ० स्तब्ध और अतिमानी हूँ ०।

" ० — ० सन्दृष्टि-परामर्शी, आधानग्राही और दुष्प्रति-निस्सर्गी हूँ ० रात दिन कुशल धर्मोंको सीखता विहार करना चाहिये।

"यदि आवुसो! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करने अपनेमें सभी पापक = अकुशल-धर्मों (= बुराइयों) को अप्रहीण (= अ-परित्यक्त) देखे, तो आवुसो! उस भिक्षुको उन सभी पापक = अकुशल धर्मोंके प्रहाण (=नाश)के लिये प्रयत्न करना चाहिये। किन्तु यदि आवुसो! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते अपनेमें सभी बुरे = अकुशल धर्मोंको प्रहीण समझे, तो आवुसो! उस भिक्षुको उसी प्रीति = प्रामोद्य-के साथ रात दिन कुशल धर्मोंका अभ्यास करते विहार करना चाहिये।

"जैसे आवुसो! दहर (= कमसिन) युवा शौकीन स्त्री पुरुष परिशुद्ध उज्ज्वल आदर्श (= दर्पण) या स्वच्छ जलपात्रमें अपने मुखके प्रतिबिम्बको देखते हुये—यदि वहाँ रज (= मैल) =अंगणको देखता है, तो उस रज या अंगणके प्रहाण (= दूर करने)की कोशिश करता है, यदि वहाँ रज या अंगण नहीं देखता, तो उसीसे सन्तुष्ट होता है—'अहो! लाभ है मुझे! परिशुद्ध है मेरा (मुख) !!' ऐसेही आवुसो! यदि भिक्षु प्रत्यवेक्षण कर अपने सभी पापक = अकुशल धर्मोंको अप्रहीण देखे, तो ० प्रयत्न करना चाहिये। किन्तु यदि आवुसो! ०[1] सीखते विहार करना चाहिये।"

आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आ. महामौद्गल्यायन के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो ऊपरका पैरा।

६—चेतोखिल-सुत्तन्त (१।२।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१—भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! जिस किसी भिक्षुके पाँच चेतोखिल (= चित्तके कील) नष्ट (= प्रहीण) नहीं हुये, पाँच चित्तमें बद्ध हैं, छिन्न नहीं हैं; वह इस धर्म-विनय (= बुद्ध-धर्म)में वृद्धि = विरूढिको प्राप्त होगा, यह सम्भव नहीं। कौनसे इसके पाँच चेतोखिल अप्रहीण हैं ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु शास्ता (= आचार्य)में कांक्षा = विचिकित्सा (= संदेह) करता है, (संशयसे) मुक्त नहीं होता, प्रसन्न (= श्रद्धालु) नहीं होता; (इसलिये) उसका चित्त आतप्य (= तीव्र उद्योग)के लिये, अनुयोग, सातत्य (= निरन्तर अभ्यास) (और) प्रधान (= दृढ़ उद्योग)के लिये नहीं झुकता। जो कि उसका चित्त आतप्यके लिये नहीं झुकता, यह उसका प्रथम चेतोखिल अ-प्रहीण है।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु धर्ममें ०[1] द्वितीय ०।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु संघमें ०[1] तृतीय ०।

" ० शीलमें ०[1] चतुर्थ ०।

" ० सब्रह्मचारियोंके विषयमें कुपित, असन्तुष्ट, दूषित-चित्त, खिलजात (= काँटा बना) होता है। जो कि भिक्षुओ ! जो यह भिक्षु सब्रह्मचारियोंके विषयमें ० खिलजात होता है; (इसलिये) उसका चित्त तीव्र उद्योगके लिये नहीं झुकता; जो कि उसका चित्त तीव्र उद्योग ० के लिये नहीं झुकता, यह उसका पंचम चेतोखिल अप्रहीण है।

"यह उसके पाँचों चेतोखिल अप्रहीण होते हैं।

"कौनसे इसके पाँच चित्त-बंधन (चेतसोविनिबंध) अ-समुच्छिन्न (= न कटे) होते हैं ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु कामों (= भोगों)में अ-वीतराग = अ-वीतच्छन्द = अ-वीत-प्रेम, अविगतपिपास (= जिसकी प्यास हटी नहीं), अ-विगत-परिदाह (= जिसकी जलन गई नहीं), अ-विगत तृष्णा होता है। जो कि भिक्षुओ ! भिक्षु कामोंमें ० अविगत तृष्णा होता है, इसलिये उसका चित्त ० नहीं झुकता; यह उसका प्रथम चित्त-बन्धन छिन्न नहीं हुआ है।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें अ-वीत-राग ०[1]; यह उसका द्वितीय ०।

" ० रूपमें अवीतराग ००[1]; यह तृतीय ०।

---

[1] ऊपरके पैरा जैसा।

"और फिर भिक्षुओ! यथेच्छ उदरपूर भोजन करके शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध (=आलस्य)-सुखमें फँसा विहरता है। जो कि, भिक्षुओ! ०[1]; यह उसका चतुर्थ ०।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु किसी देव-निकाय देवयोनिका प्रणिधान (=दृढ़ कामना) करके ब्रह्मचर्य चरण करता है—इस शील, व्रत, तप, या ब्रह्मचर्यसे मैं देवता या देवताओंमेंसे कोई होऊँ। जो कि भिक्षुओ! ०[1]; यह उसका पंचम चित्त-बंधन छिन्न नहीं हुआ है।

"यह उसके पाँच चेतसो-विनिबंध (=चित्त-बंधन) अ-समुच्छिन्न होते हैं। भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षुके यह पाँच चेतोखिल अप्रहीण हैं, यह पाँच चित्त-विनिबन्धन अ-समुच्छिन्न हैं, वह इस धर्ममें वृद्धि=विरूढिको प्राप्त होगा, यह संभव नहीं।

२—"भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षुके पाँच चेतोखिल प्रहीण हैं, पाँच चेतसो विनिबंध समुच्छिन्न हैं। वह इस धर्ममें वृद्धि=विरूढिको प्राप्त होगा, यह संभव है।

"कौनसे उसके पाँच चेतोखिल प्रहीण हैं? ० यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु शास्तामें कांक्षा=विचिकित्सा नहीं करता, (संशय-)मुक्त होता है, प्रसन्न होता है; (इसलिये) उसका चित्त आतप्य ०[2] के लिये झुकता है। जो कि उसका चित्त शीघ्र उद्योगके लिये झुकता है, यह उसका प्रथम चेतोखिल प्रहीण हुआ।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु धर्ममें ०[3]; ० द्वितीय ०।

" ० संघमें ०[3]; ० तृतीय ०।

" ० शिक्षामें ०[3]; ० चतुर्थ ०।

" ० सब्रह्मचारियोंके विषयमें कुपित, असन्तुष्ट, दूषित-चित्त, खिलजात (=काँटे सा) नहीं होता; जो यह ०[3]; पंचम ०।

"यह उसके पाँच चेतोखिल प्रहीण होते हैं।

"कौनसे इसके पाँच चेतसो-विनिबंध (=चित्तके बंधन) समुच्छिन्न होते हैं?[4]—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु कामोंमें वीतराग=वीतच्छन्द=वीतप्रेम, विगत-पिपास, विगत-परिदाह, विगत-तृष्ण होता है, जो कि भिक्षुओ! भिक्षु कामोंमें वीतराग० होता है; इसलिये उसका चित्त आतप्य०[2] झुकता है; यह उसका प्रथम चेतसो-विनिबंध समुच्छिन्न हुआ।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु कायामें वीतराग ०[5] द्वितीय ०।

" ० रूपमें वीतराग ०[5] तृतीय ०।

" ०[5] यथेच्छ उदरपूर भोजन करके शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध-सुखमें फँसा नहीं विहरता। जो कि भिक्षुओ ० चतुर्थ ०।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु किसी देवनिकाय[5] का प्रणिधान करके ब्रह्मचर्य चरण नहीं करता—०[6]। जो कि भिक्षुओ! ० यह उसका पंचम चेतसो विनिबंध छिन्न हुआ।

"यह उसके पाँच चेतसो-विनिबंध समुच्छिन्न हुये।

"भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षुके पाँच चेतोखिल प्रहीण हैं, पाँच चेतसो-विनिबन्ध समुच्छिन्न हैं, वह इस धर्ममें वृद्धि=विरूढिको प्राप्त होगा, यह सम्भव है।

"वह (१) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धिपाद[7] की भावना करता है; (२) वह

---

[1] ऊपरके पैरा जैसा। [2] देखो पृष्ठ ६५। [3] ऊपरके पैरा जैसा। [4] मिलाओ पृष्ठ ६५।
[5] ऊपरके पैरा जैसा। [6] मिलाओ ऊपर। [7] यही चार ऋद्धिपाद या ऋद्धियाँ हैं, पंचम उत्सोढि है।

वीर्य-समाधि=प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है; (३) वह चित्त समाधिके प्रधान संस्कारसे युक्त ०; (४) वह समाधि-इन्द्रियके प्रधान संस्कारसे युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। विमर्श समाधिके प्रधान-संस्कारसे युक्त ऋद्धिपादकी भावना है। (यह) पाँचवाँ (विमर्श समाधि-प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपाद, उत्सोढि (= उत्साह) है। भिक्षुओ! सो वह भिक्षु उत्सोढिके पन्द्रह अंगोंसे युक्त निर्वेद (= वैराग्य)के लिये योग्य है, संबोधि (= परमज्ञान)के लिये योग्य है, सर्वोत्तम (= अनुत्तर) योगक्षेम (= निर्वाण)की प्राप्तिके लिये योग्य है।

"जैसे भिक्षुओ! आठ, दस या बारह मुर्गीके अंडे हों; वह मुर्गीद्वारा भली प्रकार सेये= परिस्वेदित, परिभावित हों; चाहे मुर्गीकी यह इच्छा न भी हो—'अहोवत! मेरे चूजे (=कुक्कुट-पोतक) पादनखसे या मुखतुंडसे अंडेको फोड़कर स्वस्तिपूर्वक निकल आवें।' तो भी वह चूजे पादनखसे, या मुखतुंडसे अंडेको फोड़कर स्वस्तिपूर्वक निकल आनेके योग्य हैं; ऐसे ही भिक्षुओ! उत्सोढिके पन्द्रह अंगोंसे युक्त भिक्षु निर्वेदके लिये योग्य है, सम्बोधिके लिये योग्य है, अनुत्तर योग क्षेमकी प्राप्तिके लिये योग्य है।"

भगवान्‌ने यह कहा, उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

१७—वनपत्थ-सुत्तन्त (१।२।७)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! वनपत्थ-परियाय (= नामक उपदेश)को तुम्हें उपदेशता हूँ; उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ !"

"ऐसा ही भन्ते !" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ ! यहाँ (कोई) भिक्षु वनप्रस्थ (= जंगल)का आश्रय लेकर विहरता है। वनप्रस्थका आश्रय ले विहरते (भी) उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती; अ-समाहित चित्त, समाहित (= एकाग्र) नहीं होता; अ-परिक्षीण आस्रव (= मल) परिक्षीण (= नष्ट) नहीं होते; अ-लब्ध अनुत्तर योग-क्षेम (= निर्वाण) उपलब्ध नहीं होता। प्रव्रजित (= सन्यासी)के लिये जो यह अपेक्षित सामग्रियाँ हैं—चीवर (=वस्त्र), पिंडपात (= भिक्षान्न), शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य (= रोगीके पथ्य औषध)के सामान, वह (भी) कठिनाईसे जुटते हैं। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको इस प्रकार सोचना चाहिये—'मैं इस जंगलमें विहर रहा हूँ; किन्तु इस वनमें विहरते (भी) मेरी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती ० जुटते हैं', और भिक्षुओ ! उस भिक्षुको रातके वक्त या दिनके वक्त उस वनसे चला जाना चाहिये, (वहाँ) नहीं बसना चाहिये।

"यहाँ भिक्षुओ ! (एक) भिक्षु वनप्रस्थका आश्रय लेकर विहरता है। ० उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती ०[1], अलब्ध अनुत्तर योग-क्षेम उपलब्ध नहीं होता; किन्तु प्रव्रजितके लिये जो यह अपेक्षित सामग्रियाँ हैं—चीवर ० वह आसानीसे जुट जाती हैं। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको इस प्रकार सोचना चाहिये—'मैं इस वनप्रस्थको आश्रय लेकर ० जुट जाती हैं; लेकिन मैं चीवरके लिये घरसे बेघर हो प्रव्रजित नहीं हुआ, न पिंडपातके लिये ०, न शयनासनके लिये ०, न ग्लान-प्रत्यय-भैषज्यके लिये ०। और इस वनप्रस्थका आश्रय लेकर विहरते मेरी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती ०।' भिक्षुओ ! उस भिक्षुको ० उस वनसे चला जाना चाहिये ०।

"यहाँ, भिक्षुओ ! ० अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती है, असमाहित चित्त समाहित होता है, अपरिक्षीण आस्रव परिक्षीण होते हैं; अप्राप्त अनुत्तर योगक्षेम प्राप्त होता है; किन्तु

[1] पिछले पैरेसे मिलाओ।

प्रव्रजितके लिये जो यह अपेक्षित सामग्रियाँ हैं—'०, यह कठिनाईसे जुटती हैं। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको इस प्रकार सोचना चाहिये—०; लेकिन मैं चीवरके लिये घरसे बेघर हो प्रव्रजित नहीं हुआ ०। ० मेरी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती है ०'। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको यह जानकर उस वनप्रस्थमें वसना चाहिये, नहीं जाना चाहिये।

"० उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती है ०, प्रव्रजितके लिये अपेक्षित सामग्रियाँ—० आसानीसे मिल जाती हैं। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जीवन भर उसी वनमें वसना चाहिये, नहीं जाना चाहिये।

"यहाँ भिक्षुओ ! (यदि) भिक्षु किसी ग्रामका आश्रय लेकर विहरता है ०[1]। निगम (=कस्बा) ०[1]। ० नगर ०[1]। ० व्यक्ति (=पुद्गल) ०[1]। ० भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जीवन भर उस व्यक्तिके साथ रहना चाहिये हटानेपर भी छोड़कर नहीं जाना चाहिये।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

१८—मधुपिंडक-सुत्तन्त (१।२।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य (देश)में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे। त भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले कपिलवस्तुमें पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुये। कपिल वस्तुमें पिंडचार करके भोजनोपरान्त पिंडपातसे निवटकर, जहाँ महावन था, वहाँ दिनके विहार लिये गये। जाकर महावनमें प्रविष्ट हो वेलुव-लट्ठिका (= बाँस) वृक्षके नीचे बैठे। दण्डपाणि शाक्य भी टहलने (= जंघा विहार)के लिये, जहाँ महावन था वहाँ गया। जाकर, महावनमें प्रवि हो, जहाँ वेलुव-लट्ठिका (= वेणुयष्टिका) थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् साथ……(यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ) डण्डेके सहारे एक ओर खड़ा होगया। एक ओर ख हो दण्डपाणि शाक्यने भगवान्से यह कहा—

"श्रमण (आप) किस वादके माननेवाले, किस (सिद्धान्त)के वक्ता हैं?"

"आवुस! जिस वादका मानने वाला, देव-मार-ब्रह्मासहित सारे लोकमें श्रमण-ब्राह्मण-दे मानुष सारी प्रजामें, लोकमें किसीके साथ विग्रह न करके रहता है; जैसे कामोंसे रहित विहरते हुये उस अकथंकथी, छिन्न-कौकृत्य (= संदेह-रहित), भव-अभवमें तृष्णारहित उस ब्राह्मणको संज्ञ (= सोच) नहीं पीछा करती; आवुस! मैं ऐसे वाद-वाला ऐसे (सिद्धान्तका) वक्ता हूँ।"

ऐसा कहनेपर दण्डपाणि शाक्य शिरको हिला, जीभ चला, ललाटपर तीन बलें चढ़ाकर, डंडा उठा चल दिया।

तब भगवान् सायंकाल प्रतिसँल्लयन (= एकान्तचिन्तन)से उठकर जहाँ न्यग्रोधाराम था वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठ कर भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज मैं पूर्वाह्ण समय पहिन कर पात्रचीवर ले०[1] डंडा उठा चल दिया।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! क्या वादी है भगवान्, कि, देव-मार-ब्रह्मासहित सारे लोकमें ०[1] संज्ञा नहीं पीछा करती?"

"भिक्षुओ! जिसके कारण पुरुषको प्रपंच संज्ञाका ज्ञान (= संख्या) आती हैं, जहाँ अभि-नन्दन योग्य नहीं, अभिवादन योग्य नहीं, गवेषण योग्य नहीं, यही है अन्त राग-अनुशयों (= रागरूपी मलों)का; ० प्रतिघ (= प्रतिहिंसा)-अनुशयोंका ०; ० दृष्टि-अनुशयों ०; ० विचिकित्सा-अनुशयों ०; ० मान-अनुशयों ०; ० भवराग-अनुशयों ०; ०अविद्या-अनुशयों ०; यहीं अन्त है दण्डग्रहण, शस्त्रग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, 'तू तू मैं मैं', पिशुनता (= चुगली),

[1]ऊपर आयेकी पुनरावृत्ति।

और मृषावाद (= झूठ)का। यहाँ यह पापक=अकुशल धर्म (= बुराइयाँ) निःशेषतया नष्ट हो जाते हैं!"

भगवान्‌ने यह कहा, यह कहकर सुगत (= बुद्ध) आसनसे उठकर विहार (= कोठरी) में चले गये।

तब, भगवान्‌के जानेके थोड़ी ही देर बाद उन भिक्षुओंको यह हुआ—"आवुसो! भगवान्—'भिक्षुओ! जिसके कारण० नष्ट हो जाती है।' इसे संक्षेपसे गिनाकर, विस्तारसे अर्थको बिना विभाजित किये ही आसनसे उठकर विहारमें चले गये। कौन है, जो इस संक्षेपसे कहे···विस्तारसे न विभाजित किये (उपदेश)का विस्तारसे अर्थ-विभाग करेगा?"

तब उन भिक्षुओंको हुआ—"यह आयुष्मान् महाकात्यायन शास्ता (= बुद्ध)द्वारा प्रशंसित, विज्ञ सब्रह्मचारियोंद्वारा सम्मानित हैं। आयुष्मान् महाकात्यायन शास्ताद्वारा इस संक्षेपसे कहे···विस्तारसे न विभाजित किये (उपदेश)का विस्तारसे अर्थ-विभाग करनेमें समर्थ हैं। क्यों न हम आयुष्मान् महाकात्यायनसे इसके अर्थको पूछें।"

तब वह भिक्षु जहाँ आ. महाकात्यायन थे, वहाँ गये। जाकर आ. महाकात्यायनके साथ··· (यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर···बैठकर···आ. महाकात्यायनसे यह बोले—"आवुस कात्यायन! भगवान्—'भिक्षुओ! जिस कारणसे ०[1]; जो यह संक्षेपसे कह विस्तारसे विभाजित किये बिना ही ० विहारमें चले गये। तब आवुस कात्यायन! भगवान्‌के जानेके थोड़ी ही देर बाद ०[2]। तब हमें हुआ—यह आयुष्मान् महाकात्यायन ०[2] पूछें। आयुष्मान् कात्यायन (आप) इसका विभाजन करें।"

"जैसे, आवुसो! सारार्थी, सारगवेषी पुरुष सारको खोजते, सारवाले खड़े महावृक्षके मूलको छोड़, स्कन्धको छोड़, शाखा-पत्रको छोड़, सार खोजना चाहे; ऐसे ही अब शास्ता (= बुद्ध) के सामने रहनेपर उन भगवान्‌को छोड़ आयुष्मानोंको हम लोगों (जैसे)से पूछनेकी इच्छा है। आवुसो! वह भगवान् जानकार हैं, देखनहार हैं। वह भगवान् चक्षुर्भूत (= आँख समान), ज्ञानभूत, धर्मभूत, ब्रह्मभूत (हैं)। वक्ता प्रवक्ता (हैं)। अर्थके निर्णेता, अमृतके दाता, धर्म-स्वामी, तथागत हैं। इसीका काल था, कि भगवान्‌को ही इसका अर्थ पूछते, जैसे भगवान् इसका व्याख्यान करते, वैसा धारण करते।"

"ठीक आवुस कात्यायन!—'भगवान् जाननहार हैं ०[2] वैसा धारण करते'। आयुष्मान् महाकात्यायन भी तो शास्ताद्वारा प्रशंसित ०[2] विस्तारसे अर्थ विभाग करनेमें समर्थ हैं। आयुष्मान् कात्यायन (आप) इसे सरल करके विभाजन करें।"

"तो आवुसो! सुनो अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा आवुस!" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकात्यायनको उत्तर दिया।

आ. महाकात्यायनने यह कहा—"आवुसो! हमारे भगवान्—'भिक्षु! जिस कारणसे ०[1]; जो यह संक्षेपसे कह, विस्तारसे विभाजित किये बिना ही ० विहारमें चले गये। आवुसो! इस संक्षेपसे कहे विस्तारसे न विभाजित किये उपदेशका अर्थ मैं इस प्रकार जानता हूँ। आवुसो! भगवान्‌के चक्षु करके, रूपमें चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों (= चक्षु-इन्द्रिय, रूप-विषय और

विज्ञान)का समागम स्पर्श (कहा जाता है)। स्पर्श करके वेदना (होती है)। जिसे वेदन (= अनुभव) करता है, उसका संज्ञान (= समझना) करता है। जिसे संज्ञान करता है, उसके (बारेमें) वितर्क करता है। जिसे वितर्कता है, उसे प्रपंचन करता है। इसके कारण पुरुषको भूत भविष्य-वर्तमान संबंधी चक्षु-द्वारा-विज्ञेय रूपोंमें प्रपंच-संज्ञाका संख्यान आता है। आवुसो! श्रोत्र करके शब्दमें-श्रोत्र विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनोंका समागम स्पर्श है ०। ० घ्राण करके गंधमें ०। ० जिह्वा करके रसमें ०। ० काया करके स्प्रष्टव्यमें काय-विज्ञान उत्पन्न होता है। ०। ० मन करके धर्ममें ० मनो-विज्ञान ०।

"आवुसो! यदि चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञान हैं, तभी स्पर्शका प्रज्ञापन (= जानना) संभव है। स्पर्शकी प्रज्ञप्ति होनेपर वेदनाका प्रज्ञापन संभव है। ० संज्ञाका प्रज्ञापन संभव है। ० वितर्क प्रज्ञप्ति ०। वितर्क-प्रज्ञप्तिके होनेपर प्रपंच-संज्ञा संख्या-समुदाचरण-प्रज्ञप्ति (= ज्ञानके उपचारका जानना) संभव है। आवुसो! श्रोत्र, शब्द, और श्रोत्रविज्ञानके होनेपर स्पर्शकी प्रज्ञप्ति है।० घ्राण, गंध और घ्राण-विज्ञान ०। ० जिह्वा, रस, और जिह्वा-विज्ञान ०। ० काया, स्प्रष्टव्य, और काय-विज्ञान ०। ० मन, धर्म और मनोविज्ञानके होनेपर स्पर्शकी प्रज्ञप्ति संभव है। स्पर्शकी प्रज्ञप्ति होनेपर वेदनाका प्रज्ञापन संभव है। ०[1] संज्ञा ०। ० वितर्क ०। ० प्रपंच-संज्ञा-संख्या-समुदाचरण-प्रज्ञप्ति संभव है।

"आवुसो! चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञानके न होनेपर स्पर्शकी प्रज्ञप्ति संभव नहीं। स्पर्श-प्रज्ञप्तिके बिना वेदना-प्रज्ञप्ति संभव नहीं। ० संज्ञा-प्रज्ञप्ति संभव नहीं। ० वितर्क-प्रज्ञप्ति ०। वितर्क-प्रज्ञप्तिके बिना प्रपंच-संज्ञा-संख्या-समुदाचरण-प्रज्ञप्ति संभव नहीं।

"आवुसो! श्रोत्र, शब्द, और श्रोत्रविज्ञानके न होनेपर ०[2]। ०घ्राण०[2]। ० जिह्वा ०[2]। ० काय ०[2]। ० मन ०[2]। ० समुदाचरण-प्रज्ञप्ति संभव नहीं।

"आवुसो! भगवान्—'भिक्षु! जिस कारणसे ०[3], जो यह संक्षेपसे कह, विस्तारसे विभाजित किये बिना ही० विहारमें चले गये। आवुसो! ०[4] उपदेशका अर्थ मैं इस प्रकार जानता हूँ। चाहें, तो आप आयुष्मान् भगवान्के पास भी जाकर इस अर्थको पूछें, जैसा हमारे भगवान् व्याख्यान करें, वैसा धारण करें।"

तब वह भिक्षु आ. महाकात्यायनके भाषणका अभिनन्दन = अनुमोदन कर आसनसे उठ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर...एक ओर बैठ...यह बोले—

"भन्ते! भगवान्—'भिक्षु, जिस कारणसे ०[5] नष्ट हो जाती है', जो यह संक्षेपसे कह, विस्तारसे विभाजित किये बिना ही ० विहारमें चले गये। तब भगवान्के जानेके थोड़ी ही देर बाद०[6] ०[7] महाकात्यायनसे (इस) अर्थको पूछें। तब हम भन्ते! जहाँ आ. महाकात्यायन थे, वहाँ गये ०[8] आ. महाकात्यायनसे इस अर्थको पूछा। हमारे वैसा पूछने पर आ. महाकात्यायनने इन आकारोंसे, इन पदोंसे, इन व्यञ्जनोंसे अर्थ-विभाग किया।"

"भिक्षुओ! पंडित है महाकात्यायन, महाप्राज्ञ है ०। यदि भिक्षुओ! तुमने मुझे इस अर्थको पूछा होता, तो मैं भी वैसेही इसका व्याख्यान करता, जैसे कि महाकात्यायनने इसका अर्थ व्याख्यान किया। यही इसका अर्थ है, ऐसे ही इसे धारण करो।"

---

[1] देखो ऊपर। [2] ऊपरके पैरा जैसा। [3] पूर्वके पैरा जैसा। [4] देखो पृष्ठ ७१।
[5] देखो ऊपर। [6] देखो पृष्ठ ७१। [7] देखो पृष्ठ ७१।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"जैसे भन्ते ! भूखकी दुर्बलतासे पीड़ित पुरुष मधु-पिंड (= लड्डू) पा जाये; वह जहाँ जहाँसे खाये (वहीं वहींसे उसमें) स्वादु, तृप्ति-कर रसको पाये, ऐसेही भन्ते ! चेतक (= होशियार) दर्भजातिक (= कुशाग्र-बुद्धि) भिक्षु इस धर्मपर्याय (= धर्मोपदेश)के अर्थको जिधर जिधरसे प्रज्ञासे परखे, उधर उधरसे ही सन्तोषको पावेगा, चित्तकी प्रसन्नताको ही पावेगा । भन्ते ! क्या नाम है, इस धर्मपर्यायका ?"

"तो आनन्द ! तू इस धर्मपर्यायको मधु-पिंड-धर्मपर्यायहीके नामसे धारण कर ।"

"भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणको अभिनंदित किया ।

१९—द्वेधा-वितक्क-सुत्तन्त (१।२।९)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—भिक्षुओ !"

"भदन्त !" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! संबोध (= बुद्धत्व-प्राप्ति)से पूर्वभी, बोधि-सत्त्व होते वक्त मेरे (मनमें) ऐसा होता था—'क्यों न दो टूक (= द्वेधा) वितर्क करते करते मैं विहरूँ।' सो भिक्षुओ ! जो काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क (= हिंसाके विषयमें मनमें तर्क वितर्क) इन (तीनों)को मैंने एक भागमें किया; और जो नैष्काम्य (= फलकी इच्छासे रहित कर्म करना)-वितर्क, अव्यापाद-वितर्क, अवि-हिंसा वितर्क इन (तीनों)को एक भागमें किया।

"भिक्षुओ ! सो इस प्रकार प्रमाद-रहित, आतापी (= उद्योगी), प्रहितात्मा (= आत्म संयमी) हो विहरते (भी) मुझे काम-वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था—उत्पन्न हुआ यह मुझे काम-वितर्क, और यह आत्म-व्याबाधा (= अपनेको पीड़ित करने)के लिये है, पर-व्याबाधाके लिये है, उभय (= आत्म-पर-) व्याबाधाके लिये है। (यह) प्रज्ञा-निरोधक (= ज्ञानका नाशक), विघात-पक्षिक (= हानिके पक्षका), निर्वाणको नहीं ले जानेवाला है आत्म-व्याबाधाके लिये है—यह सोचते भिक्षुओ ! (वह) अस्त हो जाता था। पर-व्याबाधाके लिये है ०। उभय-व्याबाधाके लिये है ०। प्रज्ञा-निरोधक, विघात-पक्षिक, न-निर्वाण-संवर्तनिक—यह सोचते भिक्षुओ ! (वह) अस्त हो जाता था। सो मैं भिक्षुओ ! बार बार उत्पन्न होनेवाले काम-वितर्कोंको छोड़ता ही था, हटाता ही था, अलग करता ही था।

"भिक्षुओ ! सो इस प्रकार ०[1] व्यापाद-वितर्क उत्पन्न होता था ०।[1]

"भिक्षुओ ! सो इस प्रकार ०[1] विहिंसा-वितर्क ०[1]।

"भिक्षुओ ! भिक्षु जैसे जैसे ही अधिकतर अनुवितर्क (= वितर्क) करता है, अनुविचार (= विचार) करता है; वैसे ही वैसे चित्तको झुकना होता है। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु काम-वितर्कको अधिकतर अनुवितर्क करता है, अनुविचार करता है; तो वह निष्काम (= कामना-रहित वितर्क)को छोड़ता है, और काम-वितर्कको बढ़ाता है; (और) उसका चित्त काम-वितर्ककी ओर झुकता है। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु व्यापाद-वितर्क ०; तो वह अ-व्यापाद वितर्कको छोड़ता है; ० यदि भिक्षुओ ! भिक्षु विहिंसा (= हिंसा)-वितर्कको ०, तो वह अ-विहिंसा (= अहिंसा) वितर्कको छोड़ता है; ०। जैसे भिक्षुओ ! वर्षाके अन्तिम मासमें शरद्-कालमें (जब चारों ओर

---

[1] ऊपरके पैरा जैसा पाठ।

फसल भरी रहती है (उस समय) ग्वाला (अपनी) गायोंकी रखवाली करता है, वह उन गायोंको वहाँ वहाँसे डंडेसे हाँकता है, मारता है, रोकता है, निवारता है। सो किस हेतु ?—भिक्षुओ ! वह ग्वाला उस (खेतोंमें चरने)के कारण वध, बन्धन, हानि या निन्दा (होने)को देखता है; ऐसे ही भिक्षुओ ! मैंने अकुशल-धर्मों (=बुराइयों)के दुष्परिणाम, अपकार, संक्लेश (= मैल)को; (और) कुशल-धर्मों (= अच्छे कामों)की निष्कामतामें सुपरिणाम (= आनृशंस्य) और परि-शुद्धताका संरक्षण देखता था।

"भिक्षुओ ! सो इस प्रकार प्रमाद-रहित ०[१] विहरते निष्कामता-वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था—'उत्पन्न हुआ यह मुझे निष्कामता-वितर्क; और वह न आत्म-व्याबाधा (= आत्म-पीड़ा)के लिये है, न पर-व्याबाधाके लिये है, न उभय (= आत्म-पर) व्याबाधाके लिये है। यह प्रज्ञा-वर्द्धक है, अ-विघात (=अ-हानि)-पक्षिक, और निर्वाणकी ओर ले जानेवाला है। रातको भी भिक्षुओ ! यदि मैं उसे अनुवितर्क करता, अनुविचार करता, (तो भी) उसके कारण भय नहीं देखता। दिनको भी ०। रात-दिनको भी ०। किन्तु, बहुत देर तक अनुवितर्क, अनुविचार करते मेरी काया क्लान्त (= थकी) हो जाती; कायाके क्लान्त होने पर चित्त अपहत (= शिथिल) हो जाता, चित्तके अपहत होने पर चित्त समाधिसे दूर (हट) जाता था। सो मैं भिक्षुओ ! अपने भीतर (= अध्यात्म) ही चित्तको स्थापित करता था, बैठाता था, एकाग्र करता था, समाहित करता था। सो किस हेतु ?—मेरा चित्त (कहीं) अपहत न हो जाये।

"सो इस प्रकार प्रमाद-रहित ०[१] विहरते अ-व्यापाद-वितर्क उत्पन्न होता था ०[२]। ०[३] अ-विहिंसा-वितर्क उत्पन्न होता था ०[३]।

"भिक्षुओ ! भिक्षु जैसे-जैसे ही अधिकतर अनुवितर्क करता है[४] ०। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु निष्कामता-वितर्कका अधिकतर अनुवितर्क करता है ०[४], तो वह कामवितर्कको छोड़ता है, और निष्कामता-वितर्कको बढ़ाता है; (और) उसका चित्त निष्कामता-वितर्ककी ओर झुकता है। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु अ-व्यापाद-वितर्क ०, तो वह व्यापाद-वितर्कको छोड़ता है, और अ-व्यापाद-वितर्कको बढ़ाता है; और उसका चित्त अ-व्यापाद-वितर्ककी ओर झुकता है। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु अ-विहिंसा-वितर्क ०, तो वह विहिंसा-वितर्कको छोड़ता है, और अ-विहिंसा-वितर्कको बढ़ाता है; और उसका चित्त अ-विहिंसा-वितर्ककी ओर झुकता है। जैसे भिक्षुओ ! ग्रीष्मके अन्तिम मासमें, जब सभी फसल (=सस्य) जमाकर गाँवमें चली जाती हैं, ग्वाला गायोंको रखता है; वृक्षके नीचे या चौड़ेमें रह कर उन्हें केवल याद रखना होता है—'यह गायें हैं'; ऐसे ही भिक्षुओ ! याद रखना (मात्र) होता था—'यह धर्म है'। भिक्षुओ ! मैंने न दबनेवाला वीर्य (=उद्योग) आरम्भ कर रक्खा था, न भूलनेवाली स्मृति (मेरे) सम्मुख थी, शरीर (मेरा) अचंचल, शान्त था, चित्त समाहित = एकाग्र था।

"सो मैं भिक्षुओ ! कामोंसे विरहित ०[१] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। ०[१] द्वितीय ध्यानको ०[१]। तृतीय-ध्यानको। ०[१] ०[१] चतुर्थ-ध्यानको ०[१]। ०[१] (= पूर्व-निवासाऽनु-स्मृति)[१]। ०[१] प्राणियोंके च्युति-उत्पादके ज्ञानके लिये ०[१]। ०[१] आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये ०[१]।

---

[१] देखो पृष्ठ ७४। [२] ऊपरके पैरा जैसा। [३] ऊपरके पैरा जैसा। [४] देखो पृष्ठ ७४।

[५] देखो पृष्ठ १५।

"जैसे भिक्षुओ ! (किसी) महावनमें गहरा महान् जलाशय (= पल्वल) हो, (और) उसका आश्रय ले महान् मृगोंका समूह विहार करता हो। कोई पुरुष उस (मृग-समूह)का अनर्थ-आकांक्षी अ-हित-आकांक्षी = अ-योग-क्षेम-आकांक्षी उत्पन्न होवे। वह उस (मृगसमूह)के क्षेम (= सु-रक्षित), कल्याणकारक, प्रीतिपूर्वक गन्तव्य मार्गको बन्द कर दे, और अकेले चलने लायक (= एक चर) कुमार्गको खोल दे, और एक-चारिका (= जाल) रख दे। इस प्रकार वह महान् मृगसमूह दूसरे समयमें विपत्तिमें तथा क्षीणताको प्राप्त होवे। और भिक्षुओ ! उस महान् मृगसमूहका कोई पुरुष हिताकांक्षी = योग-क्षेमकांक्षी उत्पन्न होवे। वह उस (मृग-समूह)के क्षेम ० मार्गको खोल दे, एक-चर कुमार्गको बन्द कर दे और एक चारिका (= जाल)का नाश कर दे। इस प्रकार वह महान् मृगसमूह दूसरे समय वृद्धि = विरूढि (और) विपुलताको प्राप्त होवे।

"भिक्षुओ ! अर्थके समझाने (= विज्ञापन)के लिये मैंने उपमा (= दृष्टान्त) कही। यहाँ यह अर्थ है। भिक्षुओ ! 'गहरा महान् जलाशय' यह कामों (= कामनाओं, भोगों)का नाम है। 'महान् मृगसमूह' यह प्राणियोंका नाम है। अनर्थाकांक्षी अहिताकांक्षी अयोग-क्षेमाकांक्षी पुरुष यह मार = बुराइयाँ (= पाप्मा)का नाम है। कुमार्ग यह आठ प्रकारके मिथ्या मार्ग हैं; जैसे—(१) मिथ्या दृष्टि (= झूठी धारणा), (२) मिथ्या-संकल्प, (३) मिथ्या-वचन, (४) मिथ्या कर्मान्त (= ० कायिककर्म), (५) मिथ्या-आजीव (= ० जीविका), (६) मिथ्या व्यायाम (= ० कोशिश), (७) मिथ्या स्मृति, (८) मिथ्या समाधि। 'एकचर', भिक्षुओ ! यह नन्दी = रागका नाम है। 'एक चारिका' भिक्षुओ ! यह अविद्याका नाम है। भिक्षुओ ! अर्थाकांक्षी, हिताकांक्षी, योग-क्षेमाकांक्षी पुरुष—यह तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्धका नाम है। क्षेम = स्वस्तिक ०, प्रीति-गम-नीय मार्ग, यह आर्य-अष्टांगिक-मार्गका नाम है, जैसे कि—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यग् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि। इस प्रकार भिक्षुओ ! मैंने क्षेम = स्वस्तिक, प्रीति-गमनीय मार्गको खोल दिया; दोनों ओरसे एक-चर कुमार्गको बन्द कर दिया, एक-चारिका (= अविद्या)को नाश कर दिया। भिक्षुओ ! श्रावकोंके हितैषी, अनुकम्पक, शास्ताको अनुकम्पा करके जो करना था, वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह सूने घर हैं, ध्यानरत होओ। भिक्षुओ मत प्रमाद करो, मत पीछे अफसोस करनेवाले बनना—यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है[1]।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया।

...विचार करता है; तो वह
...होता है; (और) उसका
...र्क ०, तो वह अ...
...-वितर्कको ०
...र्के अन्तिम

[1] देखो पृष्ठ २९।

२०—वितक्क-सण्ठान-सुत्तन्त (१।२।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें, अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित (= आमंत्रित) किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! चित्त (के अनुशीलन) में लग्न भिक्षुको पाँच निमित्तों (= आकारों)का समय-समय पर मनमें (चिन्तन) करना चाहिये। कौनसे पाँच ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षुको जिस निमित्तको लेकर, निमित्तको मनमें करके राग-द्वेष-मोह वाले पापक-अकुशल (= बुरे) वितर्क (= ख्याल) उत्पन्न होते हैं; भिक्षु······उस निमित्तको (छोड़) दूसरे कुशल-सम्बन्धी निमित्तको मनमें करे। उसके उस निमित्तको (छोड़) दूसरे कुशल-सम्बन्धी निमित्तको मनमें करते छन्द-सम्बन्धी ० अकुशल वितर्क नष्ट होते हैं, अस्त होते हैं; उनके नाशसे अपने भीतर ही चित्त ठहरता है, स्थिर होता है, एकाग्र होता है, समाहित होता है। जैसे भिक्षुओ ! चतुर पलगण्ड (= राज) या पलगण्डका अन्तेवासी (= शागिर्द) सूक्ष्म आणी (= चूल ?) से मोटी आणीको निकाल ले (= अभिनीहरण करे) = अभिनिवर्जन करे; ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु जिस निमित्तको लेकर ० समाहित होता है।

"भिक्षुओ ! उन भिक्षुको उस निमित्तको (छोड़) दूसरे कुशल-सम्बन्धी निमित्तको मन में करने पर भी यदि छन्द-सम्बन्धी ० अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही हैं; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको उन वितर्कोंके आदिनव (= कारण, दुष्परिणाम)की जाँच करनी चाहिये—यह मेरे वितर्क अकुशल हैं, यह मेरे वितर्क सावद्य (= दोष-युक्त) हैं, यह मेरे वितर्क दुःख-विपाक (= दुःखद) हैं। उन वितर्कोंके आदिनवकी परीक्षा करनेपर उसके राग ० बुरे ख्याल नष्ट होते हैं, अस्त होते हैं; उनके नाशसे चित्त अपने ही भीतर ठहरता है ०[1]। जैसे, कि भिक्षुओ ! मंडन (= विभूषण) पसन्द करनेवाला अल्पवयस्क तरुण पुरुष या स्त्री मरे साँप, या मरे कुत्ता, या आदमीके मुर्देके कंठमें लग जानेसे घृणा = जुगुप्सा करे; ऐसे ही भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उस निमित्तको छोड़ ० ।

"भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके आदिनवको जाँचते हुये भी छन्द-सम्बन्धी ० अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही हैं; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको उन वितर्कोंको यादमें लाना नहीं चाहिये, मनमें न करना चाहिये। उन वितर्कोंको यादमें न लानेसे मनमें न करनेसे, उसके रागवाले ०[2] बुरे वितर्क (= ख्याल) नाश होते हैं, उनके नाशसे चित्त अपने ही भीतर ठहरता है ०[2]। जैसे

---

[1] देखो पिछला पैरा। [2] देखो पूर्व पैरा।

कि भिक्षुओ ! नजरके सामने आने वाले रूपोंके देखनेका अनिच्छुक आँख-वाला आदमी (आँखोंको) मूँद ले, या दूसरी ओर देखने लगे; ऐसे ही भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंको जाँचते हुये भी ०।

"भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उन वितर्कों (= ख्यालों)के मनमें न लाने, मनमें न करनेसे भी रागवाले ० बुरे ख्याल (= वितर्क) उत्पन्न होते ही हैं, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको उन वितर्कों (= ख्यालों)के संस्कारका संस्थान (= आकार) मनमें करना चाहिये। उन वितर्कोंके वितर्क-संस्कार-संस्थान (मात्र)को मनमें लानेसे उसके रागवाले ०[1] बुरे ख्याल नाश होते हैं ०[1]। जैसे कि भिक्षुओ ! पुरुष शीघ्र जाता हो, उसको ऐसा हो—क्यों मैं शीघ्र जाता हूँ, क्यों न धीरे से चलूँ, फिर वह धीरे धीरे जाये। उसको ऐसा हो—क्यों मैं धीरे धीरे चलता हूँ, क्यों न मैं बैठ जाऊँ, फिर वह बैठ जाये। उसको ऐसा हो—क्यों मैं बैठा हूँ, क्यों न मैं लेट जाऊँ, फिर वह लेट जाये। ऐसे ही भिक्षुओ ! वह पुरुष मोटे ईर्यापथ (= शारीरिक गति)से हटकर सूक्ष्म ईर्यापथको स्वीकार करे; ऐसे ही भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके मनमें न लाने ०[2]।

"भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके वितर्क-संस्कार-संस्थानको मनमें करनेसे भी ०[2]; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको दाँतोंको दाँतों पर रख कर, जिह्वाको तालूसे चिपटा कर, चित्तसे चित्तका निग्रह करना चाहिये, सन्तापन करना, निष्पीडन करना चाहिये, उसके ० निष्पीडन करनेसे, उसके रागवाले ०[3] बुरे ख्याल नाश होते हैं ०[3]। जैसे भिक्षुओ ! बलवान् पुरुष दुर्बल पुरुषको शिरसे, या कन्धेसे, पकड़ कर, निग्रहीत करे, निष्पीडित करे, सन्तापित करे; ऐसे ही भिक्षुओ ! वह भिक्षु उन वितर्कोंके वितर्क-संस्कार-संस्थानके मनमें करनेसे भी ०[3]।

"चूँकि भिक्षुओ ! भिक्षुको जिस निमित्तको लेकर, जिस निमित्तको मनमें करके, राग-द्वेष-मोह वाले बुरे ख्याल पैदा होते हैं; उस निमित्तको छोड़ ०[3] दूसरे ० निमित्तको मनमें करनेसे ० चित्त ० समाहित होता है। उन वितर्कोंके आदिनव (= दुष्परिणाम)की जाँच करनेसे राग ० वाले बुरे ख्याल नष्ट होते हैं ०[3] चित्त ० समाहित होता है। उन वितर्कोंके याद्में न लानेसे मनमें न करनेसे ०[3] चित्त समाहित होता है, उन वितर्कोंके वितर्क-संस्कार-संस्थानको मनमें करने-से ०[3] चित्त समाहित होता है। दाँतोंको दाँतों पर रख कर ०[3] निष्पीडन करनेसे ०[3] चित्त समाहित होता है। भिक्षुओ ! ऐसा भिक्षु वितर्क (= ख्याल)के नाना मार्गोंको वशमें करनेवाला कहा जाता है। वह जिस वितर्कको चाहेगा, उसका वितर्क करेगा, जिस···को नहीं चाहेगा··· नहीं वितर्क करेगा। (उसने) तृष्णा (रूपी) बंधनको हटा दिया; अच्छी प्रकार जान कर साक्षात् कर, दुःख का अन्त कर दिया।"

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

(२-इति सीहनाद वग्ग १।२)।

---

[1] देखो पूर्व पैरा। [2] देखो पिछला पैरा। [3] देखो पृष्ठ ७७।
[3] देखो पृष्ठ ७७।

२१—ककचूपम-सुत्तन्त (१।३।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् मोलिय फग्गुण भिक्षुणियोंके साथ अत्यधिक संसर्ग रखते थे। इतना संसर्ग रखते थे,...कि यदि...(उनके) सामने कोई भिक्षुणियोंकी शिकायत करता, तो उससे आयुष्मान् मोलिय फग्गुण कुपित = असन्तुष्ट हो अधिकरण (= संघके सामने अभियोग) भी करते। यदि कोई उन भिक्षुणियोंके सामने आयुष्मान् मोलिय फग्गुणकी शिकायत करता, तो वह (भी) कुपित असन्तुष्ट हो अधिकरण करतीं।...।

तब कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ...जाकर, भगवान्‌को अभिवादन कर,...एक ओर बैठ...भगवान्‌से बोला—

"भन्ते! आयुष्मान् मोलिय फग्गुण भिक्षुणियोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रखते हैं ०।"

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको संबोधित किया—

"आओ भिक्षु! तुम मेरे वचनसे मोलिय फग्गुण भिक्षुको कहो—'आवुस फग्गुण! (= फाल्गुण)! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं'।"

"अच्छा, भन्ते!" (कह) भगवान्‌को उत्तर दे, वह भिक्षु...आयुष्मान् मोलिय फग्गुणके पास जाकर यह बोला—

"आवुस फग्गुण! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस!" कह...आयुष्मान् मोलिय फग्गुण...भगवान्‌के पास जाकर,...एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान् ० फग्गुणको भगवान्‌ने यह कहा—"फग्गुण! सचमुच ही तू भिक्षुणियोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रखता है, ० कुपित असन्तुष्ट हो अधिकरण करती हैं?"

"हाँ, भन्ते!"

"क्यों फग्गुण! तू कुलपुत्र (हो) श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर बन प्रव्रजित हुआ है?"

"हाँ, भन्ते!"

"फग्गुण! यह तेरे समान श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित कुलपुत्रके लिए योग्य नहीं, कि तू भिक्षुणियोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रक्खे। इसलिए फग्गुण! चाहे तेरे सामने भी कोई भिक्षुणियोंकी शिकायत करे, तो फग्गुण! जो तेरे भीतर घर किये राग हैं, जो घर किये वितर्क (= ख्याल) हैं, उनको छोड़ देना। यहाँ फग्गुण! तुझे इस प्रकार सीखना चाहिये—'मेरे चित्तमें विकार नहीं आने पायेगा, दुर्वचन मैं मुँहसे नहीं निकालूँगा, द्वेषरहित हो मैत्रीभावसे हित और अनुकम्पक हो विहरूँगा'। इस प्रकार फग्गुण! तुझे सीखना चाहिये। इसलिये फग्गुण! चाहे तेरे

सामने कोई उन भिक्षुणियोंको हाथसे पीटे भी, ढेलेसे···, दण्डसे···, शस्त्रसे प्रहार भी करे, तो भी फग्गुण ! जो तेरे भीतर घर किये राग हैं ० अनुकम्पक हो विहरूँगा। इस प्रकार फग्गुण ! ०। इसलिये फग्गुण ! चाहे तेरे सामने ० शिकायत करे; ०। चाहे तेरे सामने ० प्रहार भी करे ०। ० सीखना चाहिये।"

तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! एक बार भिक्षुओंने मेरे चित्तको प्रसन्न (= आराधित) किया था। एक बार भिक्षुओ ! मैंने भिक्षुओंको संबोधित किया···'भिक्षुओ ! मैं एकासन (एक-) भोजन सेवन करता हूँ।···एकासन-भोजनका सेवन करते मैं स्वास्थ्य, निरोग, स्फूर्ति, बल और प्रासुविहार (= सुखपूर्वक रहना) (अपनेमें) पाता हूँ। आओ। भिक्षुओ ! तुम भी एकासन भोजन सेवन···कर स्वास्थ्य ० को प्राप्त करो'। भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको मुझे अनुशासन (= उपदेश) करनेकी आवश्यकता नहीं थी।···उन भिक्षुओंको याद दिला देना भर ही मेरा काम था। जैसे भिक्षुओ ! उद्यान (= सुभूमि)में चौरस्तेपर कोड़ा सहित, घोड़े जुता आजानेय (= उत्तम घोड़ों)का रथ खड़ा हो, उसे एक चतुर रथाचार्य, अश्वको दमन करनेवाला सारथी चढ़कर, बायें हाथ से जोत (= रश्मि)को पकड़ कर, दाहिने हाथमें कोड़ेको ले, जैसे चाहे, जिधर चाहे लेजाये लौटावे; ऐसे ही भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको मुझे अनुशासन करनेकी आवश्यकता न थी ० मेरा काम था।

"इसलिये भिक्षुओ ! तुम भी अकुशल (= बुराई)को छोड़ो। कुशल धर्मों (= नेकियों)में लगो। इस प्रकार तुम भी इस धर्म···में वृद्धि = विरूढ़ि, विपुलताको प्राप्त होगे। जैसे भिक्षुओ ! गाँव या निगम (= कस्बे)के पास (= अ-विदूर) फलोंसे (= सघनता)से आच्छादित महान् शाल (= साखू)-वन हो, उसका कोई अर्थकारी = हितकारी = योगक्षेमकारी पुरुष उत्पन्न हो; वह उस शालके रस (= ओज)को अपहरण करनेवाली टेढ़ी यष्टियोंको काटकर बाहर ले जाये, वनके भीतरी भागको अच्छी तरह साफ करदे; और जो शाल-यष्टियाँ सीधी सुन्दर तौरसे निकली हैं उन्हें अच्छी तरह रक्खे। इस प्रकार भिक्षुओ ! वह शाल वन दूसरे समय पीछे वृद्धि = विरूढ़ि = विपुलताको प्राप्त होवे। ऐसे ही भिक्षुओ ! तुमभी बुराईको छोड़ो ० विपुलताको प्राप्त होगे।

"भिक्षुओ ! भूतकालमें इसी श्रावस्तीमें वैदेहिका नामक गृह-पत्नी (= गृहस्थ स्त्री, वैश्य स्त्री) थी। वैदेहिका गृहपत्नीकी ऐसी मंगल कीर्ति फैली हुई थी—वैदेहिका गृहपत्नी सौरत (= सुरत) है; निवाता (= निष्कलह) है, उपशान्त है। वैदेहिका गृहपत्नीके पास काली नामक दक्ष, आलस्यरहित, अच्छे प्रकार काम करनेवाली दासी थी। तब भिक्षुओ ! काली दासीको (मनमें) यह हुआ—'मेरी आर्या (= अय्या = स्वामिनी)की ऐसी मंगलकीर्ति फैली हुई है— ०। क्या मेरी आर्या भीतरमें कोपके विद्यमान रहते उसे प्रकट नहीं करती, या अविद्यमान रहते चूँकि मेरे काम अच्छी तरह किये होते हैं, इसलिये मेरी अय्या भीतरमें क्रोध होते हुये भी प्रकट नहीं करती, नहीं है (यह बात) नहीं। क्यों न मैं अय्याकी परीक्षा करूँ।' तब भिक्षुओ ! काली दासी दिन (चढ़ने पर) उठी। तब भिक्षुओ ! वैदेहिका गृहपत्नीने काली दासीसे यह कहा— 'अरे हे काली !'

'क्या है अय्या !'

'क्यों रे दिन चढ़ने पर उठी है ?'

'कुछ नहीं अय्या !'

'कुछ नहीं रे ! (यह) हमारी दुष्टा दासी दिन (चढ़ने पर) उठती है'—(कह) कुपित

असन्तुष्ट हो भौंवें टेढ़ी करली।

"तब भिक्षुओ! काली दासीको यह हुआ—'मेरी अय्या भीतरमें क्रोधके विद्यमान रहते उसे प्रकट नहीं करती, अविद्यमान रहते नहीं; ० नहीं है (यह बात) नहीं। क्यों न मैं फिर अय्या को अच्छी तरह परखूँ।' तब भिक्षुओ! काली दासी और दिन (चढ़ाकर) उठी। तब वैदेहिका गृहपत्नीने काली दासीसे यह कहा—

'अरे हे काली!'

'क्या है अय्या!'

'क्यों रे! और दिन (चढ़ाकर) उठी है?'

'कुछ नहीं अय्या!'

'कुछ नहीं रे! (यह) हमारी दुष्टा दासी और दिन (चढ़ाकर) उठती है'—(कह) कुपित असन्तुष्ट हो भौंवें टेढ़ी कर कटुवचन कहा। तब भिक्षुओ! काली दासीको यह हुआ—'मेरी अय्या भीतरमें क्रोधके विद्यमान रहते ० नहीं है (यह बात) नहीं। क्यों न मैं फिर अय्याको अच्छी तरह परखूँ।' तब भिक्षुओ! काली दासी और दिन (चढ़ाकर) उठी। फिर भिक्षुओ! वैदेहिका गृहपत्नीने काली दासीसे यह कहा—

'अरे हे काली!'

'क्या है अय्या!'

'क्यों रे! और भी दिन चढ़ाकर उठी है?'

'कुछ नहीं अय्या!'

'कुछ नहीं रे! (यह) हमारी दुष्टा दासी और भी दिन चढ़ाकर उठती है।'—(कह) कुपित असन्तुष्ट हो, किवाड़की विलाई (= सूची) उठाकर उसे मारा। सिर फूट गया। तब भिक्षुओ! काली दासीने फूटे सिरसे लोहू बहाते पड़ोसियोंको चिल्ला कर कहा—'देखो अय्या! सौरताके कामको! देखो अय्या! निवाताके कामको!! देखो अय्या! उपशान्ताके कामको!!! कैसे (कोई) अकेली दासीको 'तू दिन (चढ़े) उठी'—(कह) कुपित असन्तुष्ट हो किवाड़की विलाई (= सूची) उठाकर मारेगी, और सिरको फोड़ डालेगी!!!' तब भिक्षुओ! वैदेहिका गृहपत्नीके इस प्रकारके अपकीर्तिके शब्द फैले—'धिक्कार है, वैदेहिका गृहपत्नीको! अ-सौरता है वैदेहिका गृहपत्नी, अ-निवाता है ०, अन्-उपशान्ता है वैदेहिका गृहपत्नी।'

"इसी प्रकार भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु तभीतक सोरत रहता है, निवात (= निष्कलह) उपशान्त, होता है, जब तक अप्रिय शब्द-पथमें वह नहीं पड़ता; जब (उस) भिक्षुपर अ-प्रिय शब्द-पथ पड़ता है, तबभी (रहे) तो (उसे) सोरत जानना चाहिये, निवात ०, उपशान्त जानना चाहिये। भिक्षुओ! मैं उस भिक्षुको सुवच नहीं कहता, जो कि चीवर, भिक्षान्न, शयन-आसन, रोगीके पथ्य-औषध सामग्रीके कारण सुवच होता है, मृदु-भाषिताको प्राप्त होता है। सो किस हेतु?—भिक्षुओ! (वह) भिक्षु, चीवर, पिंडपात (= भिक्षान्न) शयन-आसन, रोगीके पथ्य-औषधि सामग्रीके न मिलनेपर सुवच नहीं होता है, न मृदुभाषिताको प्राप्त होता है। सो किस हेतु?—भिक्षुओ! (वह) भिक्षु, चीवर, पिंडपात (= भिक्षान्न), शयन-आसन, रोगीके पथ्य-औषध-सामग्रीके न मिलने पर सुवच नहीं रहेगा, न मृदुभाषिताको रक्खेगा। भिक्षुओ! जो भिक्षु केवल धर्मका सत्कार करते, ० गुरुकार करते, ० पूजा करते, सुवच होता है, मृदुभाषिताको प्राप्त होता है, उसे मैं सुवच कहता हूँ। इसलिये भिक्षुओ! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये—

'केवल धर्मका सत्कार करते ० पूजा करते सुवच होऊँगा, मृदुभाषिता (सौवचस्यता)को प्राप्त होऊँगा। भिक्षुओ ! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह पाँच वचन-पथ (= बात कहनेके मार्ग) हैं, जिनसे कि दूसरे तुमसे बात करते बोलते हैं—(१) कालसे या अकालसे; (२) भूत (= यथार्थ)से या अ-भूतसे; (३) स्नेहसे या परुषता (कटुता)से; (४) सार्थकतासे या निरर्थकतासे; (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे या द्वेषपूर्ण चित्तसे। भिक्षुओ ! चाहे दूसरे कालसे बात करें, या अकालसे; ० भूतसे ०; ० स्नेहसे ०; सार्थकतासे ०; ० मैत्रीपूर्णचित्तसे बात करें, या द्वेषपूर्णचित्तसे; वहाँ भिक्षुओ ! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये—मैं अपने चित्तको विकार-युक्त न होने दूँगा, और न दुर्वचन (मुँहसे) निकालूँगा, मैत्री भावसे हितानुकम्पी होकर विहरूँगा, न कि द्वेषपूर्ण चित्तसे। उस (विरोधी) व्यक्तिको भी मैत्री-पूर्ण चित्तसे आप्लावित कर विहरूँगा। उसको लक्ष्य (= आरम्मण) करके सारे लोकको विपुल, विशाल, = अप्रमाण मैत्रीपूर्ण चित्तसे आप्लावितकर, अ-वैरता = अ-व्यापादिता (= द्रोह-रहितता)से परिप्लावित कर विहरूँगा।—इस प्रकार भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये।

"जैसे भिक्षुओ ! (कोई) पुरुष (हाथमें) कुदाल लेकर आये, और वह ऐसा कहा—मैं इस महा-पृथिवीको अ-पृथिवी करूँगा। वह वहाँ वहाँ खोदे, वहाँ वहाँ (मिट्टिको) फेंके, वहाँ वहाँ रखे, वहाँ वहाँ छोड़े—'(अब) तू अ-पृथिवी हुई, (अब) तू अ-पृथिवी हुई'। तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! क्या वह पुरुष इस महापृथिवीको अ-पृथिवी कर सकेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! यह महापृथिवी गम्भीर है, अ-प्रमेय है, यह अ-पृथिवी (= पृथिवीका अभाव) नहीं की जा सकती, वह पुरुष (नाहकमें) हैरानी और परेशानीका भागी होगा।"

"ऐसे ही भिक्षुओ ! यह पाँच वचन-पथ जिनके द्वारा दूसरे तुम्हें बोलेंगे—(१) कालसे या अकालसे ० उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको पृथिवीके समान, विपुल, विशाल ०[१] अवैरतासे, परिप्लावित कर विहरूँगा।—इस प्रकार भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये।

"जैसे भिक्षुओ ! (कोई) पुरुष लाख या हल्दी या नील, या मजीठ लेकर आये, (और) वह कहे—'मैं इस आकाशमें रूप (= चित्र) लिखूँगा, रूप प्रकट करूँगा'। तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! क्या वह पुरुष इस आकाशमें रूप लिख सकेगा ? रूप प्रकट कर सकेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! यह आकाश अ-रूपी = अ-दर्शन (= अ-निदर्शन) है, वहाँ रूप लिखना ··· रूपका प्रादुर्भाव करना सुकर नहीं। वह पुरुष (नाहकमें) हैरानी और परेशानीका भागी होगा।"

"ऐसे ही भिक्षुओ, यह पाँच वचन-पथ जिनके द्वारा दूसरे तुम्हें बोलेंगे—(१) कालसे ०[१], उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको आकाश-समान विपुल विशाल ०[१] विहरूँगा।

—इस प्रकार भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये।

"जैसे भिक्षुओ ! (कोई) पुरुष जलती तृणकी उल्का (= लुकारी)को लेकर आये, (और) वह कहे—'मैं इस तृण-उल्कासे गंगानदीको संतप्त करूँगा, परितप्त करूँगा'। तो क्या

---

[१] देखो ऊपर।

मानते हो भिक्षुओ ! क्या यह पुरुष उस जलती तृण-उल्कासे गंगानदीको सन्तप्त कर सकेगा, परितप्त कर सकेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! गंगानदी गम्भीर है, अप्रमेय है; वह जलती तृण-उल्कासे नहीं सन्तप्त की जा सकती, परितप्त नहीं की जा सकती। वह पुरुष (नाहकमें) ०।

"ऐसे ही भिक्षुओ ! यह पाँच वचन-पथ, जिनके द्वारा दूसरे तुमसे बोलेंगे—(१) कालमें ०[1] उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको गंगा-समान विपुल विशाल ०[1] विहरूँगा।

"जैसे भिक्षुओ ! (एक) मर्दित, सुमर्दित, सु-परिमर्दित, मृदु, तूलवाली, खर्खराहट-रहित, भरभराहट-रहित बिलीके (चमड़ेकी) खाल (= भस्त्रा) हो। तब कोई पुरुष काठ या कठला (= ठीकरा) लेकर आये और बोले—मैं इस ० बिलीकी खालको (इस) काठ या कठलासे खुर्खुरी बनाऊँगा, भर्भरी बनाऊँगा। तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! ०।

"नहीं भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! यह बिलीकी खाल मर्दित ०[2] है, काठ या कठलासे खुर्खुरी, भर्भरी नहीं बनाई जा सकती। वह पुरुष (नाहकमें) ०[2]।"

"ऐसे ही भिक्षुओ ! यह वचनपथ ०[3]—कालमें ०[3] उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको बिलीकी खालके समान ०[3] विहरूँगा'।

"भिक्षुओ ! चोर लुटेरे चाहे दोनों ओर मुठिया लगे आरेसे भी अंग अंगको चीरें, तो भी यदि वह मनको द्वेषयुक्त (= दूषित) करे, तो वह मेरा शासनकर (= उपदेशानुसार चलनेवाला) नहीं है। वहाँ पर भी भिक्षुओ ! ऐसा सीखना चाहिये—'मैं अपने चित्तको ०[3] अव्यापादितासे प्लावित कर विहरूंगा। ऐसा भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये।

"भिक्षुओ ! तुम इस ककचूपम (= क्रकचोपम = आरेके दृष्टान्तवाले) उपदेशको बार बार मनमें करो। देखते हो भिक्षुओ ! उस वचनपथको अणु या स्थूल, जिसे तुम नहीं पसन्द करते ?

"नहीं भन्ते !"

"इसलिये भिक्षुओ ! इस क्रकचोपम उपदेशको निरन्तर मनमें करो, वह तुम्हें चिरकाल तक हित, सुखके लिये होगा।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो पृष्ठ ८२। [2] देखो ऊपर। [3] देखो पृष्ठ ८२।

२२—अलगद्दूपम-सुत्तन्त (१।३।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय गन्धबाधि-पुब्ब (= भूतपूर्व गन्धबाधि = गिद्ध मारनेवाले) अरिट्ठ (= अरिष्ट) भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि (= धारणा) उत्पन्न हुई थी—'मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो (निर्वाण आदि के) अन्तरायिक (= विघ्नकारक) धर्म (= कार्य) भगवान्‌ने कहे हैं, सेवन करने पर भी वह अन्तराय (= विघ्न) नहीं कर सकते।' बहुतसे भिक्षुओंने सुना कि, अरिष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—० अन्तराय नहीं कर सकते'। तब वह भिक्षु जहाँ ० अरिष्ट भिक्षु था, वहाँ गये, जाकर ० अरिष्ट भिक्षुसे यह बोले—

"आवुस अरिष्ट! सचमुच ही, तुम्हें इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'० अन्तराय नहीं कर सकते'?"

"आवुसो! मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ ० अन्तराय नहीं कर सकते।"

तब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टि (= धारणा)से हटानेके लिये कहते, समझाते बुझाते थे—'आवुस अरिष्ट! मत ऐसा कहो, मत आवुस अरिष्ट ऐसा कहो। मत भगवान् पर झूठ लगाओ (= अभ्याख्यान करो), भगवान् पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्‌ने आवुस अरिष्ट! अन्तरायिक (= विघ्नकारक) धर्मोंको अन्तरायिक कहा है। सेवन करनेपर वह अन्तराय करते हैं—कहा है। भगवान्‌ने कामों (= भोगों)को बहुत दुःखदायक, बहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमें बहुत दुष्परिणाम (बतलाये हैं)। भगवान्‌ने कामोंको अस्थि-कंकाल-समान[1] कहा, मांस-पेशी-समान ०, तृण-उल्का-समान ०, अंगारक (= अग्निचूर्ण)के समान ०, स्वप्न-समान ०, याचितकोपम (= मंगनीके आभूषणके समान) ०, वृक्ष-फल-समान[1] ०, असिसूनूपम शक्ति-शूल-समान ०, सर्प-शिर-समान ०, भगवान्‌ने कामोंको बहुत दुःखदायक ० बहुत दुष्परिणामी बतलाये हैं।"

उन भिक्षुओं द्वारा ० अरिष्ट भिक्षु ऐसा कहे जाने, समझाये बुझाये जाने पर भी उसी बुरी दृष्टिको दृढ़तासे पकड़ अभिनिवेश (= आग्रह) करके (उसे) व्यवहार करता था—"मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ ०[2], अन्तराय नहीं कर सकते।"

जब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नहीं हटा सके, तब वह भगवान्‌के पास··· जाकर अभिवादन कर, एक ओर···बैठ···यह बोले—

---

[1] इन उपमाओंके लिये पोतलिय-सुत्त (मज्झिम नि० ५४) देखो। [2] देखो ऊपर।

"भन्ते! ० अरिष्ट भिक्षुको इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'मैं भगवान्के ०' भन्ते! हमने सुना, कि ० अरिष्ट भिक्षुको ० इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है— '०'। तब हमने भन्ते!...अरिष्ट भिक्षुके पास...जाकर...यह पूछा—'आवुस अरिष्ट! सचमुच ०[1] ? ऐसा कहने पर ० अरिष्ट भिक्षुने हमें यह कहा—'आवुसो! मैं भगवान् ०[1] नहीं कर सकते'। तब भन्ते! हम ० अरिष्ट भिक्षुको ० समझाते बुझाते थे—०। हमारे द्वारा ०[1] ऐसा ० समझाये जाने पर भी ०[1]— 'मैं भगवान्के ०'। जब हम भन्ते! ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नहीं हटा सके, तब हम इसे भगवान्को कह रहे हैं।"

तब भगवान्ने एक भिक्षुको संबोधित किया—"आ भिक्षु! तू मेरे वचनसे ० अरिष्ट भिक्षुको कह—आवुस अरिष्ट! तुझे शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा, भन्ते!"—कह उस भिक्षुने ० अरिष्ट भिक्षुके पास...जाकर...यह कहा—

"आवुस अरिष्ट! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं।"

"अच्छा, आवुस!"—(कह) उस भिक्षुको उत्तर दे ० अरिष्ट भिक्षु...भगवान्के पास... जाकर...अभिवादन कर...एक ओर बैठा। एक ओर बैठे ० अरिष्ट भिक्षुको भगवान्ने यह कहा—

"सचमुच अरिष्ट! तुझे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—मैं भगवान्के ०[1] अन्तराय नहीं कर सकते हैं ?"

"हाँ, भन्ते! मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो अन्तरायिक धर्म भगवान्ने कहे हैं, सेवन करने पर भी वह अन्तराय नहीं कर सकते।"

"मोघपुरुष (= निकम्मा आदमी)! किसको मैंने ऐसा धर्म उपदेश किया, जिसे तू ऐसा जानता है—मैं भगवान् ०। क्यों मोघपुरुष! मैंने तो अनेक प्रकारसे अन्तरायिक धर्मोंको अन्तरायिक कहा है ०[2] बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं। और तू मोघपुरुष (= मोघिया) अपनी उल्टी धारणासे हमें झूठ लगा रहा है, और अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अ-पुण्य कमा रहा है। मोघपुरुष! यह चिरकाल तक तेरे लिये अ-हित और दुःखके लिये होगा।"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ! क्या यह ० अरिष्ट भिक्षु उस्मीकत (= छू तक गया) भी इस धर्ममें नहीं है ?"

"कैसे होगा भन्ते! नहीं भन्ते!"

ऐसा कहने पर ० अरिष्ट भिक्षु चुप हो, मूक हो, कन्धा गिरा कर, अधोमुख चिन्ता करते प्रतिभा-शून्य हो बैठा रहा। तब भगवान् ० अरिष्ट भिक्षुको चुप ० प्रतिभाशून्य जान कर ० अरिष्ट भिक्षुसे बोले—

"तू मोघपुरुष! अपनी इस बुरी दृष्टिको जानेगा, जब मैं भिक्षुओंको पूछूँगा।"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! क्या तुम भी मेरे ऐसे उपदेश किये धर्मको जानते हो, जैसा कि यह ० अरिष्ट भिक्षु अपनी ही उल्टी धारणासे हमें झूठ लगा रहा है, और अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अपुण्य कमा रहा है ?

---

[1] देखो पृष्ठ ८४।

[2] पृष्ठ ८४ में भगवान्की जगह, मैं रखकर।

"नहीं भन्ते ! भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे अन्तरायिक धर्मोंको अन्तरायिक कहा है ०[1] बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं।"

"तो यह ० अरिष्ट भिक्षु अपनी उल्टी धारणासे हमें झूठ लगा रहा है, और अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अ-पुण्य (= पाप) कमा रहा है। यह इस मोघपुरुषके लिये चिरकाल तक अ-हित और दुःखके लिये होगा। और यह भिक्षुओ! कामोंसे भिन्न, काम-संज्ञासे भिन्न, काम वितर्कसे भिन्न (किसी वस्तुका) सेवन करेगा, यह संभव नहीं।

"यहाँ भिक्षुओ! कोई कोई मोघपुरुष—गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुत-धर्म, वैदल्य—(इन नौ प्रकारके) धर्म (= उपदेश)को धारण करते[2] हैं। वह उन धर्मोंको धारण करते भी उनके... अर्थको प्रज्ञासे परखते नहीं हैं। अर्थको प्रज्ञासे परखे बिना धर्मों का आशय नहीं समझते। वह या तो उपारम्भ (= सहायता)के लाभके लिये धर्मको धारण करते हैं, या वादमें प्रमुख बननेके लाभके लिये धर्मको धारण करते हैं, और उसके अर्थको नहीं अनुभव करते। उनके लिये वह उल्टी तौरसे धारण किये धर्म अहित (और) दुःखके लिये होते हैं। सो किस हेतु?—धर्मोंको उल्टा धारण करनेसे भिक्षुओ! जैसे भिक्षुओ! कोई अलगद्द (= साँप) चाहनेवाला अलगद्द-गवेषी पुरुष अलगद्दकी खोजमें घूमता एक महान् अलगद्दको पाये, और उसे भोग (= देह)से या पूँछ (= नंगुट्ठ) से पकड़े; उसको वह अलगद्द उलट कर हाथमें, बाँहमें या अन्य किसी अंगमें डँस ले। वह उसके कारण मरण या मरण-समान दुःखको प्राप्त होवे। सो किस हेतु?—भिक्षुओ! अलगद्दके दुर्गृहीत (= उल्टी तरहसे पकड़ा) होनेसे। ऐसेही यहाँ भिक्षुओ! कोई कोई मोघपुरुष ०।

"किन्तु भिक्षुओ! कोई कोई कुलपुत्र—सूत्र ०[3] धर्मको धारण करते हैं। वह उन धर्मों को धारण कर उनके अर्थको प्रज्ञासे परखते हैं। प्रज्ञासे परखकर धर्मोंके अर्थको समझते हैं। वह उपारम्भ (= धनलाभ) के लिये० या वादमें प्रमुख बननेके लिये धर्मोंको धारण नहीं करते। वह उनके अर्थको अनुभव करते हैं। उनके लिये यह सुगृहीत (= ठीक तौरसे धारण किये) धर्म चिरकाल तक हित और सुखके लिये होते हैं। जैसे भिक्षुओ! कोई ० अलगद्द-गवेषी पुरुष अलगद्द-की खोजमें घूमता एक महान् अलगद्दको देखे। उसको वह अजपद दंड (= साँप पकड़नेका डंडा जिसके छोर पर बकरीके पैरकी तरह चिरा लकड़ीभुआ हथियार लगा रहता है)से खूब अच्छी तरह पकड़े। अच्छी तरह पकड़कर गर्दनसे ठीक तौरपर पकड़े। फिर भिक्षुओ! चाहे वह अलगद्द उस पुरुषके हाथ, बाँह या किसी और अंगको अपने भोग (= देह)से परिवेष्टित करे, किन्तु वह उसके कारण न मरण न मरण-समान दुःखको प्राप्त होवे। सो किस हेतु?—भिक्षुओ! अल-गद्दके सुगृहीत होनेसे। ऐसे ही भिक्षुओ! कोई कोई कुल-पुत्र ०।

"इसलिये भिक्षुओ! मेरे जिस भाषण का अर्थ तुम समझो हो, उसे वैसे धारण करना, और जिस...का अर्थ तुम नहीं समझो, उसे मुझसे पूछना, या (दूसरे) जानकार भिक्षुसे।

"भिक्षुओ! मैं बेड़े (=कुल्ल)की भाँति निस्तरण(= निस्तार, = पार जाने)के लिये तुम्हें धर्मको उपदेशता हूँ, पकड़ रखनेके लिये नहीं। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

---

[1] देखो पृष्ठ ८४ (भगवान्की जगह, मैं रखकर)।

[2] उस समय और उसके बाद पाँच शताब्दियों तक बुद्धके उपदेश कण्ठस्थही रक्खे जाते थे।

[3] देखो पिछला पैरा।

"अच्छा भन्ते !"—(कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"जैसे भिक्षुओ ! पुरुष अ-स्थान-मार्ग (= बे स्थानके रास्ते)पर जाते एक ऐसे महान् जल-अर्णवको प्राप्त हो, जिसका उरला तीर खतरा और भयसे पूर्ण हो, और परला तीर क्षेमयुक्त और भयरहित हो। वहाँ न पार लेजानेवाली नाव हो, न इधरसे उधर जाने आनेके लिये पुल हो। (तब) उस (के मनमें) हो—'अहो ! यह महान् जल-अर्णव है, इसका उरला तीर ० न इधरसे उधर आने आनेके लिये पुल है। क्यों न मैं तृण-काष्ट-पत्र जमाकर बेड़ा बाँधूँ, और उस बेड़ेके सहारे हाथ और पैरसे मेहनत करते स्वस्तिपूर्वक पार उतर जाऊँ।' तब भिक्षुओ ! वह पुरुष ० बेड़ा बाँधकर, उस बेड़ेके सहारे ० पार उतर जाये। उत्तीर्ण होजाने पर, पार चले जानेपर उसके (मनमें) ऐसा हो—'यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है, इसके सहारे ० मैं पार उतरा हूँ, क्यों न मैं इस बेड़ेको शिरपर रखकर, या कन्धेपर उठाकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जाऊँ।' तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! क्या वह ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़ेमें कर्तव्य पालनेवाला होगा ?"

"नहीं, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! वह पुरुष उस बेड़ेसे दुःख उठानेवाला (=कष्टकारी) होगा। भिक्षुओ ! यदि उत्तीर्ण पारंगत उस पुरुषको ऐसा हो—'यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है, इसके सहारे ० मैं पार उतरा हूं, क्यों न मैं इसे स्थलपर रखकर, या पानीमें डालकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जाऊँ।' भिक्षुओ ! ऐसा करनेवाला वह पुरुष उस बेड़ेमें कर्तव्य पालनेवाला होगा। ऐसेही भिक्षुओ ! मैंने बेड़ेकी भाँति निस्तरणके लिये तुम्हें धर्मोंको उपदेशा है, पकड़ रखनेके लिये नहीं। धर्मको बेड़ेके समान (=कुल्लूपम) उपदेशा जानकर तुम धर्मको भी छोड़ दो, अ-धर्मकी तो बात ही क्या।

"भिक्षुओ ! यह छः दृष्टि (= धारणा)-स्थान हैं कौनसे छः ?—भिक्षुओ ! आर्योंके दर्शनसे वंचित ०[1] अज्ञ अनाड़ी पुरुष (१) रूप (= Matter)[2] को—'यह मेरा है,' 'यह मैं हूं', 'यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार समझता है। (२) वेदनाको ०। (३) संज्ञाको ०। (४) संस्कारको ०। (५) विज्ञानको—'यह मेरा है,' 'यह मैं हूँ,' 'यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार समझता है। (६) जो कुछ भी यह देखा, सुना, यादमें आया, ज्ञात, प्राप्त, पर्येषित (= खोजा), और मनद्वारा अनुविचारित (पदार्थ) है, उसे भी (यह)—'यह मेरा है,' 'यह मैं हूं,' 'यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार समझता है। जो यह (छः) दृष्टि-स्थान हैं, 'सो लोक है, सोई आत्मा हूँ, मैं मरकर सोई नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार (= अविपरिणामधर्मा) आत्मा होऊँगा, और अनन्त वर्षों (= शाश्वती समा) तक वैसे ही स्थित रहूँगा'—इसे भी 'यह मेरा है,' 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार समझता है।

"भिक्षुओ ! आर्योंके दर्शनसे युक्त, आर्यधर्मसे परिचित, आर्यधर्ममें विनीत (= प्राप्त); सत्पुरुषोंके दर्शनसे युक्त, ० परिचित, ० विनीत, श्रुतवान् (= ज्ञानी) आर्य श्रावक—(१) रूप

---

[1] देखो पृष्ठ १।

[2] रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यही पाँच स्कंध जगत्‌की निर्मापक सामग्री है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु यह चार रूप-स्कंध है। जिसमें भारीपन है, और जो जगह घेरता है, वह रूप (=Matter) है। उससे उल्टा विज्ञान (= Mind) स्कंध है। दोनोंके सम्पर्कसे होनेवाली विज्ञानकी तीन अवस्थायें बाकी तीन स्कंध हैं।

को—'यह मेरा नहीं', 'यह मैं नहीं हूँ', 'यह मेरा आत्मा नहीं है,—इस प्रकार समझता है। (२) वेदनाको ०। (३) संज्ञाको ०। (४) संस्कारको ०। (५) विज्ञानको ०। (६) जो कुछ भी यह देखा ०। जो यह (छः) दृष्टि-स्थान हैं ० 'यह मेरा आत्मा नहीं है'—इस प्रकार समझता है। यह इस प्रकार समझते हुये अशनि-त्रास (= भय)को नहीं प्राप्त होता।"

ऐसा कहनेपर किसी भिक्षुने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! क्या बाहर अशनि-परि-त्रास है?"

भगवान्ने कहा—"होता है भिक्षु! यहाँ! भिक्षु! किसीको ऐसा होता है—'अहो! (पहले) यह मेरा था', 'अहो! अब वह मेरा नहीं है', 'अहो! मेरा होवे', 'अहो! उसे मैं नहीं पाता हूँ'—(यह) इस प्रकार शोक करता है, दुःखित होता है, रोता है, छाती पीटकर क्रन्दन करता है, मूर्छित होता है। इस प्रकार भिक्षु! बाहर अशनि-परित्रास होता है।"

"किन्तु, भन्ते! क्या बाहर अशनि-अपरित्रास होता है?"

भगवान्ने कहा—"होता है भिक्षु! यहाँ भिक्षु! किसी (पुरुष)को ऐसा नहीं होता—'अहो! (पहिले यह) मेरा था', ० 'अहो! उसे मैं नहीं पाता हूँ'—(यह) इस प्रकार शोक नहीं करता ० मूर्छित नहीं होता। इस प्रकार भिक्षु! बाहर अशनिका परित्रास नहीं होता।

"कैसे भन्ते! भीतरमें अशनि-परित्रासन होता है?"

भगवान्ने कहा—"होता है भिक्षु! यहाँ भिक्षु! किसीकी यह दृष्टि (= धारणा) होती है—'सो लोक है, सोई आत्मा है; मैं मरकर सोई नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार होऊँगा, और अनन्त वर्षोंतक वैसेही स्थित रहूँगा।' वह तथागत (= बुद्ध) तथागत-श्रावक (= ०-शिष्य)को सारे ही दृष्टि-स्थानों, (दृष्टियोंके) अधिष्ठान (= रहनेके स्थान), पर्युत्थान (= उठने उपजने), अभिनिवेश (= आग्रह) और अनुशयों (= मलों)के विनाशके लिये सारे संस्कारों (= चित्तके प्रभावों)के शमन करनेके लिये, सारी उपाधियोंके परित्यागके लिये, (और) तृष्णाके क्षयके लिये, विराग, निरोध (= राग आदिके नाश) और निर्वाणके लिये धर्म उपदेश करते सुनता है। उसको ऐसा होता है—अहो! मैं उच्छिन्न होऊँगा, अहो! मैं नष्ट होजाऊँगा, (हाय!) मैं नहीं रहूँगा!!'—यह शोक करता है ०[1] मूर्छित होता है। इस प्रकार भिक्षु! यह अशनि-परित्रास (= बिजलीसा भय) होता है।

"कैसे भन्ते! (चित्तके) भीतर अशनिका-परित्रास नहीं होता?"

भगवान्ने कहा—"होता है भिक्षु! यहाँ भिक्षु! किसीकी यह दृष्टि नहीं होती—'सो लोक है ०[2]' न मूर्छित होता है। इस प्रकार भिक्षु! वह अशनिका परित्रास नहीं होता।

"भिक्षुओ! उस परिग्रह (= ग्रहणकरनेकी वस्तु)को परिग्रहण (= ग्रहण) करना चाहिये, जो परिग्रह कि नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार अनन्त वर्ष वैसाही (= एक समान) रहे। भिक्षुओ! देखते हो ऐसे परिग्रहको, जो कि ० अनन्त वर्ष तक वैसाही रहे?"

"नहीं भन्ते!"

"साधु, भिक्षुओ! मैं भी ऐसे परिग्रहको नहीं देखता, जो कि ० 'अनन्त वर्षतक वैसाही रहे। भिक्षुओ! उस आत्म-वाद (= आत्माके सिद्धान्त)-स्वीकारको स्वीकारे, जिस आत्मवाद-स्वीकारके स्वीकारने (= सकारने)से शोक, परिदेव (= कलपकर रोना), दुःख = दौर्मनस्य, उपायास (= परेशानी) न उत्पन्न हों। भिक्षुओ! देखते हो, ऐसे आत्मवाद-स्वीकारको, जिस आत्मवादके स्वीकारसे शोक परिदेव ० न उत्पन्न हों।

---

[1] देखो पहलेका पैरा।   [2] ऊपरके पैरा जैसा पाठ।

"नहीं, भन्ते !"

"साधु, भिक्षुओ ! मैं भी ऐसे आत्मवाद-स्वीकारको नहीं देखता, जिस आत्मवाद-स्वीकारसे शोक ० न उत्पन्न हों। भिक्षुओ ! उस दृष्टि-निश्रय (=धारणाके विषय)का आश्रय लेना चाहिये; जिस दृष्टि-निश्रयके आश्रय लेनेपर शोक ० न उत्पन्न हों। भिक्षुओ ! देखते हो, ऐसे दृष्टि-निश्रयको, जिस ० ?"

"नहीं, भन्ते !"

"साधु, भिक्षुओ ! मैं भी ऐसे दृष्टि-निश्रयको नहीं देखता ०। भिक्षुओ ! आत्माके होने पर '(यह) मेरा आत्मीय है'—यह हो सकता है ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! आत्मीय होनेपर, '(यह) मेरा आत्मा (है)'—हो सकता है ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! आत्मा और आत्मीयके ही सत्यतः = स्थिरतः उपलब्ध होनेपर, जो यह दृष्टि-स्थान—'सोई लोक है, सोई आत्मा है, मैं मरकर सोई नित्य ०[1] अनन्त वर्षों तक वैसे ही स्थित रहूँगा।' भिक्षुओ ! क्या यह केवल पूरा बाल-धर्म (= बच्चोंकीसी बात) नहीं है ?"

"क्यों नहीं ? है भन्ते ! केवल पूरा बाल-धर्म।"

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?"

"अनित्य है, भन्ते !"

"जो अ-नित्य है वह दुःख (-रूप) है या सुख (-रूप) ?"

"दुःख (-रूप) है भन्ते !"

"जो अ-नित्य, दुःख (-स्वरूप) और विपरिणाम-धर्मा (= परिवर्तनशील, विकारी) है, क्या उसके लिये ऐसा देखना—'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा आत्मा है'—योग्य है ?"

"नहीं, भन्ते !"

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! वेदना नित्य है या अनित्य ?"

"अ-नित्य है, भन्ते !" ०[2]।

"० संज्ञा ०[2], ० संस्कार ०[2], ० विज्ञान नित्य है या अ-नित्य ?"

"अ-नित्य है, भन्ते !"

"जो अ-नित्य, दुःख, और विपरिणाम-धर्मा है, क्या उसके लिये ऐसा देखना—० 'यह मेरा है' ०—योग्य है ?"

"नहीं, भन्ते !"

"इसलिये भिक्षुओ ! भीतर (शरीरमें) या बाहर, स्थूल या सूक्ष्म, उत्तम या निकृष्ट, दूर या नज़दीक, जो कुछ भी भूत भविष्य वर्तमानका रूप है, वह सब—'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूँ', 'यह मेरा आत्मा नहीं है',—ऐसे ही यथार्थतः ठीकसे जानकर देखना चाहिये। ० जो कुछ भी ० वेदना है ०। ० जो कुछ भी ० संज्ञा है ०। ० जो कुछ भी ० संस्कार है ०। ० जो कुछ भी ० विज्ञान है, वह सब—'यह (= विज्ञान) मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूँ', 'यह मेरा आत्मा नहीं है'—० जानकर देखना चाहिये।

---

[1] देखो ऊपर। [2] रूपकी भाँति यहाँ भी प्रश्नोत्तर है।

"भिक्षुओ! ऐसा देखनेपर बहुश्रुत आर्यश्रावक रूपमें भी निर्वेद (=उदासीनता)को प्राप्त होता है, वेदनामें भी ०, संज्ञामें भी ०, संस्कारमें भी ०, विज्ञानमें भी निर्वेदको प्राप्त होता है। निर्वेदसे विरागको प्राप्त होता है। विराग प्राप्त होनेपर (राग आदिसे) विमुक्त हो जाता है। विमुक्त (=मुक्त) होने पर 'मैं विमुक्त होगया'—यह ज्ञान होता है; फिर जानता है—जन्म क्षय हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, करणीय कर लिया, यहाँ और (कुछ भी) करनेको नहीं है। भिक्षुओ! यह भिक्षु उत्क्षिप्त-परिघ (=जुयेसे मुक्त) भी, संकीर्ण-परिख (=खाई पार) भी, अब्यूढ-हरीसिक (=जो हलकी हरीस जैसे दुनियाके भारोंको नहीं उठाते हैं)भी, निरर्गल (=लगामरूपी संसारके बंधनसे मुक्त)भी, आर्य, पन्न-ध्वज (=जिसकी राग आदि रूपी ध्वजा गिर गई है), पन्न-भार (=जिसका भार गिर गया है), वि-संयुक्त (=राग आदिसे विमुक्त) भी कहते हैं। भिक्षुओ! कैसे भिक्षु उत्क्षिप्त-परिघ होता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षुने अ-विद्याको नाश कर दिया है, उच्छिन्नमूल, मस्तकच्छिन्न ताड़के वृक्ष जैसा, अभावको प्राप्त, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक कर दिया है। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु उत्क्षिप्त-परिघ होता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु संकीर्ण-परिख होता है?—० भिक्षुने पौनर्भविक (=पुनर्जन्म-संबंधी) जाति-संस्कार (=जन्म दिलानेवाले पूर्वकृत कर्मोंके चित्तप्रवाहपर पड़े संस्कार)को नाश कर दिया है ०[1] संकीर्ण-परिख होता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु अब्यूढ-हरीसिक होता है?—०[1] तृष्णाको नाश कर दिया है ०। ० निरर्गल होता है?—० पाँच अवरभागीय[2] संयोजनों (=बंधनों)को नाश कर दिया है ०। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु आर्य, पन्नध्वज, पन्नभार, विसंयुक्त होता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षुका अस्मिमान (=हूँका अभिमान) नष्ट होता है ० भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक किया गया होता है। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु आर्य होता है। भिक्षुओ! इस प्रकार मुक्तचित्त भिक्षुको इन्द्र, ब्रह्मा प्रजापति सहित (सारे) देवता नहीं जान सकते, कि इस तथागतका विज्ञान इसमें निश्रित है। सो किस हेतु?—भिक्षुओ! इसी शरीरमें ही तथागत अन्-अनुवेद्य (=अ-ज्ञेय) है—यह कहता हूँ।

"भिक्षुओ! ऐसे वाद (को मानने)वाले, ऐसा कहनेवाले मुझे, कोई कोई श्रमण-ब्राह्मण अ-सत्य, तुच्छ, मृषा=अ-भूतसे ही झूठ लगाते हैं—श्रमण गौतम वैनयिक (=विना या नहींके वादको माननेवाला) है, (वह) विद्यमान सत्त्व (=जीव, आत्मा)के उच्छेद=विनाश=विभवका उपदेश करता है। भिक्षुओ! जो कि मैं नहीं कहता, वह आप श्रमण ब्राह्मण लोग इस असत्य, तुच्छ, मृषा अभूत(कथन)से (मुझपर) झूठ लगाते हैं—श्रमण गौतम ० विभवका उपदेश करता है। भिक्षुओ! पहिले भी और अब भी मैं उपदेश करता हूँ—दुःखको, और दुःख-निरोध को ०। यहाँ यदि भिक्षुओ! दूसरे तथागतको निन्दते=परिभाषते, खुन्साते हैं; उससे भिक्षुओ! तथागतको चोट (=आघात), अ-प्रत्यय (=अ-संतोष) और चित्त-विकार नहीं होता। और यदि भिक्षुओ! दूसरे तथागतका सत्कार=गुरुकार, मानन=पूजन करते हैं, तो भिक्षुओ! उससे तथागतको आनन्द=सौमनस्य चित्तका प्रसन्नताऽतिरेक नहीं होता। भिक्षुओ! जब दूसरे तथागतका सत्कार ० करते हैं, तो तथागतको ऐसा होता है—जो पहिले (ही) त्याग दिया है, उसीके विषयमें इस प्रकारके कार्य किये जा रहे हैं। इसलिये भिक्षुओ! यदि दूसरे तुम्हें भी निन्दें; तो उसके लिये

---

[1] पहले जैसे। [2] उरले भागवाले अर्थात् संसारमें फँसा रखनेवाले, यह पाँच हैं—(१) सत्काय दृष्टि (=आत्मवादकी धारणा), विचिकित्सा (=संशय), शीलव्रत-परामर्श (=व्रत आचरणका अनुचित-अभिमान), कामच्छन्द (=भोगोंमें राग), व्यापाद (=पीड़कवृत्ति)।

तुम्हें चोट, असन्तोष, चित्त-विकार नहीं आने देना चाहिये। और इसलिये भिक्षुओ! यदि दूसरे तुम्हारा सत्कार ० करें, तो उसके लिये तुम्हें आनन्द ० नहीं करना चाहिये। अतः भिक्षुओ! यदि दूसरे तुम्हारा सत्कार ० करें, तो उसके लिये तुम्हें भी ऐसा होना चाहिये—जो पहिले त्याग दिया है, उसीके विषयमें इस प्रकारके कार्य किये जा रहे हैं।

"इसलिये भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो, उसका छोड़ना चिरकालतक तुम्हारे हित सुखके लिये होगा। भिक्षुओ! क्या तुम्हारा नहीं है?—रूप भिक्षुओ! तुम्हारा नहीं है; उसे छोड़ो, उसका छोड़ना चिरकाल तक तुम्हारे हित सुखके लिये होगा। ० वेदना ०। ० संज्ञा ०। ० संस्कार ०। ० विज्ञान ०। तो क्या मानते हो भिक्षुओ! इस जेतवनमें जो तृण, काष्ट, शाखा, पत्र है; उसे (कोई) आदमी अपहरण करे, जलाये या (अपनी) इच्छानुसार (जो चाहे सो) करे, तो क्या तुम्हें ऐसा होना चाहिये—हमारी (चीज़)को (यह) आदमी अपहरण ० कर रहा है?"

"नहीं, भन्ते!"

"तो किस हेतु?"

"भन्ते! यह हमारा आत्मा या आत्मीय नहीं है।"

"ऐसे ही भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो, ० उसका छोड़ना, चिरकाल तक तुम्हारे हित-सुखके लिये होगा। भिक्षुओ! क्या तुम्हारा नहीं है?—रूप ०[1]। ० वेदना ०। ० संज्ञा ०। ० संस्कार ०। ० विज्ञान ०।

"भिक्षुओ! इस प्रकार मैंने धर्मका उत्तान = विवृत = प्रकाशित, आवरणरहित (= छिन्न-पिलोतिक) (करके) अच्छी तरह व्याख्यान किया (= स्वाख्यात) है। ऐसे ० स्वाख्यात धर्ममें, उन भिक्षुओंके लिये कुछ उपदेश करनेकी ज़रूरत नहीं है, जो कि (१) अर्हत्, क्षीणास्रव (= राग आदि मल जिनके नष्ट हो गये हैं), ब्रह्मचर्यवास पूरा कर चुके, कृतकरणीय, भारमुक्त, सच्चे अर्थको प्राप्त, परिक्षीण-भव-संयोजन (= जिनके भवसागरमें डालनेवाले बंधन नष्ट हो गये हैं), सम्यगाज्ञाविमुक्त (= यथार्थ ज्ञानसे जिनकी मुक्ति होगई है) हैं। (२) भिक्षुओ! ऐसे ० स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके पाँच अवरभागीय संयोजन[2] नष्ट हो गये हैं, वह सभी औपपातिक (= अयोनिज, देव) हो वहाँ (देवलोकमें) जा परिनिर्वाणको प्राप्त होनेवाले हैं, (वह) उस लोकसे लौटकर नहीं आनेवाले (= अनावृत्तिधर्मा = अनागामी) हैं, (३) भिक्षुओ! ऐसे ० स्वाख्यातधर्ममें जिन भिक्षुओंके तीन संयोजन नष्ट हो गये हैं, राग-द्वेष-मोह निर्बल (= तनु) हो गये हैं, वह सारे सकृदागामी = सकृद् (= एक बार) ही इस लोकमें आकर दुःखका अन्त करेंगे। ...(४) भिक्षुओ! ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके तीन संयोजन नष्ट हो गये, वह सारे न पतित होनेवाले संबोधि (= बुद्धके ज्ञान)-परायण स्रोत-आपन्न (= निर्वाणकी ओर ले जानेवाले प्रवाहमें स्थिर रीतिसे आरूढ़) हैं।...। भिक्षुओ! ऐसे ० स्वाख्यात धर्ममें जो भिक्षु श्रद्धानुसारी, धर्मानुसारी है, वह सभी संबोधि-परायण है। इस प्रकार मैंने धर्मका ० अच्छी तरह व्याख्यान किया है। ऐसे ० स्वाख्यात धर्ममें जिनकी मेरे विषयमें श्रद्धा मात्र प्रेम मात्र (भी) है, वह सभी स्वर्ग-परायण (= स्वर्गगामी) हैं।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो ऊपर। [2] देखो पृष्ठ ९० टिप्पणी।

२३—वम्मिक-सुत्तन्त (१।३।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् कुमार काश्यप अन्धवनमें विहार करते थे। तब उजेली रातमें कोई अभिक्रान्त वर्ण (= प्रकाशमय) देवता सारे अन्धवनको प्रभासित कर, जहाँ आयुष्मान् कुमार काश्यप थे वहाँ जाकर, एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुये उस देवताने आयुष्मान् कुमार काश्यपसे यह कहा—

"भिक्षु! भिक्षु! यह वल्मीक रातको धुँधुआता (= धुँआ देता) है, दिनको बलता (= प्रज्वलित होता) है। ब्राह्मणने ऐसा कहा—

'सुमेध! शस्त्र ले अभीक्षण (= काट)।'

सुमेधने शस्त्र ले काटते लंगीको देखा—'लंगी है भदन्त (= स्वामी)!'

ब्राह्मणने यह कहा—'लंगीको फेंक, सुमेध! शस्त्र ले काट।'

सुमेधने ० धुँधुआना देखा—'धुँधुआता है, भदन्त!'

ब्राह्मणने यह कहा—'धुँधुआनेको फेंक, सुमेध! ०।'

सुमेधने ० दो रास्ते देखे—'दो रास्ते हैं, भदन्त!'

ब्राह्मणने ०—'दो रास्ते फेंक (= छोड़), सुमेध! ०।'

सुमेधने ० चंगवार (= चंगेरा = टोकरा) देखा—'चंगवार है, भदन्त!'

ब्राह्मणने ०—'चंगवार फेंक दे, सुमेध! ०।'

सुमेधने ० कूर्म (= कछुवा) देखा—'कूर्म है, भदन्त!'

ब्राह्मणने ०—'कूर्म फेंक दे, सुमेध! ०।'

सुमेधने ० असिसूना (= पशु मारनेका पीढ़ा) देखा—'असिसूना है, भदन्त!'

ब्राह्मणने ०—'असिसूना फेंक दे, सुमेध! ०।'

सुमेधने ० मांसपेशी (= मांसका टुकड़ा) देखा—'मांसपेशी है, भदन्त!'

ब्राह्मणने ०—'मांसपेशी फेंक दे, सुमेध! ०।'

सुमेधने ० नाग देखा—'नाग है, भदन्त!'

ब्राह्मणने ०—'रहने दे नागको, मत उसे धक्का दे, नागको नमस्कार कर।'

"भिक्षु! इन प्रश्नोंको तुम भगवान्के पास जाकर पूछना। भगवान् जैसा इसका उसे धारण करना। भिक्षु! देव-मार-ब्रह्मा सहित सारे लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण देव-मा सारी प्रजामें, मैं ऐसे (पुरुष)को नहीं देखता, जो इस प्रश्नका उत्तर दे चित्तको स सिवाय तथागत, तथागत-श्रावक या यहाँसे सुने हुयेके।"

वह देवता यह कह कर वहीं अन्तर्ध्यान होगया।

तब आयुष्मान् कुमार काश्यप उस रातके बीतनेपर जहाँ भगवान् थे, व... अभिवादनकर, एक ओर···बैठ, भगवान्से यह बोले—

"भन्ते! आज रातको एक अभिक्रान्तवर्ण देवता सारे अन्धवनको प्रभासित कर, जहाँ मैं था, वहाँ आकर एक ओर खड़ा हुआ, एक ओर खड़ा हो उस देवताने मुझे यह कहा—०[1]। यह देवता यह'''कहकर वहीं अन्तर्धान होगया।

"भन्ते! (१) क्या है वल्मीक? (२) क्या है रातका धुँधुँवाना? (३) क्या है दिनका धधकना? (४) कौन है ब्राह्मण? (५) कौन है सुमेध? (६) क्या है शस्त्र? (७) क्या है अभीक्षण (=काटना)? (८) क्या है लंगी? (९) ० धुँधुँवाना? (१०) ० दो रास्ते? (११) ० चंगवार? (१२) ० कूर्म? (१३) ० असि-सूना? (१४) ० मांसपेशी? (१५) क्या है नाग?"

"भिक्षु! (१) वल्मीक यह माता-पिता से उत्पन्न भात-दालसे वर्धित, इसी चातुर्महाभौतिक कायाका नाम है, जो कि अनित्य तथा, उत्सादन (= हटाने) मर्दन, भेदन, विध्वंसन स्वभाववाला है। (२) भिक्षु! जो दिन के कामोंके लिये रातको सोचता है, विचारता है, यही रातका धुँधुँवाना है। (३) भिक्षु! जो कि रातको सोच विचारकर दिनको काया और वचनसे कामोंमें योग देता है, यह दिनका धधकना है। (४)'''ब्राह्मण यह तथागत, अर्हत्, सम्यक्-संबुद्धका नाम है। (५) सुमेध यह शैक्ष्य (= जिसको शिक्षाकी अभी आवश्यकता है, ऐसा निर्वाण-मार्गारूढ व्यक्ति) भिक्षुका नाम है। (६) ० शस्त्र (= हथियार) यह आर्य प्रज्ञा (= उत्तम ज्ञान)का नाम है। (७) ० अभीक्षण (= काटना) यह वीर्यारम्भ (= उद्योग)का नाम है। (८) ० लंगी अविद्याका नाम है। 'लंगीको फेंक, सुमेध!' अविद्या को छोड़, सुमेध! शस्त्र ले काट—यह इसका अर्थ है। (९) ० धुँधुँआना यह क्रोधकी परेशानीका नाम है; धुँधुँआना फेंक दे, सुमेध! क्रोध-उपायासको छोड़, शस्त्र ले काट—यह इसका अर्थ है। (१०) ० दो रास्ते (= द्विधापथ) यह विचिकित्सा (= संशय)का नाम है। दो रास्ते फेंक दे, विचिकित्सा छोड़, सुमेध! ०। (११) ० चंगवार यह पाँच नीवरणों (= आवरणों) का नाम है, (जैसे कि) कामच्छन्द (= भोगोंमें राग)-नीवरण, व्यापाद (= परपीड़ाकरण)-नीवरण, स्त्यानमृद्ध (= कायिक मानसिक आलस्य)-नीवरण, औद्धत्य-कौकृत्य (= उद्धतपन और पश्चात्ताप)-नीवरण, विचिकित्सा (= संशय)-नीवरण। 'चंगवार फेंक दे'—पाँच नीवरणोंको छोड़ दे, सुमेध! ०। (१२) ० कूर्म यह पाँच उपादान-स्कंधों[2]का नाम है, जैसे कि—रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ०। 'कूर्मको फेंक दे'—अर्थात् पाँच उपादान स्कंधोंको छोड़, सुमेध! ०। (१३) ० असिसूना यह पाँच काम-गुणों (= भोगों)का नाम है, (जैसे कि) इष्ट कान्त मनाप = प्रिय, कमनीय, रंजनीय चक्षुद्वारा विज्ञेय रूप ०, श्रोत्र-विज्ञेय शब्द ०, घ्राण-विज्ञेय गंध ०, जिह्वा; विज्ञेय रस-इष्ट, कान्त, मनाप = प्रिय, कमनीय = रंजनीय काय-विज्ञेय स्प्रष्टव्य। 'असिसूना फेंक दे'—पाँच कामगुणों को छोड़, सुमेध! ०। (१४) मांसपेशी यह नन्दी = रागका नाम है। 'मांसपेशी फेंक दे'—नन्दी रागको छोड़ दे, सुमेध! ०। (१५) भिक्षु! नाग यह क्षीणास्रव (= अर्हत्) भिक्षुका नाम है। रहने दे नागको, मत उसे धक्का दे, नागको नमस्कार कर, यह इसका अर्थ है।"

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् कुमार-काश्यपने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] ऊपर गयेकी आवृत्ति।

[2] आदि पाँच स्कंधोंमें व्यक्तिके ग्रहणका विषयवाला अंश उपादान-स्कंध कहा जाता है।

२४—रथविनीत-सुत्तन्त (१।३।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें कलन्दक-निवाप वेणुवनमें विहार करते थे। तब बहुतसे जातिभूमिक (= भगवान्‌की जन्मभूमि कपिल वस्तुमें रहनेवाले) जातिभूमि (= कपिल-वस्तु)में वर्षावास कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंको भगवान्‌ने यह कहा—

"भिक्षुओ! जातिभूमिमें जातिभूमिके भिक्षुओंका कौन ऐसा सम्भावित (= प्रतिष्ठित) भिक्षु है, जो स्वयं अल्पेच्छ (= निर्लोभ) हो, और भिक्षुओंके लिये अल्पेच्छ-कथा (= निर्लोभीपनके उपदेश)का कहनेवाला हो; स्वयं सन्तुष्ट हो, और भिक्षुओंके लिये सन्तोष-कथाका करनेवाला हो; स्वयं प्रविविक्त (= एकान्त-चिन्तनशील) हो, ० प्रविवेक-कथा ०; स्वयं अ-संसृष्ट (= अनासक्त) हो, ० असंसर्ग-कथा ०; स्वयं आरब्ध-वीर्य (= उद्योगी) हो, ० वीर्यारम्भ-कथा ०; स्वयं शील-सम्पन्न (= सदाचारी) हो, ० शील-सम्पदा-कथा ०; स्वयं समाधि-सम्पन्न हो, ० समाधि-सम्पदा-कथा ०; स्वयं प्रज्ञा-सम्पन्न हो, ० प्रज्ञा-सम्पदा-कथा ०; स्वयं विमुक्ति (= मुक्ति)-सम्पन्न हो, ० विमुक्ति-सम्पदा-कथा ०; स्वयं विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न (= मुक्तिके ज्ञानका साक्षात्कार जिसने कर लिया) हो, ० विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पदा-कथा ०; जो सब्रह्मचारियों (= सहधर्मियों)के लिये अववादक (= उपदेशक), = विज्ञापक = सन्दर्शक, समादपक = समुत्तेजक, सम्प्रहर्षक (= उत्साह देनेवाला) हो?"

"भन्ते! जाति-भूमिमें, आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र हैं, जाति भूमिके सब्रह्मचारी भिक्षुओंके ऐसे सम्भावित हैं, जो स्वयं अल्पेच्छ ०[1] सम्प्रहर्षक हैं।"

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान्‌के पास (= अ-विदूर)में बैठे हुये थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्रको ऐसा हुआ—"अहो! लाभ हैं (= धन्य हैं) आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र को, सुलब्ध (= सुन्दर तौरसे मिले हैं) लाभ आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रको, जिसकी प्रशंसा समझ समझ कर विज्ञ सब्रह्मचारी (= गुरु-भाई) शास्ताके सामने कर रहे हैं; और शास्ता (= बुद्ध) उसका अनुमोदन करते हैं। क्या कभी हमारा आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रके साथ समागम होगा, कभी कुछ कथा-संलाप होगा!"

तब भगवान् राजगृहमें यथेच्छ विहार कर, जिधर श्रावस्ती है, उधर चारिका (= रामत) के लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्ती में अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रने सुना,

---

[1] ऊपरके पैरा जैसा।

कि भगवान् श्रावस्तीमें पहुँच गये हैं, (और) ० जेतवनमें विहार करते हैं। तब आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र शयन-आसन संभालकर, पात्र-चीवर ले जिधर श्रावस्ती है, उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती, अनाथ-पिंडिकका आराम जेतवन, (और) जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रको भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित=समादपित=समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा ० सम्प्रहर्षित हो, भगवान्के भाषणका अभिनन्दन = अनुमोदन कर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर; जहाँ अन्धवन है, वहाँ दिनके विहारके लिये गये।

तब कोई भिक्षु…आयुष्मान् सारिपुत्रके पास जाकर…यह बोला—"आवुस सारिपुत्र! जिन पूर्ण मैत्रायणीपुत्र…भिक्षुका आप बराबर नाम लिया करते थे, वह भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा ० प्रहर्षित हो, ० भगवान्को अभिवादनकर ० जहाँ अन्धवन है, वहाँ दिनके विहारके लिये गये।"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र शीघ्रतासे आसन ले आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रके पीछे (उनका) शिर देखते चल पड़े। तब आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र अन्धवनमें घुसकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे। आयुष्मान् सारिपुत्र भी अन्धवनमें घुसकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र सायंकालको प्रतिसँल्लयन (= ध्यान)से उठ, जहाँ आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रके साथ…(यथा-योग्य कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर…बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्रने आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रसे यह कहा—

"आवुस! हमारे भगवान्के पास (आप) ब्रह्मचर्यवास करते हैं?"

"हाँ, आवुस!"

"क्यों आवुस! शील-विशुद्धि (= आचार-शुद्धि)के लिये भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं?"

"नहीं, आवुस!"

"क्या फिर आवुस! चित्त-विशुद्धिके लिये ०?"

"नहीं, आवुस!"

"क्या फिर ० दृष्टि-विशुद्धि (= सिद्धान्त ठीक करने)के लिये ०?"

"नहीं, आवुस!"

"क्या फिर ० सन्देह दूर करनेके लिये (= कांक्षा-वितरण-विशुद्ध्यर्थ) ०?"

"नहीं, आवुस!"

"क्या फिर ० मार्ग-अमार्ग-ज्ञानके दर्शन (= समझ, साक्षात्कार)की विशुद्धिके लिये ०?"

"नहीं आवुस!"

"क्या फिर ० प्रतिपद् (= मार्ग)-ज्ञान-दर्शनकी विशुद्धिके लिये ०?"

"नहीं, आवुस!"

"क्या फिर ० ज्ञान-दर्शनकी विशुद्धिके लिये?"

"नहीं आवुस!"

"आवुस! 'शील-विशुद्धिके लिये क्या आप भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं', पूछनेपर 'नहीं आवुस!' कहते हो। ० 'ज्ञानदर्शनकी विशुद्धिके लिये क्या आप भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास

करते हैं'—पूछनेपर भी 'नहीं, आवुस !'—कहते हो। तो आवुस ! किसलिये भगवान्के पास आप ब्रह्मचर्यवास करते हैं ?"

"उपादान (= परिग्रह)-रहित परिनिर्वाणके लिये आवुस ! मैं भगवान्के पास ब्रह्मचर्य-वास करता हूँ।"

"क्या आवुस ! शील-विशुद्धि उपादानरहित परिनिर्वाण है ?"

"नहीं, आवुस।" ०[1]

"क्या आवुस ! ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है ?"

"नहीं, आवुस !"

"क्या आवुस ! इन (ऊपर गिनाये) धर्मोंसे अलग है, उपादानरहित परिनिर्वाण ?"

"नहीं, आवुस !"

"क्या आवुस ! शील-विशुद्धि उपादानरहित परिनिर्वाण है ?—पूछनेपर 'नहीं आवुस ! कहते हो। ०। 'क्या आवुस ! इन धर्मोंसे अलग है, उपादान-रहित परिनिर्वाण ?'—पूछनेपर 'नहीं आवुस ०।' तो फिर आवुस ! इस (आपके) कथनका अर्थ किस प्रकार समझना चाहिये ?"

"आवुस ! शील-विशुद्धिको यदि भगवान् उपादानरहित परिनिर्वाण कहते, तो उपादान-सहित परिनिर्वाणहीको उपादानरहित परिनिर्वाण कहते। ०[1]। आवुस ज्ञान-दर्शन-विशुद्धिको यदि भगवान् उपादान-रहित परिनिर्वाण कहते; तो उपादानसहित परिनिर्वाणहीको उपादान-रहित परिनिर्वाण कहते। आवुस ! इन धर्मोंसे अलग यदि उपादानरहित परिनिर्वाण होता, तो पृथग्जन (= निर्वाणका अनधिकारी) भी परिनिर्वाणको प्राप्त होगा। (क्योंकि) आवुस ! पृथग्जन इन धर्मोंसे अलग है। सो आवुस ! तुम्हें एक उपमा (= दृष्टान्त) कहता हूँ, उपमासे भी कोई कोई विज्ञ पुरुष कहेका अर्थ समझते हैं।

"जैसे आवुस ! राजा प्रसेनजित् कोसलको श्रावस्तीमें बसते कोई अत्यावश्यक काम साकेतमें उत्पन्न हो जाये। (तब) उसके लिये श्रावस्ती और साकेतके बीचमें सात रथविनीत (= डाक) स्थापित करें। तब आवुस ! राजा प्रसेनजित् कोसल श्रावस्तीसे निकलकर अन्तःपुर (= राजमहल वाला भीतरी दुर्ग)के द्वारपर पहिले रथ-विनीत (= रथकी डाक)पर चढ़े, पहिले रथविनीतसे दूसरे रथविनीतको प्राप्त होवे, (वहाँ) पहिले रथविनीतको छोड़दे, और दूसरे रथविनीतपर आरूढ़ हो। दूसरे रथविनीतसे तृतीय रथविनीतको प्राप्त होवे, (वहाँ) द्वितीय रथविनीतको छोड़दे, और तीसरे रथविनीतपर आरूढ़ हो। ० चौथे ०। ० पाँचवें ०। छठें रथविनीतको छोड़दे, और सातवें रथविनीतपर आरूढ़ हो। सातवें रथविनीतसे साकेतके अन्तःपुर के द्वारपर पहुँच जाये। तब अन्तःपुरके द्वारपर प्राप्त उसे मित्र, अमात्य, ज्ञाति=सालोहित ऐसा पूँछे—'क्या महाराज ! इसी रथविनीतद्वारा श्रावस्तीसे (चलकर) साकेतके अन्तःपुर द्वारपर पहुँच गये ? आवुस ! किस तरह उत्तर देनेपर राजा प्रसेनजित् (= पसेनदी) कोसलका ठीक उत्तर होगा ?"

"आवुस ! इस प्रकार उत्तर देनेपर राजा प्रसेनजित् कोसलका उत्तर ठीक उत्तर होगा—मुझे श्रावस्तीमें बसते मेरा कोई अत्यावश्यक काम साकेतमें उत्पन्न होगया। (तब) उसके लिये श्रावस्ती और साकेतके बीचमें सात रथविनीत स्थापित किये गये। तब मैं श्रावस्तीसे निकलकर ०[1] सातवें रथ-विनीतपर आरूढ़ हो सातवें रथविनीतसे साकेतके अन्तःपुर-द्वारपर पहुँच गया। इस प्रकार उत्तर देनेपर राजा प्रसेनजित् कोसलका उत्तर ठीक उत्तर होगा।"

---

[1] पहिलेकी तरह दुहराना चाहिये।

"ऐसे ही आवुस ! शील-विशुद्धि तभी तक (है) जब तक कि (पुरुष) चित्तविशुद्धि-को (प्राप्त नहीं होता) ; चित्त-विशुद्धि तभी तक जब तक कि दृष्टि-विशुद्धिको (प्राप्त नहीं होता) ; दृष्टि-विशुद्धि तभी तक जब तक कि कांक्षावितरण-विशुद्धिको (प्राप्त नहीं होता) ; ० जब तककि मार्गामार्ग-ज्ञान-दर्शन-विशुद्धिको ० ; ० जब तक कि प्रतिपद्-ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि-को ; ० जब तक कि ज्ञान-दर्शन-विशुद्धिको ० , ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि तभी तक (है) जब तक कि उपादान-रहित परिनिर्वाणको (प्राप्त नहीं होता) । आवुस ! अनुपादा (= उपादानरहित) परिनिर्वाणके लिये भगवान्‌के पास ब्रह्मचर्यवास करता हूँ ।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् सारिपुत्रने आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रसे यह कहा—"आयुष्मान्‌का क्या नाम है; सब्रह्मचारी आयुष्मान्‌को (किस नामसे) जानते हैं ?"

"आवुस ! पूर्ण (मेरा) नाम है, मैत्रायणीपुत्र करके सब्रह्मचारी मुझे जानते हैं ।"

"आश्चर्य है आवुस ! अद्भुत आवुस !! जैसे शास्ता (= बुद्ध)के शासन (= उपदेश) को भली प्रकार जाननेवाला बहुश्रुत श्रावक गंभीर गम्भीर प्रश्नोंको समझ समझ कर व्याख्यान करे; वैसे ही आयुष्मान पूर्ण मैत्रायणीपुत्रने (व्याख्यान किया) । लाभ है सब्रह्मचारियोंको, लाभ सुलब्ध हुआ सब्रह्मचारियोंको, जो कि आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रको दर्शन, और सेवनके लिये पाते हैं । चेलण्डुक (= अंगोछा)से भी यदि सब्रह्मचारी आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रको हाथसे धारण करके दर्शन और सेवनके लिये पावें; उनको भी लाभ है, उनको भी लाभ सुलब्ध हुआ है । हमें भी लाभ है, हमें भी लाभ सुलब्ध हुआ है, जोकि हम आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रको दर्शन और सेवनके लिये पाते हैं ।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रने आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—"आयुष्मान्‌का क्या नाम है; सब्रह्मचारी आयुष्मान्‌को (किस नामसे) जानते हैं ?"

"आवुस ! उपतिष्य मेरा नाम है, सारिपुत्र करके मुझे सब्रह्मचारी जानते हैं ।"

"अहो ! भगवान्‌के समान (= शास्तृ-कल्प) श्रावक (= बुद्ध-शिष्य)से संलाप करते हुये भी मैं नहीं जान सका, कि (यह) आयुष्मान् सारिपुत्र हैं । यदि हम जानते कि यह आयुष्मान् सारिपुत्र हैं, तो इतना भी हमें न सूझ पड़ता । आश्चर्य आवुस ! अद्भुत आवुस !! जैसे शास्ताके शासनको सम्यक् जाननेवाला बहुश्रुत श्रावक गंभीर गंभीर प्रश्नोंको समझ समझ कर व्याख्यान करे, वैसे ही आयुष्मान् सारिपुत्रने (व्याख्यान किया) । लाभ है सब्रह्मचारियोंको, लाभ सुलब्ध हुआ सब्रह्मचारियोंको ० जो कि हम आयुष्मान् सारिपुत्रको दर्शन और सेवनके लिये पाते हैं ।"

इस प्रकार दोनों महानागों (= महावीरों)ने एक दूसरेके सुभाषितका समनुमोदन किया ।

२५—निवाप-सुत्तन्त (१।३।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ! नैवापिक (= बहेलिया) मृगोंको (यह सोचकर) निवाप (मृगोंके शिकारके लिये जंगलके भीतर बोये खेत) नहीं बोता, कि इस मेरे बोये निवापको खाकर मृग दीर्घायु वर्णवान् (= सुन्दर) (हो) चिरकाल तक गुजारा करें। भिक्षुओ! नैवापिक मृगोंके लिये (यह सोच) निवाप बोता है, कि मृग इस मेरे बोये निवापको अनुप-खज (= घुस कर) मूर्छित (= बेसुध) हो भोजन करेंगे,…मूर्छित हो भोजन कर मदको प्राप्त होंगे, मदको प्राप्त हो प्रमादी होंगे, प्रमादी हो इस निवापके विषयमें स्वेच्छाचारी होंगे।

"भिक्षुओ! पहिले मृगोंने नैवापिकके इस बोये निवापको…मूर्छित हो भोजन किया;…मूर्छित हो भोजन कर मदको प्राप्त हुये, मदको प्राप्त (= मत्त) हो प्रमादी हुये, प्रमादी हो…स्वेच्छाचारी हुये। इस प्रकार भिक्षुओ! यह पहिले मृग नैवापिकके चमत्कार (= ऋद्धय-नुभाव)से मुक्त नहीं हुये।

"वहाँ भिक्षुओ! दूसरे मृगोंने यह सोचा—'जिन उन पहिले मृगोंने नैवापिकके इस बोये निवापको…मूर्छित हो भोजन किया ०[1]; नैवापिकके चमत्कारसे मुक्त नहीं हुये। क्यों न हम निवाप-भोजनसे सर्वथा ही विरत हो जायें, भयभोगसे विरत हो अरण्य-स्थानोंमें अवगाहन कर विहरें।' (तब) वह निवाप-भोजनसे सर्वथा विरत हुये, भय-भोग (= भयपूर्ण भोग)से विरत हो अरण्य-स्थानोंको अवगाहन कर विहरने लगे। ग्रीष्मके अन्तिम मासमें घास-पानी (= तृण-उदक)के क्षय होनेसे, उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। अत्यन्त दुर्बल कायावाले उन (मृगों)का बल-वीर्य नष्ट हो गया। बलवीर्यके नष्ट हो जाने पर नैवापिकके बोये हुये उसी निवापको खानेके लिये लौटे। उन्होंने…मूर्छित हो भोजन किया ०[1] इस प्रकार भिक्षुओ! यह दूसरे मृग भी नैवापिकके चमत्कार (= जादू)से मुक्त नहीं हुये।

"भिक्षुओ! तीसरे मृगोंने यह सोचा—'जिन उन पहिले मृगोंने नैवापिकके इस बोये निवापको…मूर्छित हो भोजन किया ० मुक्त नहीं हुये। (तब) जिन उन दूसरे मृगोंने यह सोचा—०[1] निवाप-भोजनसे सर्वथा विरत हुये ० वह दूसरे मृग भी नैवापिकके…(फन्दे)से मुक्त नहीं हुये। क्यों न हम नैवापिकके बोये इस निवापका आश्रय लें। वहाँ आश्रय ले…इस…

---

[1] पीछे आये पाठकी फिर आवृत्ति।

निवापको···अ-मूर्छित (= न बेसुध) हो भोजन करें, अ-मूर्छित हो भोजन करनेसे हम मदको प्राप्त न होंगे; मदको न प्राप्त होनेसे प्रमादी नहीं होंगे, प्रमादी न होनेसे नैवापिकके इस निवापमें स्वेच्छाचारी नहीं होंगे'। (यह सोच) उन्होंने नैवापिकके चौथे उस निवापका आश्रय लिया। आश्रय ले···निवापको···अमूर्छित हो भोजन किया, ० मदको प्राप्त नहीं हुये, ० प्रमादी नहीं हुये, ० स्वेच्छाचारी नहीं हुये। तब भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्को यह हुआ—'यह चौथे मृग शठ पाखंडी (= केतुमी) हैं; यह तीसरे मृग ऋद्धिमान परजन हैं; यह इस छोड़े निवापको खाते हैं, किन्तु हम इनके गमन-आगमनको नहीं जानते। क्यों न हम इस छोड़े निवापके सारे प्रदेशको बड़े बड़े डंडोंके रूँधानसे चारों ओरसे घेर दें, जिसमें कि (इन) तीसरे मृगोंके आश्रयको देखें; जहाँ पर कि वह पकड़े जा सकते हैं'। (यह सोच) उन्होंने ० डंडोंके रूँधानसे घेर दिया। (फिर) भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्ने तीसरे मृगोंके आश्रय (= स्थान)को देखा, जहाँ कि वह पकड़े गये। इस प्रकार भिक्षुओ! वह तीसरे मृग भी नैवापिकके···(फंदेसे) मुक्त नहीं हुये।

"भिक्षुओ! चौथे मृगोंने यह सोचा—'जिन पहिले मृगोंने ०[1] मूर्छित हो भोजन किया ०[1] मुक्त नहीं हुये। जिन दूसरे मृगोंने ०[1], निवाप भोजनसे सर्वथा विरत हुये ०[1] मुक्त नहीं हुये। जिन तीसरे मृगोंने ०[1] अ-मूर्छित हो भोजन किया ०[1] मुक्त नहीं हुये। क्यों न हम (वहाँ) आश्रय (= स्थान) ग्रहण करें, जहाँ नैवापिक और नैवापिक-परिषद्की गति नहीं है। वहाँ आश्रय ग्रहण कर नैवापिकके इस चौथे निवापको···अमूर्छित हो भोजन करें,···अमूर्छित हो भोजन करनेसे मदको न प्राप्त होंगे, ०[2]। ०[2] 'स्वेच्छाचारी न होंगे' उन्होंने (तब) जहाँ नैवापिक और नैवापिक-परिषद्की गति न थी, वहाँ आश्रय ग्रहण किया। ० अमूर्छित हो भोजन किया ०[2] स्वेच्छाचारी नहीं हुये। तब भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्को यह हुआ—'यह चौथे मृग शठ (= लय) पाखंडी (= केतुमी) हैं, यह चौथे मृग ऋद्धिमान् (= होशियार) परजन हैं। (यह) हमारे छोड़े निवापको भोजन करते हैं, किन्तु हम इनके गमन-आगमनको नहीं जानते। क्यों न हम ०[2] चारों ओरसे घेर दें; जिसमें कि चौथे मृगोंके आश्रयको देखें; जहाँ पर कि वह पकड़े जा सकते हैं।' (यह सोच) उन्होंने ० सारे प्रदेशको घेर दिया। (किन्तु) भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्ने चौथे मृगोंके आश्रयको नहीं देख पाया, जहाँ पर कि वह पकड़े जाते। तब भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्को यह हुआ—'यदि हम चौथे मृगोंको घट्टित (= रगड़) करेंगे, तो वह घट्टित हो दूसरोंको घट्टित करेंगे, और वह घट्टित हो दूसरोंको घट्टित करेंगे। इस प्रकार सारे मृग इस चौथे निवापको छोड़ देंगे; क्यों न हम चौथे मृगोंकी उपेक्षा करदें।' (तब) भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्ने चौथे मृगोंको उपेक्षित किया। इस प्रकार भिक्षुओ! चौथे मृग नैवापिकके···(फंदे)से छूटे।

"भिक्षुओ! अर्थको समझानेके लिये मैंने यह उपमा (= दृष्टान्त) कही है। भिक्षुओ! निवाप यह पाँच काम-गुणों (= भोगों) का नाम है;···नैवापिक यह पापी मारका नाम है;··· नैवापिक-परिषद् यह मार-परिषद्का नाम है; भिक्षुओ! मृग-समूह यह श्रमण-ब्राह्मणोंका नाम है।

"भिक्षुओ! उन पहले श्रमण-ब्राह्मणोंने उस चौथे निवाप (अर्थात्) मारके इस लोक-आमिष (= विषयों)को···मूर्छित हो भोजन किया;···वह मूर्छित हो भोजन कर मदको प्राप्त

---

[1] पीछे आये पाठकी फिर आवृत्ति। [2] पहिलेकी तरह आवृत्ति।

हुये, मदको प्राप्त हो प्रमादी हुये, प्रमादी हो मारके इस निवापमें, इस लोकामिषमें स्वेच्छाचारी हुये। इस प्रकार भिक्षुओ! वह पहिले श्रमण-ब्राह्मण मारके···(फन्दे)से नहीं छूटे। जैसे कि वह पहिले मृग (थे), भिक्षुओ! उन्हींके समान मैं (इन) पहिले श्रमण-ब्राह्मणोंको कहता हूँ।

"भिक्षुओ! दूसरे श्रमण-ब्राह्मणोंने यह सोचा—'जिन उन प्रथम श्रमण-ब्राह्मणोंने मारके बोये इस निवापको = लोकामिषको मूर्छित हो खाया ०। इस प्रकार ० वह ० मारके···(फंदे)से नहीं छूटे। क्यों न हम लोक-आमिष रूपी निवाप-भोजनसे सर्वथा ही विरत हो जायें; भय-भोगसे विरत हो अरण्य-स्थानोंको अवगाहन कर विहरें'। (तब वह) लोक-आमिष रूपी निवाप-भोजनसे सर्वथा ही विरत हो गये; ० अरण्य स्थानोंको अवगाहन कर विहरने लगे—वह वहाँ शाकाहारी भी हुये, सवाँ (= श्यामाक)-भोजी भी हुये, नीवार (= तिन्नी) भक्षी भी हुये ०[1] (जमीन पर) पड़े फलोंके खानेवाले भी हुये। ग्रीष्मके अन्तिम समयमें घास पानीके क्षय होनेसे ०[1]बल-वीर्य नष्ट हो जानेसे (उनकी) चित्तकी विमुक्ति (= मुक्ति = शांति) नष्ट होगई, चित्तकी विमुक्तिके नष्ट होने पर, लोक-आमिष रूपी मारके बोये उसी निवापको लौट कर खाने लगे। उन्होंने ० मूर्छित हो खाया ०। इस प्रकार भिक्षुओ! वह दूसरे श्रमण-ब्राह्मण भी मारके···(फंदे)से नहीं छूटे। जैसे कि वह दूसरे मृग (थे) भिक्षुओ! उन्हींके समान मैं (इन) दूसरे श्रमण-ब्राह्मणोंको कहता हूँ।

"भिक्षुओ! तीसरे श्रमण-ब्राह्मणोंने यह सोचा—'जिन उन प्रथम श्रमण-ब्राह्मणोंने ०[2]मूर्छित हो भोजन किया ०[2] (वह) मारके···(फंदे)से नहीं छूटे। ० दूसरे श्रमण-ब्राह्मण ०[1] भोजनसे सर्वथा विरत हो गये ०[1],—(फिर) उसी निवापको लौट कर खाने लगे ०[1] वह मारके...(फंदे)से नहीं छूटे। क्यों न हम मारके बोये लोकामिष-रूपी इस निवापका आश्रय लें। वहाँ आश्रय ले···इस···लोकामिष रूपी निवापको अमूर्छित (= न-बेसुध) हो भोजन करें। ०[3]लोकामिष रूपी निवापोंमें स्वेच्छाचारी नहीं होंगे।' (तब) उन्होंने मारके बोये लोक-आमिष-रूपी निवापका आश्रय लिया। आश्रय लेकर···निवापको अमूर्छित हो भोजन किया ०[3] वह मारके बोये लोकामिष-रूपी निवापमें स्वेच्छाचारी नहीं हुये। किन्तु उनकी यह दृष्टियाँ (= धारणायें) हुईं—(१) 'लोक शाश्वत (= नित्य) है', (२) 'लोक अशाश्वत है', (३) 'लोक अन्तवान् है', (४) 'अन्त-रहित (= अनन्तवान्) लोक है', (५) 'सोई जीव है सोई शरीर है', (६) 'जीव अन्य, शरीर अन्य है', (७) 'तथागत (= बुद्ध, मुक्त) मरनेके बाद होते हैं', (८) 'तथागत मरनेके बाद नहीं होते', (९) 'तथागत मरनेके बाद होते भी हैं, नहीं भी होते हैं', (१०) 'तथागत मरनेके बाद न होते हैं, न नहीं होते हैं'।—इस प्रकार भिक्षुओ! वह तीसरे श्रमण-ब्राह्मण भी मारके···(फंदे)से नहीं छूटे। जैसे कि वह तीसरे मृग (थे), भिक्षुओ! उन्हींके समान मैं (इन) तीसरे श्रमण-ब्राह्मणोंको समझता हूँ।

"भिक्षुओ! उन चौथे श्रमण-ब्राह्मणोंने सोचा—'जिन उन प्रथम श्रमण-ब्राह्मणोंने ० मूर्छित हो भोजन किया ० (वह) मारके···(फंदे)से नहीं छूटे। जो वह दूसरे श्रमण-ब्राह्मण ० भोजनसे सर्वथा विरत होगये ० (फिर) उसी निवापको लौटकर खाने लगे ० वह (भी) मारके···(फंदे)से नहीं छूटे। जो वह तीसरे श्रमण-ब्राह्मण ० अमूर्छित हो भोजन करने लगे ०, उनकी यह दृष्टियाँ (= धारणायें) हुईं—०, (और) वह तीसरे श्रमण-ब्राह्मण भी मारके···(फंदे) से नहीं छूटे। क्यों न हम वहाँ आश्रय ग्रहण करें, जहाँ मार और मार-परिषद्

---

[1] देखो पृष्ठ ४८-४९। [2] देखो पृष्ठ ९८। [3] ऊपरकी आवृत्ति। [4] देखो पृष्ठ ९९।

की गति नहीं है। यहाँ आश्रय ग्रहण कर मारके योये इस लोकामिष-रूपी निवापको···अमूर्छित हो भोजन करें।···अमूर्छित हो भोजन करनेसे मदको न प्राप्त होंगे, ० स्वेच्छाचारी न होंगे। (तब) उन्होंने वहाँ आश्रय ग्रहण किया जहाँ मार और मार-परिषद्की गति नहीं। वहाँ आश्रय ग्रहण कर···अमूर्छित हो उन्होंने मारके बोये लोकामिष-रूपी निवापको भोजन किया। ० लोकामिष-रूपी निवापमें स्वेच्छाचारी नहीं हुये। इस प्रकार भिक्षुओ! वह चतुर्थ श्रमण-ब्राह्मण मारके···(फंदे)से छूटे। जैसे भिक्षुओ! चौथे मृग थे, उन्हींके समान मैं इन चौथे श्रमण-ब्राह्मणोंको कहता हूँ।

"भिक्षुओ! कैसे मार और मार-परिषद्की गति नहीं होती?—(१) यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु कामोंसे रहित बुरी बातोंसे रहित ०[1] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—'भिक्षुने मारको अंधा कर दिया, मार-चक्षुसे अपद (= अगम्य) बन कर वह पापीसे अदर्शन हो गया। (२) और फिर ०[1] द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। (३) और फिर ०[1] तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। (४) और फिर [1] चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। (५) और फिर ०[2]—'आकाश अनन्त है'—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन होगया। (६) और फिर ०[2] विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। (७) और फिर ०[2] आकिंचन्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन होगया। (८) और फिर ०[1] नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। मार-चक्षुसे अ-पद (= अगम्य) बन कर पापीसे अदर्शन हो गया, लोकसे विसक्तिक (= अनासक्त) हो उत्तीर्ण होगया है।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया।

२६—पास-रासि(=अरिय-परियेसन)-सुत्तन्त (१।३।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। भगवान् पूर्वाह्णके समय पहिनकर, पात्र चीवर ले श्रावस्तीमें पिंड(=भिक्षाचार)के लिये प्रविष्ट हुये तब बहुतसे भिक्षु···आयुष्मान् आनन्दके पास···जाकर···बोले—

"आवुस आनन्द! भगवान्के मुखसे धर्मोपदेश सुने देर हो गई। अच्छा हो आवुस आनन्द! हमें भगवान्के मुखसे धर्मोपदेश सुननेको मिले।"

"तो आयुष्मानो! जहाँ रम्यक (=रम्मक) ब्राह्मणका आश्रम है, वहाँ चलें, शायद भगवान्के मुखसे धर्मोपदेश सुननेको मिले।"

"अच्छा, आवुस!" (कह) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया।

तब भगवान्ने श्रावस्तीमें पिंडचार कर, भोजनोपरान्त पिंडपातसे निपटकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया।—

"चलो, आनन्द! दिनके विहारके लिये (वहाँ चलें) जहाँ, मृगारमाता (=मिगार माता=विशाखा)का प्रासाद पूर्वाराम है।"

"अच्छा, भन्ते!" (कह) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ दिनके विहारके लिये मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराम···गये। तब भगवान्ने सायंकाल प्रतिसँल्लयन (=एकान्तचिन्तन, भावना)से उठ आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"चलो, आनन्द! गात्र-परिसिंचन (=नहाने)के लिये जहाँ पूर्वकोष्ठक है, वहाँ (चलें)।"

"अच्छा, भन्ते!" (कह) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ···पूर्वकोष्ठक गये। पूर्वकोष्ठकमें गात्र-परिसिंचन कर, निकल कर शरीरको सुखाते एक चीवर धारण किये खड़े हुये। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! यह पासमें रम्यक ब्राह्मणका आश्रम है। भन्ते! रम्यक ब्राह्मणका आश्रम रमणीय है=० प्रसादनीय है। अच्छा हो भन्ते! यदि भगवान् कृपाकर जहाँ रम्यक ब्राह्मणका आश्रम है (वहाँ) चलें।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकृति दी। तब भगवान् जहाँ रम्यक ब्राह्मणका आश्रम था, (वहाँ) गये। उस समय बहुतसे भिक्षु रम्यक ब्राह्मणके आश्रममें धर्मकथा कहते बैठे थे। भगवान् कथाकी समाप्तिकी प्रतीक्षा करते बाहरवाले द्वारकोष्ठक (=फाटक) पर ठहरे। तब भगवान्ने कथाकी समाप्ति जानकर खाँसकर जंजीर (=अर्गल) खटखटाई। उन भिक्षुओंने भगवान्के लिये द्वार खोल

दिया। भगवान् रम्यक ब्राह्मणके आश्रममें प्रविष्ट हो बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! किस कथाको लेकर तुम बैठे थे, क्या तुम्हारे बीचमें कथा उठी थी?"

"भन्ते! भगवान्के सम्बन्धकी ही धार्मिक-कथा लेकर हम बैठे थे, भगवान्के विषयकी कथा ही हमारे बीचमें उठी थी। इतनेमें भगवान् पहुँच गये।"

"साधु, भिक्षुओ! भिक्षुओ! श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये तुम कुल-पुत्रोंके लिये यही उचित है, कि तुम धार्मिक-कथामें बैठो। एकत्रित होनेपर भिक्षुओ! तुम्हारे लिये दो ही कर्त्तव्य है—(१) धार्मिक कथा, या (२) आर्य तूष्णीभाव (= उत्तम मौन)।

"भिक्षुओ! दो प्रकारकी पर्येषणा (= खोज, गवेषणा) हैं—(१) आर्य (= उत्तम, ज्ञानियोंकी) पर्येषणा, और (२) अनार्य पर्येषणा। क्या है भिक्षुओ! अनार्य पर्येषणा?— भिक्षुओ! कोई (पुरुष) स्वयं जाति-धर्मा (= जन्मनेके स्वभाववाला) होते जातिधर्मका ही पर्येषण (= खोज) करता है। स्वयं जराधर्मा (= बूढ़ा होना जिसका स्वभाव है) होते, जराधर्मका ही पर्येषण करता है। स्वयं व्याधिधर्मा ०। स्वयं मरण-धर्मा ०। स्वयं शोक-धर्मा ०। स्वयं संक्लेश (= मल)-धर्मा संक्लेश धर्मका ही पर्येषण करता है।

"भिक्षुओ! किसको जातिधर्मा कहे?—पुत्र, भार्या भिक्षुओ! जातिधर्मा हैं, दासी, दास जातिधर्मा हैं, भेड़-बकरी जातिधर्मा हैं, मुर्गी-सुअर (= कुक्कुट-सूकर) ०, हाथी, गाय, घोड़ा-घोड़ी०; सोना-चाँदी। भिक्षुओ! यह उपधियाँ (= भोग-पदार्थ) जातिधर्मा हैं, इनमें यह (पुरुष) ग्रथित, मूर्छित, आसक्त हो, स्वयं जातिधर्मा हो दूसरे जाति-धर्मा (पदार्थों)की पर्येषणा करता है।

"भिक्षुओ! किसको जराधर्मा कहे?—पुत्र, भार्या ०[1] जराधर्मा (पदार्थों)की पर्येषणा करता है।

"० व्याधि-धर्मा ०? ०[1]।

"० मरण-धर्मा ०? ०[1]।

"० शोक-धर्मा ०? ०[1]।

"० संक्लेश-धर्मा ०? ०[1]।

"भिक्षुओ! क्या है आर्य पर्येषणा?—भिक्षुओ! कोई (पुरुष) स्वयं जातिधर्मा होते, जाति-र्ममें दुष्परिणाम देख, अ-जात (जन्म-रहित), अनुत्तर (= सर्वोत्तम), योग-क्षेम (= मंगलमय) र्वाणकी पर्येषणा करता है। स्वयं जराधर्मा, जराधर्ममें दुष्परिणाम देख, अ-जर (= जरारहित) नुत्तर, योग-क्षेम, निर्वाणकी पर्येषणा करता है। स्वयं व्याधिधर्मा ० व्याधि-रहित ० स्वयं मरण-र्मा ० अ-मृत ० स्वयं शोक-धर्मा ० अ-शोक ०। स्वयं संक्लेश-धर्मा ० अ-संक्लिष्ट (= मलरहित) नुत्तर, योगक्षेम, निर्वाणकी पर्येषण करता है। भिक्षुओ! यह है आर्य पर्येषणा।

"मैं भी भिक्षुओ! सम्बोध (= बुद्ध-पद-प्राप्ति)से पूर्व, अ-संबुद्ध बोधिसत्त्व (= बुद्ध-पदका म्मेदवार) होते समय, स्वयं जातिधर्मा होते जाति-धर्मा (पदार्थों)की ही पर्येषणा करता ा ०। जराधर्मा ०। ० व्याधि-धर्मा ०। ० मरणधर्मा ०। ० शोकधर्मा ०। ० संक्लेश-धर्मा ०। ब मुझे…ऐसा हुआ—'क्या मैं जाति-धर्मा होते जाति-धर्मा (पदार्थों)की पर्येषणा करता हूँ? ० संक्लेशधर्मा ०? क्यों न मैं स्वयं जाति-धर्मा होते जातिधर्मा (पदार्थों)में दुष्परिणाम देख,

---

[1] ऊपरके पैरा जैसा।

अ-जात, अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाणकी पर्येषणा करूँ ? ० ० क्यों न मैं स्वयं संक्लेश-धर्मा होते, संक्लेश-धर्मा (पदार्थों)में दुष्परिणाम देख, अ-संक्लिष्ट (= निर्मल), अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाण की पर्येषणा करूँ ?

"तब मैं भिक्षुओ ! दूसरे समय तरुण, अत्यन्त काले केशोंवाला, भद्र (= सुन्दर) यौवनसे युक्त, पहिले वयस्में अनिच्छुक माता-पिताको अश्रुमुख रोते (छोड़), केश श्मश्रु (= दाढ़ी-मूँछ) मुँडा, काषाय वस्त्र पहिन घरसे बेघर बन प्रव्रजित (= संन्यासी) हुआ। सो इस प्रकार प्रव्रजित हो किंकुशल(= क्या उत्तम है)की गवेषणा करते, उत्तम शान्ति-पदको खोजते (= पर्येषणा करते) जहाँ आलार कालाम रहते थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर आलार कालामसे यह बोला—'आवुस कालाम ! इस (तुम्हारे) धर्म-विनय(= धर्म)में ब्रह्मचर्यवास करना चाहता हूँ'। ऐसा कहनेपर भिक्षुओ ! आलार कालामने मुझसे यह कहा— 'विहरो आयुष्मान् ! यह ऐसा धर्म-विनय है, (जहाँ) विज्ञ-पुरुष न चिरमें अपने आचार्यक (= विशेषज्ञता)को स्वयं जानकर साक्षात्कर प्राप्तकर विहरेगा'। सो मैंने भिक्षुओ ! न चिरमें ही=क्षिप्रही उस धर्म (= अभ्यास)को पूराकर लिया। सो मैं भिक्षुओ ! उतने मात्रसे ओठ लगे मात्रसे, कहने-कहाने मात्रसे ज्ञानवाद भी ज्ञापता था; 'मैं स्थविर (= वृद्धोंके) वादको जानता देखता (= बूझता) हूँ'—दावा करता था, और दूसरे भी। तब भिक्षुओ ! मुझे ऐसा हुआ—आलार कालाम 'श्रद्धा मात्रसे मैं इस धर्मको स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर, विहरता हूँ'—यह नहीं जतलाता। जरूर आलार कालाम इस धर्मको जानकर देखकर विहरता है। तब मैंने भिक्षुओ !···आलार कालाम···के पास जाकर···यह कहा—'आवुस कालाम ! कितना तक इस धर्मको स्वयं जानकर साक्षात्कर, प्राप्तकर हमें बतलाते हो ?' ऐसा कहनेपर भिक्षुओ ! आलार कालामने आकिंचन्यायतन[1] बतलाया।

"तब भिक्षुओ ! मुझे ऐसा हुआ—'आलार कालामके पास ही श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है। आलार कालामके पास ही वीर्य (= उद्योग) नहीं है, मेरे पास भी वीर्य है। ० स्मृति ०। ० समाधि ०। ० प्रज्ञा ०। क्यों न मैं, जिस धर्मको—'आलार कालाम स्वयं जानकर साक्षात् कर, प्राप्तकर विहरता हूँ'—कहता है; उस धर्मके साक्षात्के लिये प्रयत्न करूँ। तब मैं भिक्षुओ ! न चिरमें=क्षिप्रही उस धर्मको स्वयं जान, साक्षात् कर, प्राप्तकर विहरने लगा। तब मैं भिक्षुओ ! आलार कालामके पास जाकर···यह बोला—'आवुस कालाम ! इतने ही मात्र इस धर्मको स्वयं जान, साक्षात् कर, प्राप्तकर हमें बतलाते हो ?"

"इतने ही मात्र आवुस ! मैं इस धर्मको स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्तकर बतलाता हूँ।"

"मैं भी आवुस ! इतने मात्र इस धर्मको स्वयं जानकर ० विहरता हूँ।"

"लाभ है हमें आवुस ! सुन्दर लाभ हुआ हमें आवुस ! जो हम आप जैसे समब्रह्मचारीको देखते हैं, (जोकि) जिस धर्मको मैं स्वयं जानकर ० बतलाता हूँ, उस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहरते हो। जिस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहरते हो, उस धर्मको मैं स्वयं जानकर ० बतलाता (= उपदेशता) हूँ। जिस धर्मको मैं जानता हूँ, उस धर्मको तुम जानते हो। जिस धर्मको तुम जानते हो, उस धर्मको मैं जानता हूँ। इस प्रकार जैसे तुम, तैसा मैं, । जैसा मैं वैसे तुम। आओ अब आवुस ! (हम) दोनों इस गण (= सन्यासियोंकी जमायत)को धारण करें।"

"इस प्रकार भिक्षुओ ! आलार कालामने आचार्य होते भी मुझ अन्तेवासी

---

[1] देखो पृष्ठ २७,२८।

(= शिष्य)को समसमान (पद)पर स्थापित किया। बड़े सन्मानसे सन्मानित किया। तब भिक्षुओ! मुझे ऐसा हुआ—'यह धर्म न निर्वेद (= उदासीनता)के लिये (है), न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न उपशमके लिये, न अभिज्ञा (= दिव्य ज्ञान)के लिये, न संबोधके लिये, न निर्वाणके लिये है, केवल आकिंचन्य-आयतन (= दिव्य स्थान)में उत्पन्न होनेके लिये है।' तब मैं उस धर्मको अपर्याप्त (समझ) कर, उस धर्मसे विरक्त हो चल दिया।

"सो मैं भिक्षुओ! किंकुशल-गवेषी, अनुत्तर शांतिके श्रेष्ठ पदको खोजते जहाँ उद्रक (= उद्दक) रामपुत्र था, वहाँ गया। जाकर उद्रक रामपुत्रसे बोला—

"आवुस राम! इस धर्म-विनयमें मैं ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूँ।"

"ऐसा कहनेपर भिक्षुओ! उद्रक रामपुत्रने मुझे यह कहा—'विहरो आयुष्मान्! यह ऐसा धर्म-विनय है, जिसमें विज्ञ पुरुष न-चिरमें अपने आचार्यक (= विशेषज्ञता) को स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्तकर विहरेगा।" ०[1]। तब मैंने भिक्षुओ!···उद्रक रामपुत्र···के पास जाकर यह कहा—'आवुस राम! कितने तक इस धर्मको स्वयं जानकर ० हमें बतलाते हो?' ऐसा कहनेपर भिक्षुओ! उद्रक रामपुत्रने नैवसंज्ञा-नाऽसंज्ञा-आयतन[2] बतलाया।

"तब भिक्षुओ! मुझे ऐसा हुआ—'उद्रक रामपुत्रके पासही श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है। ० वीर्य ०। ० स्मृति ०। ० समाधि ०। ० प्रज्ञा ०। क्यों न मैं ०[1]। तब मैं उद्रक रामपुत्रके पास जाकर बोला—

"आवुस राम! इतने ही मात्र इस धर्मको स्वयं जानकर ० हमें बतलाते हो?"

"इतनाही मात्र आवुस! मैं इस धर्मको स्वयं जानकर ० बतलाता हूँ।"

"मैं भी आवुस! ०[1] लाभ है आवुस! ०[1]। इस प्रकार जिस धर्मको मैं स्वयं जानकर ० बतलाता हूँ, उस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहरते हो। जिस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहरते हो, उसे राम स्वयं जानकर ० बतलाता है ०[1]। इस प्रकार जैसा राम है, वैसे तुम हो, जैसे तुम (हो) वैसा राम है। ०[1] आओ आवुस! हम दोनों इस गण (= भिक्षुओंकी जमायत) को धारण करें।"

"इस प्रकार भिक्षुओ! सब्रह्मचारी होतेभी, मुझे आचार्यके पदपर स्थापित किया, (और) बड़े सन्मानसे सन्मानित किया। तब भिक्षुओ मुझे ऐसा हुआ—'यह धर्म न निर्वेदके लिये है ० [1]। सो मैं भिक्षुओ! उस धर्मको अपर्याप्त (समझ)कर, उस धर्मसे विरक्त हो चल दिया।

"सो मैं भिक्षुओ! किंकुशल-गवेषी ० शांतिके श्रेष्ठ पदको खोजते, मगधमें क्रमशः चारिका (= रामत)करते जहाँ उरुवेला सेनानी निगम था वहाँ पहुँचा। वहाँ मैंने एक रमणीय = प्रासादिक भूमि-भागमें, वन खंडमें एक नदीको बहते देखा जिसका घाट, रमणीय और श्वेत था। चारों ओर फिरनेके लिये गाँव थे। वहाँ मुझे यह हुआ—यह भूमि-भाग रमणीय है। यह वनखंड प्रासादिक है। श्वेत, सुन्दर घाटवाली रमणीय नदी[3] बह रही है। चारों ओर फिरनेके लिये गाँव हैं। परमार्थमें उद्योगी कुलपुत्रके लिये ध्यान-रत होनेके वास्ते यह बहुत उपयोगी है। तब मैं, भिक्षुओ!—यही ध्यान योग्य स्थान है (सोच) वहाँ बैठ गया। सो भिक्षुओ! स्वयं जन्मने के स्वभाववाले मैंने जन्मनेके दुष्परिणामको जानकर अजन्मा, अनुपम, योगक्षेम निर्वाणको खोजता अजन्मा, अनुपम, योगक्षेम निर्वाणको पालिया। स्वयं जरा-धर्मवाला होते मैंने जरा-धर्मके दुष्परिणामको जानकर, जरा-रहित, अनुपम, योगक्षेम निर्वाणको खोज अजर, अनुपम, योगक्षेम

निर्वाणको पालिया। स्वयं व्याधि-धर्मा ० व्याधि धर्म-रहित ० स्वयं मरण-धर्मा ० अमर ०। स्वयं शोकधर्म-वाला ० शोकरहित ०। स्वयं संक्लेश (= मल)-युक्त ० संक्लेश रहित ०। मेरा ज्ञान, दर्शन (=साक्षात्कार) बन गया, मेरे चित्तकी मुक्ति अचल होगई; यह अन्तिम जन्म है, फिर अब (दूसरा) जन्म नहीं (होगा)।

"तब भिक्षुओ! मुझे ऐसा हुआ—

"मैंने गंभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण, पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्मको पालिया। यह जनता काम-तृष्णा (= आलय) में रमण करने वाली, काम-रत, काममें प्रसन्न है। काममें रमण करनेवाली इस जनताके लिये, यह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य-समुत्पाद है, वह दुर्दर्शनीय है। और यह भी दुर्दर्शनीय है, जो कि यह सभी संस्कारोंका शमन, सभी मलोंका परित्याग, तृष्णा-क्षय, विराग, निरोध (=दुःख-निरोध), और निर्वाण है। मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मेरे लिये यह तरद्दुद और पीड़ा (मात्र) होगी।

"उसी समय मुझे पहिले कभी न सुनी यह अद्भुत गाथायें सूझ पड़ीं—

'यह धर्म पाया कष्टसे, इसका न युक्त प्रकाशना।
नहिं राग-द्वेष-प्रलिप्तको है सुकर इसका जानना॥
गंभीर उल्टी-धार-युत दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका।
तम-पुंज-छादित रागरतद्वारा न संभव देखना॥'

"मेरे ऐसा समझनेके कारण, मेरा चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुक अल्पउत्सुकताकी ओर झुक गया। तब सहापति ब्रह्माने मेरे चित्तकी बातको जानकर ख्याल किया—'लोक नाश हो जायगा रे! लोक विनाश हो जायगा रे! जब तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्धका चित्त धर्म-प्रचारकी ओर न झुक, अल्प-उत्सुकता (= उदासीनता) की ओर झुक जाये' (ऐसा ख्यालकर) सहापति ब्रह्मा, जैसे बलवान् पुरुष (बिना परिश्रम) फैली बाँहको समेट ले, समेटी बाँहको फैलादे, ऐसेही ब्रह्मलोकसे अन्तर्धान हो, मेरे सामने प्रकट हुआ। फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (= चद्दर) एक कंधेपर करके, दाहिने जानुको पृथिवीपर रख, जिधर मैं था उधर हाथ जोड़, कहा—'भन्ते! भगवान् धर्मोपदेश करें, सुगत! धर्मोपदेश करें। अल्प मलवाले प्राणी भी हैं, धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे। (उपदेश करें) धर्मको सुननेवाले (भी होवेंगे)'। सहापति ब्रह्माने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—

'मगधमें मलिन चित्तवालोंसे चिन्तित, पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ। अमृतके द्वारको खोलनेवाले विमल (पुरुष) द्वारा जाने गये इस धर्मको (अब लोक) सुनें। पथरीले पर्वतके शिखरपर खड़ा (पुरुष) जैसे चारों ओर जनताको देखे। उसी तरह हे सुमेध! हे सर्वत्र नेत्र वाले! धर्मरूपी महलपर चढ़ सब जनताको देखो। हे शोक-रहित! शोक-निमग्न जन्म-जरासे पीड़ित जनताकी ओर देखो। उठो वीर! हे संग्रामजित्! हे सार्थवाह! उऋण-ऋण! जगमें विचरो! धर्मप्रचार करो! भगवान्! जाननेवाले मिलेंगे।'

"तब मैंने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर, और प्राणियोंपर दया करके, बुद्ध-नेत्रसे लोकका अवलोकन किया। बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुये मैंने जीवोंको देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझानेमें सुगम, प्राणियोंको भी देखा। उनमें कोई कोई परलोक और दोषसे भय करते, विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी (= पद्मसमुदाय) या पुंडरीकिनीमें से कितने ही उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें पैदा हुये उदकमें बँधे, उदकसे बाहर न निकल

(उदकके) भीतरही डूबकर पोषित होते हैं। कोई कोई उत्पल (=नीलकमल), पद्म (=रक्तकमल) या पुंडरीक (=श्वेतकमल) उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी) उदकके बराबरही खड़े होते हैं। कोई कोई उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी), उदकसे बहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (हो) खड़े होते हैं। इसी तरह भगवान्‌ने बुद्धचक्षुसे लोकको देखते हुये—अल्पमल, तीक्ष्णबुद्धि, सुस्वभाव, सुबोध्य प्राणियोंको देखा; जो परलोक तथा बुराईसे भय खाते विहर रहे थे। देखकर सहापति ब्रह्मासे गाथाद्वारा कहा—

'उनके लिये अमृतका द्वार बंद होगया है, जो कानवाले होनेपर भी, श्रद्धाको छोड़ देते हैं। हे ब्रह्मा! (वृथा) पीड़ाका ख्यालकर मैं मनुष्योंको निपुण, उत्तम, धर्मको नहीं कहता था।'

"तब ब्रह्मा सहापति—'भगवान्‌ने धर्मोपदेशके लिये मेरी बात मानली' यह जान, मुझको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान होगया। उस समय मेरे (मनमें) हुआ—'मैं पहिले किसे इस धर्मकी देशना (=उपदेश) करूँ; इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा?' फिर मेरे (मनमें) हुआ—'यह आलार-कालाम पण्डित, चतुर, मेधावी चिरकालसे अल्प-मलिन-चित्त है; मैं पहिले क्यों न आलार-कालामको ही धर्मोपदेश करूँ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा।' तब (गुप्त) देवताने मुझसे कहा—'भन्ते! आलार-कालामको मरे सप्ताह होगया।' मुझको भी ज्ञान-दर्शन हुआ—'आलार कालामको मरे सप्ताह होगया।' तब मेरे (मनमें) हुआ—'आलार कालाम महा आजानीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, तो शीघ्रही जान लेता।' फिर मेरे (मनमें) हुआ—'यह उद्दक-रामपुत्र पण्डित, चतुर, मेधावी, चिरकालसे अल्प-मलिन चित्त है, क्यों न मैं पहिले उद्दक रामपुत्रको ही धर्मोपदेश करूँ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा।' तब (गुप्त=अन्तर्धान) देवताने आकर कहा—'भन्ते! रातही उद्दक रामपुत्र मर गया। मुझको भी ज्ञान-दर्शन हुआ।'''। फिर मेरे (मनमें) हुआ—'पञ्चवर्गीय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे, उन्होंने साधनामें लगे मेरी सेवा की थी। क्यों न मैं पहिले पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको ही धर्मोपदेश करूँ।' मैंने सोचा—'इस समय पञ्चवर्गीय भिक्षु कहाँ विहर रहे हैं?'' मैंने अ-मानुष विशुद्ध दिव्य चक्षुसे देखा—''पञ्चवर्गीय भिक्षु वाराणसीके [1]ऋषिपतन मृग-दावमें विहार कर रहे हैं।'

"तब मैं उरुवेलामें इच्छानुसार विहारकर, जिधर वाराणसी है, उधर चारिका (=रामत) के लिये निकल पड़ा। उपक आजीवक[2] ने देखा—मैं बोधि (=बोधगया) और गयाके बीचमें जा रहा हूँ। देखकर मुझसे बोला—"आयुष्मान् (आवुस)! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरा छवि-वर्ण (=कांति) परिशुद्ध तथा उज्वल है। किसको (गुरु) मानकर हे आवुस! तू प्रव्रजित हुआ है? तेरा शास्ता (=गुरु) कौन? तू किसके धर्मको मानता है? 'यह कहनेपर मैंने उपक आजीवकसे गाथामें कहा—

'मैं सबको पराजित करनेवाला, सबका जाननेवाला हूँ; सभी धर्मोंमें निर्लेप हूँ। सर्व-त्यागी (हूँ), तृष्णाके क्षयसे विमुक्त हूँ; मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा।

मेरा आचार्य नहीं है मेरे सदृश (कोई) विद्यमान नहीं।
देवताओं सहित (सारे) लोकमें मेरे समान पुरुष नहीं।

---

[1] वर्तमान सारनाथ, बनारस। [2] उस समयके अहवादी नग्न साधुओंका एक सम्प्रदाय, नन्द वात्स्य, कृश सांकृत्य और मक्खली-गोसाल जिसके प्रधान आचार्य थे।

मैं संसारमें अर्हत् हूँ, अपूर्व शास्ता (= गुरु) हूँ।
मैं एक सम्यक् संबुद्ध, शीतल तथा निर्वाणप्राप्त हूँ।
धर्मका चक्का घुमानेके लिये काशियोंके नगरको जारहा हूँ।
(वहाँ) अन्धे हुये लोकमें अमृत-दुन्दुभी बजाऊँगा॥'

'आयुष्मन् ! तू जैसा दावा करता है, उससे तो अनन्त जिन हो सकता है।'

'मेरे ऐसेही सत्त्व जिन होते हैं, जिनके कि आस्रव (= क्लेश = मल) नष्ट हो गये हैं। मैंने पाप (= बुरे)-धर्मोंको जीत लिया है, इसलिये हे उपक ! मैं जिन हूँ।' ऐसा कहनेपर उपक आजीवक—'होवोगे आवुस !' कह, शिर हिला, बेरास्ते चल दिया। "तब मैं, भिक्षुओ ! क्रमशः यात्रा (= चारिका) करते हुए, जहाँ वाराणसी ऋषि-पतन मृग-दाव था, जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु थे, वहाँ पहुँचा। दूरसे आते हुये मुझे पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने देखा। देखतेही आपसमें पक्का किया—'आवुसो ! यह बाहुलिक (= बहुत जमा करने वाला) साधना-भ्रष्ट बाहुल्य-परायण (= जमा करनेमें लगा) श्रमण गौतम आ रहा है। इसे अभिवादन नहीं करना चाहिये, न प्रत्युत्थान (= सत्कारार्थ खड़ा होना) करना चाहिये। न इसके पात्र चीवरको (आगे बढ़कर) लेना चाहिये, केवल आसन रख देना चाहिये, यदि इच्छा होगी तो बैठेगा।'

"जैसे जैसे मैं पञ्चवर्गीय भिक्षुओंके समीप आता गया, वैसेही वैसे वह…अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रह सके। (अन्तमें) मेरे पास आ, एकने मेरे पात्र चीवर लिये, एकने आसन बिछाया; एकने पादोदक (= पैर धोनेका जल) पादपीठ (= पैरका पीढ़ा), पादकठलिका (पैर रगड़नेकी लकड़ी) ला पास रक्खी। मैं बिछाये आसनपर बैठा। बैठकर मैंने पैर धोये। वह मेरे लिये 'आवुस' शब्दका प्रयोग करते थे। ऐसा करनेपर मैंने कहा—'नहीं भिक्षुओ ! तथागतको नाम-लेकर या 'आवुस' कहकर मत पुकारो। भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हैं। इधर कान दो, मैंने जिस अमृतको पाया है, उसका तुम्हें उपदेश करता हूँ। उपदेशानुसार आचरण करनेपर, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो संन्यासी होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्यफलको, इसी जन्ममें शीघ्रही स्वयं जान कर = साक्षात्कार कर = लाभ कर विचरोगे।'

"ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने मुझे कहा—'आवुस गौतम ! उस साधनामें, उस धारणामें, उस दुष्कर तपस्यामें भी तुम आर्योंके ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाको विशेषता, उत्तर-मनुष्य-धर्म (= दिव्य शक्ति)को नहीं पा सके, फिर अब बाहुलिक साधना-भ्रष्ट, बाहुल्यपरायण तुम आर्य-ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा, उत्तर-मनुष्य-धर्मको क्या पाओगे ?'

"यह कहनेपर मैंने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—'भिक्षुओ ! तथागत बाहुलिक नहीं हैं, और न साधनासे भ्रष्ट हैं, न बाहुल्यपरायण हैं। भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हैं ०। ० लाभकर विहार करोगे।

"दूसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने मुझे कहा—'आवुस ! गौतम ०।' दूसरी बार भी मैंने फिर (वही) कहा०। तीसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने मुझसे (वही) कहा०। ऐसा कहनेपर मैंने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको कहा—'भिक्षुओ ! इससे पहिले भी क्या मैंने कभी इस प्रकार कहा है ?'

'भन्ते ! नहीं'

'भिक्षुओ ! तथागत अर्हत्० विहार करोगे।'

"(तब) मैं पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको समझानेमें समर्थ हुआ।

"वहाँ मैं दो भिक्षुओंको उपदेश करता था, तो तीन भिक्षु भिक्षाके लिये जाते थे। तीन

भिक्षु भिक्षाचार करके जो लाते थे, उसीसे छःओं जने निर्वाह करते थे। (जब) तीन भिक्षुओंको मैं उपदेश करता था, तो दो भिक्षु भिक्षाके लिये जाते थे। दो भिक्षु भिक्षाचार करके जो लाते थे, उसीसे छःओं जने निर्वाह करते थे। तब भिक्षुओ ! इस प्रकार मेरे उपदेश करनेसे, अववाद करनेसे पञ्चवर्गीय भिक्षु स्वयं जन्मनेके स्वभाववाले, जन्मनेके दुष्परिणामको जानकर ०[1] फिर अब (दूसरा) जन्म नहीं।'

"भिक्षुओ ! यह पाँच कामगुण (= काम-भोग) हैं। कौनसे पाँच ?—(१) चक्षुद्वारा ज्ञेय इष्ट=कान्त=मनाप=प्रियरूप=कामोपसंहित, रंजनीय रूप। (२) श्रोत्रद्वारा ज्ञेय ० शब्द। (३) घ्राणद्वारा ज्ञेय ० गंध। (४) जिह्वा द्वारा ज्ञेय० रस। (५) काया (= त्वक्) द्वारा ज्ञेय० स्प्रष्टव्य। भिक्षुओ ! यह पाँच कामगुण हैं। भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच कामगुणोंमें बँधे, मूर्छित (= गर्क), लिप्त हो, (उनके) दुष्परिणामको न देख, निकलनेकी बुद्धि न रख (उनका) उपभोग करते हैं; उनके लिये समझना चाहिये कि यह अ-नय (= बुराई)में पड़े हैं, दुःखमें पड़े हैं, पापी (दुर्भावनाओं की इच्छानुसार करनेवाले) हैं। जैसे, भिक्षुओ ! जंगली मृग पाश-राशि (= जालके ढेर)में बँधा सोवे; उसे समझना होगा—(यह मृग) बुराईमें पड़ा है, व्यसनमें पड़ा है। शिकारीकी इच्छानुसार करनेवाला है। शिकारीके आने पर (अपनी) इच्छाके अनुसार नहीं भाग सकेगा। इसी प्रकार भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच काम-गुणोंमें बँधे ० पापी (= दुर्भावनाओं)के इच्छानुसार करनेवाले हैं।

"भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच काम-गुणोंमें न-बँधे, अ-मूर्छित, अ-लिप्त हो, दुष्परिणामको देख, निकलनेकी बुद्धि रख उपभोग करते हैं; उनके लिये समझना चाहिये; कि यह अ-नयमें पड़े नहीं हैं, व्यसनमें पड़े नहीं हैं; पापीकी इच्छानुसार करनेवाले नहीं हैं। जैसे, भिक्षुओ ! जंगली मृग पाश-राशिसे न बँधा सोवे, उसके लिये समझना होगा—यह मृग अ-नयमें नहीं पड़ा है। व्यसनमें नहीं पड़ा है। शिकारीकी इच्छानुसार नहीं करनेवाला है। शिकारीके आनेपर अपनी इच्छाके अनुसार भाग सकेगा। इसी प्रकार भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच कामगुणोंमें न-बँधे ० पापीकी इच्छानुसार करनेवाले नहीं हैं। जैसे, भिक्षुओ ! जंगली मृग वनके चलने पर निश्चिन्त चलता है, निश्चिन्त खड़ा होता है, निश्चिन्त बैठता है, निश्चिन्त लेटता है। सो क्यों ?—भिक्षुओ ! (वह) शिकारीकी पहुँचसे बाहर है। इसी प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु ०[2] प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। भिक्षुओ ! उस भिक्षुके लिये इसलिये कहा जाता है—इसने मारको अंधा कर दिया; मार की आँख को···मारकर, वह पापीके सामनेसे अन्तर्धान हो गया।

"और फिर, भिक्षुओ ! भिक्षु ०[2] द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। भिक्षुओ ! इस भिक्षुके लिये कहा जाता है—० पापीके सामनेसे अन्तर्धान हो गया।

" ०[2] तृतीय ध्यान ०।

" ०[2] चतुर्थ ध्यान ०।

" ०[2] आकाशानन्त्यायतन ०।

" ०[2] विज्ञानानन्त्यायतन ०।

" ०[2] आकिंचन्यायतन ०।

" ०[2] नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन ०।

---

[1] देखो पृष्ठ १०५।

[2] देखो पृष्ठ १५,२७,२८।

"०[1] संज्ञावेदित-निरोधको प्राप्त हो विहरता है। प्रज्ञासे देखकर उसके आस्रव (=चित्त-मल) नष्ट होगये। भिक्षुओ! इस भिक्षुके लिये कहा जाता है—० पापीके सामनेसे अन्तर्धान हो गया। यह लोकके फन्देके पार होगया। वह निश्चिन्त चलता है, निश्चिन्त खड़ा होता है, निश्चिन्त बैठता है, निश्चिन्त सोता है। सो क्यों?—भिक्षुओ! वह पापीकी पहुँचसे बाहर हो गया।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणको अभिनंदित किया।

२७—चूल-हत्थिपदोपम-सुत्तन्त (१।३।७)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय जाणुस्सोणि (= जानुश्रोणि) ब्राह्मण सर्वश्वेत घोड़ियोंके रथपर सवार हो, मध्याह्नको श्रावस्तीसे बाहर जा रहा था। जानुश्रोणि ब्राह्मणने पिलोतिक परिव्राजकको दूरसे ही आते देखा। देखकर पिलोतिक परिव्राजकसे यह कहा—

"हन्त! वात्स्यायन (= वच्छायन)! आप मध्याह्नमें कहाँसे आ रहे हैं?"

"भो! मैं श्रमण गौतमके पाससे आ रहा हूँ।"

"तो आप वात्स्यायन श्रमण गौतमकी प्रज्ञा, पाण्डित्यको क्या समझते हैं? पंडित मानते हैं?"

"मैं क्या हूँ, जो श्रमण गौतमका प्रज्ञा-पांडित्य जानूँगा?"

"आप वात्स्यायन उदार (= बड़ी) प्रशंसाद्वारा श्रमण गौतमकी प्रशंसा कर रहे हैं?"

"मैं क्या हूँ, और मैं क्या श्रमण गौतमकी प्रशंसा करूँगा? प्रशस्त प्रशस्त (ही) हैं। आप गौतम, देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं।"

"आप वात्स्यायन किस कारणसे श्रमण गौतमके विषयमें इतने अभिप्रसन्न हैं?"

"(जैसे) कोई चतुर नाग-वनिक (= हाथीके जंगलका आदमी) नाग-वनमें प्रवेश करे। वह वहाँ बड़े भारी (लंबे-चौड़े) हाथीके पैर (= हस्ति-पद)को देखे। उसको विश्वास हो जाय—अरे, बड़ा भारी नाग है। इसी प्रकार जब मैंने श्रमण गौतमके चार पद देखे, तो विश्वास होगया—कि (वह) भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाख्यात है, भगवान्का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न (= सुन्दर प्रकारसे रास्तेपर लगा) है। कौनसे चार?—(१) मैं देखता हूँ, बालकी खाल उतारनेवाले, दूसरोंसे वाद-विवाद किये हुये, निपुण, कोई कोई क्षत्रिय पंडित—मानों प्रज्ञामें स्थित, (तत्त्व) से दृष्टिगत (= धारणामें स्थित तत्त्व)को खंडा-खंडी करते चलते हैं—सुनते हैं—श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आवेगा। वह प्रश्न तैयार करते हैं—'इस प्रश्नको हम श्रमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे। ऐसा हमारे पूछनेपर, यदि वह ऐसा उत्तर देगा; तो हम इस प्रकार वाद (= शास्त्रार्थ) रोपेंगे।' वह सुनते हैं—श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आगया। वह जहाँ श्रमण गौतम होता है, वहाँ जाते हैं। उनको श्रमण गौतम धार्मिक उपदेश कर दर्शाता है, समादपन,=समुत्तेजन, संप्रशंसन करता है। वह श्रमण गौतमसे धार्मिक उपदेश द्वारा संदर्शित, समादपित, समुत्तेजित, संप्रशंसित हो, श्रमण गौतमसे प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके (साथ) वाद कहाँसे रोपेंगे? बल्कि और भी श्रमण गौतमके ही श्रावक (= शिष्य) हो जाते हैं। भो! जब मैंने श्रमण गौतममें यह प्रथम पद देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं ०।

"(२) और फिर भो ! मैं देखता हूँ, यहाँ कोई कोई बालकी खाल उतारने वाले, दूसरोंसे वाद-विवादमें सफल, निपुण ब्राह्मण पण्डित ०। मैंने श्रमण गौतममें यह दूसरा पद देखा।

"(३) ० गृहपति (= वैश्य)-पण्डित। ० यह तीसरा पद ०।

"(४) ० श्रमण (= प्रव्रजित)-पण्डित ०। वह श्रमण गौतमके धार्मिक उपदेशद्वारा ० समुत्तेजित संप्रशंसित हो, श्रमण गौतमसे प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके (साथ) वाद कहाँसे रोपेंगे? बल्कि और भी श्रमण गौतमसे घरसे बेघर (होकर मिलनेवाली) प्रव्रज्याके लिये आज्ञा माँगते हैं। उनको श्रमण गौतम प्रव्रजित करता है, उपसम्पन्न करता है। वह वहाँ प्रव्रजित हो, अकेले एकान्तसेवी, प्रमादरहित, तत्पर, आत्म-संयमी हो विहार करते, अचिरहीमें, जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर, विहरते हैं। वह ऐसा कहते हैं—'मनको भो! नाश किया, मनको भो! प्र-नाश किया। हम पहिले अ-श्रमण होते हुये भी 'हम श्रमण हैं'—दावा करते थे, अ-ब्राह्मण होते हुये भी 'हम ब्राह्मण हैं'—दावा करते थे। अन्-अर्हत् होते हुये भी 'हम अर्हत् हैं'—दावा करते थे। अब हम श्रमण हैं, अब हम ब्राह्मण हैं, अब हम अर्हत् हैं।' श्रमण गौतममें जब इस चौथे पदको देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं ०। भो! मैंने जब इन चार पदोंको श्रमण गौतममें देखा, तब मुझे विश्वास हो गया ०।"

ऐसा कहनेपर जानुश्रोणी ब्राह्मणने सर्व-श्वेत घोड़ोंके रथसे उतरकर, एक कंधेपर उत्तरासंग (= चादर) करके, जिधर भगवान् थे उधर अञ्जलि जोड़कर, तीन बार यह उदान कहा—"[१]नमस्कार है, उस भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको,' 'नमस्कार है ०।' 'नमस्कार है ०।' क्या मैं कभी किसी समय उन आप गौतमके साथ मिल सकूँगा? क्या कभी कोई कथा-संलाप हो सकेगा?'

तब जानु श्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ ० संमोदनकर···(कुशलप्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये जानु-श्रोणि ब्राह्मणने, जो कुछ पिलोतिक परिव्राजकके साथ कथा-संलाप हुआ था, सब भगवान्से कह दिया। ऐसा कहनेपर भगवान्ने जानु-श्रोणि ब्राह्मणसे कहा—

"ब्राह्मण! इतने (ही) विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण नहीं होती। ब्राह्मण! जिस प्रकारके विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण होती है, उसे सुनो और मनमें (धारण) करो···।"

"अच्छा भो!" कह जानु-श्रोणि ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने कहा—"जैसे ब्राह्मण नाग-वनिक नाग-वनमें प्रवेश करे। वहाँपर नाग-वनमें वह बड़े भारी ० हस्ति-पदको देखे। जो चतुर-नाग-वनिक होता है वह विश्वास नहीं करता—'अरे! बड़ा भारी नाग है।' किसलिये? ब्राह्मण! नाग-वनमें वामकी (= बौनी) नामकी हथिनियाँ भी महा-पदवाली होती हैं, उनका वह पैर हो सकता है। उसके पीछे चलते हुए वह नाग-वनमें बड़े भारी···(लम्बे चौड़े)···हस्ति-पद और ऊँचे डीलको देखता है। जो चतुर नाग-वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता—'अरे बड़ा भारी नाग है'। किसलिये? ब्राह्मण! नागवनमें ऊँची कालारिका नामक हथिनियाँ बड़े पैरोंवाली होती हैं, यह उनका पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है, अनुगमन करते नाग-वनमें देखता है—बड़े भारी लम्बे चौड़े हस्ति-पद, ऊँचे डील और ऊँचे दाँतोंसे आरञ्जित (प्राणी)को। जो चतुर नाग-वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता ०। सो किसलिये? ब्राह्मण! नाग-वनमें ऊँची करेणुका नामक हथिनियाँ

[१] 'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स'।

महा-पदवाली होती हैं। वह उनका भी पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है। उसका अनुगमन करते नागवनमें, बड़े भारी,… (लम्बे-चौड़े) हस्ति-पद, ऊँचे डील, ऊँचे दाँतोंसे सुशोभित (प्राणी), और शाखाको ऊँचेसे टूटा देखता है। और वहाँ वृक्षके नीचे, या चाँदेमें जाते, खड़े, बैठे या लेटे उस नागको देखता है। वह विश्वास करता है, यही वह महानाग है।

"इसी प्रकार ब्राह्मण यहाँ तथागत, अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-आचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुत्तर पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह इस देव-मार-ब्रह्मा सहित लोक, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित प्रजाको, स्वयं जान कर, साक्षात् कर, समझाते हैं। वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याणवाले धर्मका उपदेश करते हैं। अर्थ-सहित व्यंजन-सहित, केवल परिपूर्ण परिशुद्ध, ब्रह्म-चर्यको प्रकाशित करते हैं। उस धर्मको गृह-पति या गृह-पतिका पुत्र, या और किसी छोटे कुलमें उत्पन्न (पुरुष) सुनता है। वह उस धर्मको सुन-कर तथागतके विषयमें श्रद्धा लाभ करता है। वह उस श्रद्धा-लाभसे संयुक्त हो, यह सोचता है—गृह-वास जंजाल मैलका मार्ग है। प्रव्रज्या मैदान (= चौड़ा) है। इस एकान्त सर्वथा-परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, खरादे शंख जैसे ब्रह्मचर्यका पालन, घरमें बसते हुयेके लिये सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर-दाढ़ी मुँड़ा कर, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ? सो वह दूसरे समय अपनी अल्प (=थोड़ी) भोग-राशि, या महा-भोग-राशिको छोड़, अल्प-ज्ञाति-मंडल या महा-ज्ञाति-मंडलको छोड़, सिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होता है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, भिक्षुओंकी शिक्षा, समान-जीविकाको प्राप्त हो, प्राणातिपात छोड़ प्राणहिंसासे विरत होता है। दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, लज्जी, दयालु, सर्व-प्राणों सर्व-प्राण-भूतोंका हित और अनुकंपक हो, विहार करता है। अ-दिन्नादान (= चोरी) छोड़ दिन्नादायी (= दियेको लेनेवाला), दत्त-प्रति-कांक्षी (= दियेका चाहनेवाला),…पवित्रात्मा हो, विहरता है। अ-ब्रह्मचर्यको छोड़कर ब्रह्म-चारी, ग्राम्यधर्म मैथुनसे विरत हो, आर-चारी (= दूर रहनेवाला) होता है। मृषावादको छोड़, मृषावादसे विरत हो, सत्य-वादी, सत्य-संध, लोकका अ-विसंवादक = विश्वास-पात्र…होता है। पिशुन-वचन (= चुगली) छोड़, पिशुन-वचनसे विरत होता है,—यहाँ सुनकर इनके फोड़नेके लिये, वहाँ नहीं कहनेवाला होता; या, वहाँ सुनकर उनके फोड़नेके लिये, यहाँ कहनेवाला नहीं होता। इस प्रकार भिन्नों (= फूटों)को मिलानेवाला, मिले हुओंको भिन्न न करनेवाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनन्दित हो, समग्र (= एकता)-करणी वाणीका बोलने-वाला होता है, परुष (= कटु) वचनको छोड़, परुष वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी… कर्ण-सुखा, प्रेमणीया, हृदयङ्गमा, पौरी (= नागरिक, सभ्य) बहुजन-कान्ता = बहुजन-मनापा है; वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़कर प्रलापसे विरत होता है। काल-वादी (= समय देखकर बोलनेवाला), भूत (= यथार्थ)वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी हो, तात्पर्य-सहित, पर्यन्त-सहित, अर्थ-सहित, निधान-वती वाणीका बोलनेवाला होता है।

"वह बीज-समुदाय भूत-समुदायके विनाश[1] (= समारंभ)से विरत होता है। एका-हारी, रातको उपरत = विकाल (= मध्याह्नोत्तर) भोजनसे विरत होता है। माला, गंध और विलेपनके धारण, मंडन और विभूषणसे विरत होता है। उच्चशयन और महाशयन (= राजसी शय्या)से विरत होता है। जातरूप(= सोना)-रजतके प्रतिग्रहणसे विरत होता है। कच्चे अनाजके प्रतिग्रहण (= लेना)से विरत होता है। कच्चा मांस लेनेसे विरत होता है। स्त्री-कुमारी ०।

[1] समारम्भ = समालम्भ = हिंसा, जैसे अश्वालम्भ, गवालम्भ।

दासी-दास ०। भेड़-बकरी ०। मुर्गी-सूअर ०। हाथी-गाय ०। घोड़ा-घोड़ी ०। खेत-घर ० दूत बनकर जाने··· ०। क्रय-विक्रय ०। तराजूकी ठगी, काँसेकी ठगी, मान (= सेर मन आदि की ठगी ०। घूस, वंचना, जाल-साजी, कुटिल-योग ०। छेदन, वध, बंधन, डाका मारं आलोप (ग्राम आदिका विनाश) करने, डाका डालने ०।

"वह शरीरपरके चीवरसे, पेटके खानेसे सन्तुष्ट होता है। वह जहाँ जहाँ जाता है, (अप सामान) लिये ही जाता है; जैसे कि पक्षी जहाँ कहीं उड़ता है, अपने पत्र-भार सहितही उड़ है। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवरसे, पेटके खानेसे, सन्तुष्ट होता है। ०। वह इस प्रकार आर शील (= निर्दोष सदाचारको)-स्कंध (= राशि)से युक्त हो, अपनेमें (= अध्यात्म) निर्दो सुख अनुभव करता है।

"वह चक्षुसे रूपको देखकर, निमित्त (= लिंग, आकृति आदि) और अनुव्यंजनका ग्रह करनेवाला नहीं होता। चूँकि चक्षु इन्द्रियको अ-रक्षित रख विहरनेवालेको, राग द्वेष पाप = अ कुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये उसको रक्षित रखता (= संवर करता) है। च इन्द्रियकी रक्षा करता है = चक्षु इन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है। वह श्रोतसे शब्द सुन निमित्त और अनुव्यंजनका ग्रहण करनेवाला नहीं होता ०। घ्राणसे गंध ग्रहणकर ०। जिह्वा रस ग्रहणकर ०। कायासे स्पर्श ग्रहणकर ०। मनसे धर्म ग्रहण कर ०। इस प्रकार वह आ इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो, अपनेमें निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह आने जानेमें, जानकर करनेवाला होता है। अवलोकन विलोकनमें, संप्रजन्य-यु (= जानकर करनेवाला) होता है। समेटने-फैलानेमें संप्रजन्य-युक्त होता है। संघाटी पात्र-चीव धारण करनेमें ०। खाना-पीना भोजन-आस्वादनमें ०। पाखाना-पेशाबके काममें ०। जाते-ख होते, बैठते, सोते-जागते, बोलते-चुप रहते, संप्रजन्य-युक्त होता है। वह इस आर्य शील-स्कंध युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, एकान्तमें—अरण वृक्षके नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरि-गुहा, श्मशान, वन-प्रान्त, चौड़े, या पुआलके गंजमें—वास कर है। वह भोजनके पश्चात्···आसन मार कर, कायाको सीधा कर, स्मृतिको सन्मुख रख बैठ है। वह लोकमें (१) अभिध्या (= लोभ)को छोड़, अभिध्या-रहित-चित्त हो, विहरता है चित्तको अभिध्यासे परिशुद्ध करता है। (२) व्यापाद (= क्रोध)-दोषको छोड़कर, व्याप रहित चित्तसे, सर्व प्राणियोंका हितानुकम्पी हो, विहरता है; व्यापाद दोषसे चित्तको परिशु करता है। (३) स्त्यानमृद्ध (= शरीर-मनके आलस)को छोड़, स्त्यान-मृद्ध-रहित हो, आलो संज्ञावाला, स्मृति, सम्प्रजन्यसे युक्त हो विहरता है। औद्धत्य-कौकृत्यको छोड़ अन्-उद्धत भीतरसे शान्त हो, विहरता है। (४) औद्धत्य-कौकृत्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (५ विचिकित्सा (= सन्देह)को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो, कुशल (= उत्तम)-धर्मोंमें विवा रहित (= अकथंकथी) हो, विहरता है; चित्तको विचिकित्सासे परिशुद्ध करता है।

"वह इन पाँच नीवरणोंको चित्तसे छोड़, उप-क्लेशों (= चित्त-मलों)को जा (उनके) दुर्बल करनेके लिये, कामोंसे पृथक् हो, अ-कुशल-धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क, स-विच विवेकसे उत्पन्न, प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथ गतका पद कहा जाता है, यह (पद) भी तथागतसे सेवित है, यह (पद) भी तथागत-रंजि है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेही में विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान् धर्म स्वाख्यात है, भगवान्‌का श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु वितर्क और विचारके उपशांत होनेपर, भीतरके संप्रसा

(= प्रसन्नता) = चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त हो, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले, द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागतका पद कहा जाता है, यह भी तथागत-सेवित है, यह भी तथागत-रंजित है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं ०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक हो, स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो, कायासे सुखको अनुभव करता विहरता है; जिसको (और) कि आर्य-जन उपेक्षक स्मृतिमान् सुख-विहारी कहते हैं, ऐसे तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागत-पद कहा जाता है०। किन्तु आर्य श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पूर्वही अस्त हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धता-युक्त चतुर्थध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है०। किन्तु आर्यश्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं ०।

"सो इस प्रकार चित्तके—परिशुद्ध=परि-अवदात, अंगण-रहित=उपक्लेश (= मल)रहित, मृदु हुये, काम-लायक, स्थिर=अचलता-प्राप्त=समाहित—हो जानेपर, पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (= पूर्व-निवासाऽनुस्मृति-ज्ञान)के लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है—जैसे 'एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी, चार०, पाँच०, छः०, दस०, बीस०, तीस०, चालीस०, पचास०, सौ०, हजार०, सौहजार०, अनेक संवर्त (= प्रलय) कल्प, अनेक विवर्त (= सृष्टि)-कल्प, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पको भी,—इस नामवाला, इस गोत्रवाला, इस वर्णवाला, इस आहारवाला, इस प्रकारके सुख दुःखको अनुभव करनेवाला, इतनी आयु-पर्यन्त, मैं अमुक स्थानपर रहा। सो मैं वहाँसे च्युत हो, यहाँ उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित अनेक किये गये निवासोंको स्मरण करता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है। ०।

"सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध ० समाहित होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (= च्युति-उत्पाद-ज्ञान)के लिये चित्तको झुकाता है। सो अ-मानुष विशुद्ध दिव्य चक्षुसे अच्छे बुरे, सु-वर्ण, दुर्वर्ण, सुगत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखता है। उनके कर्मोंके साथ सत्वोंको जानता है—'यह जीव काय-दुश्चरित-सहित, वचन-दुश्चरित-सहित, मन-दुश्चरित-सहित थे, आर्योंके निन्दक (= उपवादक) मिथ्या-दृष्टिवाले, मिथ्यादृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे। यह काया छोड़, मरनेके बाद अ-पाय = दुर्गति = विनिपात = नर्कमें उत्पन्न हुये हैं। और यह जीव (= सत्व) काय-सुचरित-सहित, वचन-सुचरित-सहित, मन-सुचरित-सहित थे, आर्योंके अ-निन्दक सम्यग्-दृष्टिवाले सम्यग्-दृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे। यह कामसे अलग हो'''मरनेके बाद सुगति = स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार अ-मानुष विशुद्ध दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको ० देखता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है। ०।

"सो इस प्रकार चित्तके ० समाहित हो जानेपर आस्रव-क्षय-ज्ञान (= रागादि चित्त-मलोंके नाश होनेका ज्ञान)के लिये चित्तको झुकाता है। सो 'यह दुःख है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थसे जानता है। 'यह आस्रव है' ०। 'यह आस्रव-समुदय है'। 'यह आस्रव-निरोध है' ०। 'यह आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (= रागादि चित्त-मलोंके नाशकी ओर ले जानेवाला मार्ग) है' ०। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है ०। ०।

"इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, उस (पुरुष)के चित्तको काम-आस्रव भी छोड़ देता है, भव-आस्रव भी ०, अ-विद्या-आस्रव भी ०। छोड़ देने (=विमुक्त हो जाने)पर, 'छूट गया हूँ' ऐसा ज्ञान होता है। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं'—यह भी जानता है। ब्राह्मण! यह भी तथागत-पद कहा जाता है ०। इतनेसे ब्राह्मण! आर्य-श्रावक विश्वास करता है—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं ०।

"इतनेसे ब्राह्मण! हस्ति-पदकी उपमा (हत्थि-पदोपम) विस्तारपूर्वक पूरी होती है।"

ऐसा कहनेपर जानुश्रोणि ब्राह्मणने भगवान्को यह कहा—

"आश्चर्य! भो गौतम!! आश्चर्य! भो गौतम!! ०[१] मैं आप गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे (मुझे) आप गौतम अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें।

२८—महाहत्थिपदोपम-सुत्तन्त (१।३।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"आवुसो! भिक्षुओ!"

"आवुस"—कह, उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने कहा—

"जैसे आवुसो! जंगली प्राणियोंके जितने पद हैं, वह सभी हाथीके पैर (=हस्ति-पद) में समा जाते हैं। बड़ाईमें हस्ति-पद उनमें अग्र (=श्रेष्ठ) गिना जाता है। ऐसे ही आवुसो! जितने कुशल धर्म हैं, वह सभी चार आर्य-सत्योंमें सम्मिलित हैं। कौनसे चारोंमें?—दुःख आर्य-सत्यमें, दुःख-समुदय आर्य-सत्यमें, दुःख-निरोध आर्य-सत्यमें, और दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्यमें।

"क्या है आवुसो! दुःख आर्य-सत्य?—जन्म भी दुःख है। जरा (=बुढ़ापा) भी दुःख है। मरण भी दुःख है। शोक, रोना-पिटना, दुःख है। मनःसंताप, परेशानी भी दुःख है। जो इच्छा करके नहीं पाता वह भी दुःख है। संक्षेपमें पाँच उपादान-स्कंध दुःख हैं।

"आवुसो! पाँच उपादान-स्कंध कौनसे हैं?—(पाँच उपादान-स्कंध हैं) जैसे कि—रूप-उपादान स्कंध, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ०। आवुसो! रूप-उपादान-स्कंध क्या है?—चार महाभूत, और चारों महाभूतोंको लेकर (बननेवाले) रूप। आवुसो! चार महाभूत कौनसे हैं?—पृथिवी-धातु, आप (=पानी) ०, तेज (=अग्नि) ०, वायु ०। आवुसो! पृथिवी-धातु क्या है?—पृथिवी धातु हैं (दो), आध्यात्मिक (=शरीरमें) और बाहरी। आवुसो! आध्यात्मिक पृथिवी-धातु क्या है?—जो शरीरमें (=अध्यात्म) हरएक शरीरमें कर्कश कठोर (पदार्थ) हैं, जैसे कि—केश, लोम, नख, दन्त, त्वक् (=चमड़ा), माँस, स्नायु (=नहारु), अस्थि, अस्थिके भीतरकी मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, पतली-आँत, उदरका मल (=करीष)। और भी जो कुछ शरीरमें प्रतिशरीरके भीतर कर्कश, कठोर (पदार्थ) गृहीत है। यह आवुसो! आध्यात्मिक पृथिवी-धातु कही जाती है। जो कि आध्यात्मिक पृथिवी धातु है, और जो बाहरी (=बाहिरा) पृथिवी-धातु है, यह पृथिवी धातुही है। 'यह यह (पृथिवी) न मेरी है, न यह मैं हूँ, न यह मेरा आत्मा है' यह यथार्थसे अच्छी प्रकार जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थसे अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे, (द्रष्टा) पृथिवी-धातुसे निर्वेद (=उदासीनता)को प्राप्त होता है। पृथिवी धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

"आवुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब बाहरी पृथिवी-धातु कुपित होती है, उस समय बाहरी पृथिवी धातु अन्तर्धान होती है। (तब) आवुसो ! इतनी महान् बाहरी पृथिवी-धातुकी भी अनित्यता=क्षय-धर्मता=वि-परिणाम-धर्मता जान पड़ती है। इस क्षुद्र कायाका तो क्या (कहना है) ? तृष्णामें फँसा (=तण्हुपादिण्ण) जिसे 'मैं', 'मेरा' या 'मैं हूँ' (कहता), वही इसको नहीं होती।

"भिक्षुओ ! जब दूसरे आक्रोश=परिहास=रोष=पीड़ा देते हैं, तो वह समझता है—'यह उत्पन्न दुःखरूप-वेदना (=० अनुभव) मुझे श्रोत्रके सम्बन्ध (=संस्पर्श)से उत्पन्न हुई है। और वह कारणसे (उत्पन्न हुई है) अ-कारणसे नहीं। किस कारणसे ?—स्पर्शके कारण। 'स्पर्श अ-नित्य है'—यह वह देखता है। 'वेदना अ-नित्य है' ० 'संज्ञा अ-नित्य है' ०। 'संस्कार अ-नित्य है' ०। 'विज्ञान अ-नित्य है' ०। उसका चित्त धातु (=पृथिवी) रूपी विषयसे पृथक्, प्रसन्न (=स्वच्छ), स्थिर, विमुक्त होता है। उस भिक्षुके साथ आवुसो ! यदि दूसरे, हाथके योग (=संस्पर्श)से, ढेलेके योगसे, दंडके योगसे, शस्त्रके योगसे अन्-इष्ट=अ-कान्त=अ-मनाप (व्यवहार)से बर्ताव करते हैं। वह यह जानता है—कि 'यह इस प्रकारकी काया है, जिसमें पाणि-संस्पर्श भी लगते हैं, ढेलेके संस्पर्श भी ०, दंडके संस्पर्श भी ०, शस्त्रके संस्पर्श भी ०। भगवान्‌ने ककचोपम (=आराके समान) अववाद (=उपदेश)में कहा है—'भिक्षुओ ! यदि चोर डाकू (=ओचरक=उचक्का) दोनों ओर दस्तेवाले आरेसे भी एक एक अंग काटें, वहाँपर भी जो मनको दूषित करे, वह मेरे शासन (=उपदेश) (के अनुकूल आचरण) करनेवाला नहीं है।' मेरा वीर्य (=उद्योग) चलता रहेगा, विस्मरण-रहित स्मृति मेरी उपस्थित (रहेगी), काया स्थिर (=प्रश्रब्ध) अ-चंचल (=अ-सारब्ध), चित्त समाहित=एकाग्र (रहेगा)। चाहे इस कायामें पाणि-संस्पर्श हो, ढेला मारना हो, डण्डा पड़े, शस्त्र लगे, (किंतु) बुद्धोंका उपदेश (पूरा) करना ही होगा।'

"आवुसो ! उस भिक्षुको, इस प्रकार बुद्धको याद करते, इस प्रकार धर्मको याद करते, इस प्रकार संघको याद करते, कुशल-संयुक्त (=निर्मल) उपेक्षा जब नहीं ठहरती। वह उससे उदास होता है, संवेगको प्राप्त होता है—'अहो ! अ-लाभ है मुझे, मुझे लाभ नहीं हुआ, मुझे दुर्लभ है, सुलाभ नहीं हुआ, जो मुझे इस प्रकार बुद्ध-धर्म-संघको स्मरण करते कुशल-युक्त उपेक्षा नहीं ठहरती; जैसे कि आवुसो ! बहू (=सुणिसा) ससुरको देखकर संविग्न होती है, संवेगको प्राप्त होती है। इसी प्रकार आवुसो ! उस भिक्षुको ऐसे बुद्ध-धर्म-संघ (के गुणों)को याद करते कुशल-संयुक्त उपेक्षा नहीं ठहरती, वह उससे ० संवेगको प्राप्त (=उदास) होता है—मुझे अलाभ है ०। आवुसो ! उस भिक्षुको यदि इस प्रकार बुद्ध-धर्म-संघको अनुस्मरण करते कुशल-युक्त उपेक्षा ठहरती है, तो वह उससे सन्तुष्ट होता है। इतनेसे भी आवुसो ! भिक्षुने बहुत कर लिया।

"क्या है आवुसो ! आप-धातु ?—आप (=जल)-धातु दो होती है, आध्यात्मिक और बाहरी। आवुसो ! आध्यात्मिक आप-धातु क्या है ?—जो शरीरमें प्रतिशरीरमें पानी, या पानीका (पदार्थ) है; जैसे कि पित्त, श्लेष्म (=कफ), पीब, लोहू, स्वेद (=पसीना), मेद, अश्रु, वसा (=चर्बी), राल, नासिका-मल, कर्ण-मल (=लसिका), मूत्र, और जो कुछ और भी शरीरमें पानी या पानीका है। आवुसो ! यह आप-धातु कही जाती है। जो आध्यात्मिक आप-धातु है, और जो बाहरी आप-धातु है, वह आप-धातुही है। 'यह मेरा नहीं', 'यह मैं नहीं', 'यह मेरा आत्मा नहीं'—इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर, देखना चाहिये। इस प्रकार यथार्थतः

अच्छी तरह, जानकर, देखकर, आप-धातुसे निर्वेदको प्राप्त (=उदास) होता है। आप-धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

"आवुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब कि बाह्य आप-धातु प्रकुपित होती है। वह गाँवको भी, निगमको भी, नगरको भी, जनपदको भी, जनपद-प्रदेशको भी बहा देती है। आवुसो ! ऐसा समय होता है, जब महासमुद्रमें सौ योजन, दो सौ योजन, सात सौ योजनके भी पानी आते हैं। आवुसो ! सो भी समय होता है, जब महासमुद्रमें सात ताल, छः ताल, पाँच ताल, चार ताल, तीन ताल, दो ताल, तालभर भी पानी होता"'है। आवुसो ! सो समय होता है, जब महासमुद्रमें सात पोरिसा (=पुरुष-परिमाण), ० पोरिसा भर पानी रह जाता है। ० जब महासमुद्रमें आध-पोरिसा, कमर भर, जाँघ भर, घुट्टी भर पानी ठहरता है। ० जब महासमुद्रमें अंगुलिके पोर भोने भरके लिये भी पानी नहीं रह जाता। आवुसो ! उस इतनी बड़ी बाह्य आप-धातुकी अनित्यता ०। ०। आवुसो ! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

"आवुसो ! तेज-धातु क्या है ?—तेज-धातु है आध्यात्मिक और बाह्य। आवुसो ! आध्यात्मिक तेज-धातु क्या है ?—जो शरीरमें प्रतिशरीरमें तेज (=अग्नि) या तेजका है; जैसे कि—जिससे संतप्त होता है, जर्जरित होता है, परिदग्ध होता है, खाया पीया अच्छी प्रकार हजम होता है; या जो कुछ और भी शरीरमें, प्रति-शरीरमें, तेज या तेज-विषय है। यह कहा जाता है आवुसो ! तेज-धातु। जो यह आध्यात्मिक (=शरीरमेंकी) तेज-धातु है, और जो कि यह बाह्य तेज-धातु है, यह तेज-धातु ही है। 'न यह मेरी है', 'न यह मैं हूँ', 'न यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थतः जानकर, देखनेसे तेज-धातुसे निर्वेदको प्राप्त होता है, तेज-धातुसे चित्तको विरक्त करता है। ०।

"आवुसो ! ऐसा समय (भी) होता है, जब बाह्य तेज-धातु कुपित होती है। वह गाँव, निगम, नगर ० को भी जलाती है। वह हरियाली महामार्ग (= पन्थन्त), या शैल या पानी (या) भूमि-भागको प्राप्त हो, आहार न पा बुझ जाती है। आवुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब कि इसे मुर्गीके पर भर भी, चमड़ेके छिलके भर भी ढूँढते हैं। आवुसो ! उस इतने बड़े तेज-धातुकी अ-नित्यता ०। ०। आवुसो ! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

"आवुसो ! वायु-धातु क्या है ?—वायुधातु आध्यात्मिक भी है, बाह्य भी। आध्यात्मिक वायु-धातु कौन है ?—जो शरीरमें प्रति-शरीरमें वायु या वायुका (पदार्थ) है, जैसे कि ऊर्ध्वगामी वात, अधोगामी वात (=हवा), कुक्षि (= पेट)के वात, कोठेमें रहनेवाले वात, अङ्ग प्रत्यङ्ग अनुसरण करनेवाले वात, या आश्वास-प्रश्वास, और जो कुछ और भी०। यह आवुसो आध्यात्मिक वायु-धातु। ० कहा जाता है।

"आवुसो ! ऐसा समय भी होता है, जब कि बाह्य वायु-धातु कुपित होती है, वा गाँवको भी० उड़ा ले जाती है। आवुसो ! ऐसा समय (भी) होता है, जब ग्रीष्मके पिछले महीनेमें तालका पंखा डुलाकर भी हवाको खोजते हैं,"'आवुसो ! इस इतनी बड़ी वायुधातु ०। उस भिक्षुको यदि आक्रोश ०। ०' इतनेसे आवुसो ! भिक्षुने बहुत कर लिया।

"जैसे, आवुसो ! काष्ठ, वल्ली, तृण और मृत्तिकासे घिरा आकाश घर कहा जाता है; ऐसेही आवुसो ! अस्थि, स्नायु, माँस और चर्मसे घिरा आकाश, रूप (=मूर्ति=शरीर) कहा जाता है। (जब) आध्यात्मिक (शरीरमेंकी) आँख अ-विकृत होती है, (किन्तु) बाह्य रूप सामने नहीं आते; (तो) उनसे समन्वाहार (=मनसिकार-पूर्वक विषय-ज्ञान) उत्पन्न नहीं होता; उनसे उत्पन्न विज्ञान-भाग प्रादुर्भूत नहीं होता। जब आवुसो ! शरीरमेंकी आँख अ-विकृत होती

है, बाह्य रूप सामने आते हैं, तो उनसे विषय-ज्ञान उत्पन्न होता है, इस प्रकार उनसे उत्पन्न (स्कन्धके) विज्ञान-भागका प्रादुर्भाव होता है।

"जो चक्षु-विज्ञानके साथका रूप है, वह रूप-उपादान-स्कंध गिना जाता है। जो ० वेदना है, वेदना-उपादान-स्कंध गिना जाता है। ० संज्ञा ० संज्ञा-उपादान-स्कंध ०। ० संस्कार ० संस्कार-उपादान-स्कंध ०। ० विज्ञान ० विज्ञान-उपादान-स्कंध ०। सो इस प्रकार जानता है—इस प्रकार इन पाँचों उपादान-स्कंधोंका संग्रह=सन्निपात=समवाय होता है। यह भगवान्ने भी कहा है—'जो प्रतीत्य-समुत्पादको देखता (=साक्षात् करता) है, वह धर्मको देखता है; जो धर्मको देखता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद (=कार्य कारणसे सभी चीज़ोंकी उत्पत्ति)को देखता है। यह प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारण करके उत्पन्न हैं) जो कि यह पाँच उपादान-स्कंध हैं। जो इन पाँच उपादान-स्कंधोंमें छन्द (=रुचि)=आलय=अनुनय=अध्यवसान है, वही दुःख समुदय है। जो इन पाँच उपादान स्कंधोंमें छन्द राग का हटाना, छोड़ना है, वह दुःख निरोध है। इतनेसे भी आवुसो! भिक्षुने बहुत किया। ०।

"आवुसो! यदि आध्यात्मिक (=शरीरमेंका) श्रोत्र अ-विकृत होता है। ०। ० घ्राण ०। ० जिह्वा ०। ० काय ०। ० मन ०। इतनेसे भी, आवुसो! भिक्षुने बहुत किया। ०।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणको अनुमोदित किया।

—

२९—महा-सारोपम-सुत्तन्त (१।३।९)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय, देवदत्तके निकल जानेके थोड़े ही समय बाद भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वत पर विहार करते थे।

वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको देवदत्तके संबंधमें सम्बोधित किया।

"भिक्षुओ ! कोई कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित (= संन्यासी) होता है—'मैं जन्म, जरा, मरण, शोक, रोदन, क्रंदन, दुःख = दुर्मनस्कता, परेशानीमें पड़ा हुआ हूँ। दुःखमें पड़ा, दुःखसे लिप्त मेरे लिये क्या कोई इस केवल (= ख़ालिस) दुःख-स्कंध (= दुःखपुंज) के अन्त करनेका उपाय है ?' वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, लाभ, सत्कार, श्लोक (= प्रशंसा) का भागी होता है। उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे संतुष्ट हो (अपनेको) परिपूर्ण-संकल्प समझता है। वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे अपने लिये अभिमान करता है और दूसरेको नीच समझता है—'मैं लाभवाला, सत्कारवाला, श्लोकवाला हूँ और यह दूसरे भिक्षु अप्रसिद्ध शक्ति-हीन हैं। वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे मतवाला होता है, प्रमादी बनता है, प्रमाद (= भूल) करने लगता है। प्रमत्त हो दुःखमें पड़ता है।

"जैसे भिक्षुओ ! सार चाहनेवाला = सारगवेषी पुरुष, सार (= हीर)की खोजमें घूमता हुआ एक सारवाले महान् वृक्षके रहते, उसके सारको छोड़, फल्गु[1]को छोड़, छालको छोड़, पपड़ीको छोड़, शाखा पत्तेको काट, 'यही सार है'—समझ लेकर चला जाय। उसको आँखवाला पुरुष देखकर ऐसा कहे—'हे पुरुष ! आपने सारको नहीं समझा, फल्गुको नहीं समझा, छालको नहीं समझा, पपड़ीको नहीं समझा, शाखा-पत्तेको नहीं समझा, जो कि आप सार चाहनेवाले, सार-गवेषी ० 'यही सार है'—समझ ले जा रहे हैं। सारसे जो काम करना है वह ··········· इससे न होगा'। ऐसे ही भिक्षुओ ! यहाँ एक कुल-पुत्र ० दुःखमें पड़ता है। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं कि भिक्षुने ब्रह्मचर्यके शाखा-पत्तेको ग्रहण किया और उतने ही से (अपने कृत्यको) समाप्त कर दिया।

"यहाँ भिक्षुओ ! कोई कुल-पुत्र श्रद्धासे ० वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, लाभ, सत्कार श्लोकका भागी होता है। (किन्तु) वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे संतुष्ट नहीं होता (अपनेको) परिपूर्ण-संकल्प नहीं समझता। वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे न अपने लिये घमंड करता है, न दूसरों को नीच समझता है। वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे, मतवाला नहीं होता, प्रमादी नहीं होता, प्रमादमें लिप्त नहीं होता। प्रमादरहित हो शील (= सदाचार)का आराधन

---

[1] हीर और छिल्केके बीचका काष्ठ।

करता है। उस शीलके आराधनसे संतुष्ट होता है। (अपनेको) पूर्ण-संकल्प समझता है। वह उस शील-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है और दूसरोंको नीच समझता है—'मैं शीलवान् (= सदाचारी), कल्याण-धर्मा (= पुण्यात्मा) हूँ और ये दूसरे भिक्षु दुराचारी, पापधर्मा हैं'। वह उस शीलकी संपदासे मतवाला हो जाता है, प्रमादी होता है, प्रमादमें लिप्त होता है, प्रमादी होकर दुःखित होता है।

"जैसे भिक्षुओ! सारका चाहनेवाला, सारका खोजी, पुरुष सारकी तलाशमें फिरते (घूमते हुए) ० फल्गु छोड़कर छाल और पपड़ीको काटकर—'यही सार है'—समझ लेकर चला जाय। उसको आँखवाला पुरुष देखकर ऐसा कहे—आप सारको नहीं समझे, नहीं फल्गुको समझे, नहीं छालको समझे, नहीं पपड़ीको समझे, नहीं शाखा-पत्रको समझे। वह आप सार चाहनेवाले ० लेकर जा रहे हैं; ० ऐसेही भिक्षुओ! यहाँ कोई कोई कुल-पुत्र ० दुःखित होता है। यह कहा जाता है भिक्षुओ! कि भिक्षुने ब्रह्मचर्यकी पपड़ीको ग्रहण किया, उसीसे (अपने कृत्यकी) समाप्ति कर दी।

"और भिक्षुओ! कोई कुल-पुत्र ० लाभ सत्कार श्लोकसे संतुष्ट न हो ० वह उस शील-संपदासे नहीं मतवाला होता ० प्रमाद-रहित हो ० उस समाधिकी संपदासे संतुष्ट होता है (अपनेको) परिपूर्ण-संकल्प समझता है। वह उस समाधि-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है और दूसरोंको नीच समझता है—'मैं समाधि-युक्त-चित्तवाला हूँ, एकाग्र चित्त हूँ, किन्तु ये, दूसरे भिक्षु समाधि-रहित, विक्षिप्त-चित्तवाले हैं। वह उस समाधि-संपत्तिसे मतवाला होता है ० प्रमादी हो दुखित होता है। जैसे भिक्षुओ! सार चाहनेवाला ० सार (= हीर)को छोड़कर फल्गु और छालको काटकर, यही सार है—समझ लेकर चला जाय। उसको आँखवाला पुरुष ० ऐसे ही भिक्षुओ! यहाँ कोई कुल-पुत्र ० दुःखी होता है। यह कहा जाता है भिक्षुओ! कि भिक्षुने ब्रह्मचर्यकी छालको ही ग्रहण किया ०।

"और भिक्षुओ! कोई कुल-पुत्र ० वह उस समाधि-संपदासे नहीं मतवाला होता ०; प्रमाद-रहित हो ज्ञान-दर्शन (= सत्य-साक्षात्कार)का आराधन करता है। वह उस ज्ञान-दर्शनसे सन्तुष्ट होता है, परिपूर्ण-सङ्कल्प (समझता है)। वह ज्ञान-दर्शनसे अपने लिये अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझता है—'मैं जानता देखता (= सत्य-साक्षात्कार करता) विहरता हूँ', किन्तु, ये दूसरे भिक्षु न जानते, न देखते विहरते हैं' वह उस ज्ञान-दर्शनसे मतवाला होता है ० दुःखी होता है। जैसे भिक्षुओ! सार चाहनेवाला ० सारको छोड़कर फल्गुको काट, यही सार है—समझ लेकर चला जाय। ० ऐसेही भिक्षुओ! यहाँ कोई कुल-पुत्र ० दुःखित होता है। यह कहा जाता है भिक्षुओ! कि भिक्षुने ब्रह्मचर्यके फल्गुको ग्रहण किया। ०

"और भिक्षुओ! कोई कुल-पुत्र ० वह उस ज्ञान-दर्शनसे संतुष्ट होता है, किन्तु, परिपूर्ण संकल्प नहीं होता। वह उस ज्ञान-दर्शनसे न अपने लिये अभिमान करता है, और न दूसरेको नीच समझता है। वह उस ज्ञान-दर्शनसे मतवाला नहीं होता, प्रमाद नहीं करता……। प्रमाद-रहित हो अकालिक (= सद्यः प्राप्य) मोक्षको आराधित करता है। भिक्षुओ! यह संभव नहीं, इसका अवकाश नहीं, कि वह भिक्षु उस अकालिक मोक्षसे च्युत होवे। जैसे भिक्षुओ! सार चाहनेवाला ० सारको ही काटकर 'यही सार है'—समझ ले जाये। उसे आँखवाला पुरुष देखकर यह कहे—'अहो! आपने सारको समझा है ० शाखा-पत्रको समझ लिया है, सो यह आप सार चाहनेवाले = सार-गवेषी, सारकी खोजमें घूमते, सारवाले महान् वृक्षके खड़े रहते सारको ही—'यह सार है' (समझ), काटकर ले जा रहे हैं। जो इन्हें सारसे काम लेना है वह मतलब पूरा

होगा। ऐसेही भिक्षुओ ! यहाँ कोई कुल-पुत्र ० उस अकालिक मोक्षसे च्युत होवे।

"इस प्रकार भिक्षुओ ! यह ब्रह्मचर्य लाभ, सत्कार, श्लोक पानेके लिये नहीं है। शील-संपत्तिके लाभके लिये नहीं है, न समाधि-संपत्तिके लाभ लिये है, न ज्ञान-दर्शन (= तत्त्वके ज्ञान और साक्षात्कार)के लाभके लिये है। भिक्षुओ ! जो यह न च्युत होनेवाली चित्तकी मुक्ति है, इसीके लिये यह ब्रह्मचर्य है। यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है।"

भगवान्‌ने यह कहा, संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणको अभिनंदित किया।

३०—चूल-सारोपम-सुत्तन्त (१।३।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

तब पिंगलकोच्छ ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्‌के साथ.........(कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पिंगलकोच्छ ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"भो गौतम! जो यह संघपति = गण-पति ज्ञात, यशस्वी तीर्थंकर (= मतस्थापक) हैं, जैसे कि—पूर्ण काश्यप, मक्खली गोसाल, अजित केश-कम्बली, प्रकुध कात्यायन, संजय बेलट्ठि-पुत्त, निगंठ नात-पुत्त, सभी अपनी प्रतिज्ञा (= मत)को समझते हैं; या सभी नहीं समझते या कोई कोई समझते हैं, कोई कोई नहीं समझते?"

"बस ब्राह्मण! रहने दे इसे—'सभी अपने ० नहीं समझते।' ब्राह्मण तुझे धर्मका उपदेश करता हूँ, उसे सुन अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ।"

"अच्छा, भो!"—(कह) पिंगलकोच्छ ब्राह्मणने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"जैसे ब्राह्मण! सार चाहनेवाला पुरुष ०[1] शाखापत्रको काट, यही सार है—समझ लेकर चला जाय। तो सार (= हीर) से जो काम करना है, वह उससे न होगा।

"जैसे कि ब्राह्मण! सार चाहनेवाला पुरुष ०[2] छालको काटकर—'यही सार है'—समझ लेकर चला जाय; तो सारसे जो काम करना है वह उससे न होगा।

"जैसे ब्राह्मण! ०[3] पपड़ीको काटकर, यही सार है—समझ लेकर चला जाय। ०।

"जैसे ब्राह्मण! ०[4] फल्गुको काटकर, यही सार है—समझ लेकर चला जाय। ०।

"जैसे ब्राह्मण! ०[5] सारको ही काट कर-'यही सार है'—समझ ले जाय। उसे आँख वाला पुरुष देख कर यह कहे—अहो! आपने सारको समझा है ०[6] सारसे जो काम आपको करना है वह इससे होगा।

"ऐसे ही ब्राह्मण! कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है ०[1] वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे संतुष्ट हो अपनेको परिपूर्ण-संकल्प समझता है। वह उस लाभ, सत्कार श्लोकसे अपने लिये अभिमान करता है, और दूसरेको नीच समझता है—मैं लाभ-सत्कार श्लोक वाला हूँ, और ये दूसरे भिक्षु अप्रसिद्ध, शक्ति-हीन हैं। वह उस लाभ, सत्कार श्लोकके कारण,

---

[1] देखो पृष्ठ १२२। [2] देखो पृष्ठ १२२। [3] देखो पृष्ठ १२२। [4] देखो पृष्ठ १२२।
[5] देखो पृष्ठ १२२। [6] देखो पृष्ठ १२२।

जो दूसरे उत्तम=प्रणीततर पदार्थ (= धर्म) हैं, उनके साक्षात्कारके लिये रुचि नहीं उत्पन्न करता, उद्योग नहीं करता, आलसी और शिथिल होता है। जैसे ब्राह्मण! वह सार चाहने वाला ० शाखा पत्र को ० लेकर चला जाय ० वह बात उससे न हो। उसीके समान, ब्राह्मण! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ।

"और फिर ब्राह्मण! यहाँ कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक ०[१] वह उस शीलका आराधन करता है, वह उस शील-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है ०[१] वह उस शील-संपदाके कारण जो दूसरे उत्तम ० पदार्थ हैं, उनके सक्षात्कारके लिये रुचि नहीं उत्पन्न करता, उद्योग नहीं करता ०। जैसे ब्राह्मण! वह सार चाहनेवाला ० छालको ० लेकर चला जाय ० वह इससे न होगा। उसीके समान ब्राह्मण! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ।

"और फिर ब्राह्मण! कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक ०[१] वह न उस शील-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है न दूसरेको नीच समझता है। शील-सम्पदासे जो उत्तम=प्रणीततर पदार्थ हैं, उनके साक्षात्कारके लिये रुचि उत्पन्न करता है, उद्योग करता है, आलसी नहीं होता, शिथिल नहीं होता। (और) वह समाधि-सम्पदाका आराधन करता है। वह उस समाधि-सम्पदासे सन्तुष्ट होता है; (अपनेको) परिपूर्ण-संकल्प समझता है ०[१] विभ्रान्त-चित्त हैं। समाधि-संपदासे जो दूसरे पदार्थ उत्तम=प्रणीततर हैं, उनके साक्षात्कार करनेके लिये रुचि नहीं उत्पन्न करता०। जैसे ब्राह्मण! वह सार चाहने वाला ० पपड़ीको ० लेकर चला जाय ० वह बात इससे न हो। उसीके समान ब्राह्मण! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ।

"और फिर ब्राह्मण! कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक ०[१] वह उस समाधि-सम्पदासे न अपने लिये अभिमान करता है ०। समाधि संपदासे जो उत्तम ० पदार्थ हैं, उनके साक्षात्कारके लिये रुचि उत्पन्न करता है ०। (और) वह ज्ञान-दर्शनका आराधन करता है। वह उस ज्ञान-दर्शनसे संतुष्ट होता है ०। जैसे ब्राह्मण! वह सार चाहनेवाला पुरुष ० फल्गुको ० लेकर चला जाय ० उसीके समान ब्राह्मण! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ।

"और फिर ब्राह्मण! कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक ०[१] वह उस ज्ञान-दर्शनसे सन्तुष्ट होता है। किन्तु परिपूर्ण-संकल्प नहीं समझता। वह उस ज्ञान-दर्शनसे न अपने लिये अभिमान करता है न दूसरेको नीच समझता है। उस ज्ञानदर्शनसे जो दूसरे पदार्थ उत्तम ० हैं; उनके साक्षात्कारके लिये रुचि उत्पन्न करता है ०।

"ब्राह्मण! कौनसे पदार्थ ज्ञान-दर्शनसे उत्तम=प्रणीततर हैं?—ब्राह्मण! ०[२] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पदार्थ भी ज्ञान-दर्शनसे उत्तम ० हैं। और फिर ब्राह्मण! ०[२] द्वितीय-ध्यानको ०। ०[२] तृतीय-ध्यानको ०। ०[२] चतुर्थ-ध्यानको०। ०[२] आकाशानन्त्यायतनको ०। ०[२] विज्ञानानन्त्यायतनको ०। ०[२] आकिञ्चन्यायतनको ०। ०[२] नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको ०। ०[२] संज्ञावेदित-निरोधको प्राप्त हो विहरता है। प्रज्ञासे देखकर उसके आस्रव (= चित्तमल) नष्ट होते हैं। ब्राह्मण! यह पदार्थ भी ज्ञान-दर्शनसे उत्तम ० है। जैसे ब्राह्मण! सार चाहनेवाला ०[३] सारको ही काट कर, 'यही सार है'—समझ ले जाये। जो उसे सारसे काम करना है वह उसका होगा। ब्राह्मण! उसीके समान मैं इस पुरुषको कहता हूँ।

———

"इस प्रकार ब्राह्मण! यह ब्रह्मचर्य लाभ ०[1] के लिये नहीं है। ब्राह्मण! जो यह अच्युत होने वाली चित्त की मुक्ति है, इसीके लिये यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है।"

ऐसा कहने पर पिंगलकोच्छ ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"आश्चर्य भो गौतम! ०[2] आजसे आप गौतम मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

३—(इति) ओपम्मवग्ग (१।३)

३१—चूल-गोसिङ्ग-सुत्तन्त (१।४।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् नादिक[१]के गिंजकावसथमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आयुष्मान् किम्बिल, गोसिंग-सालवनदायमें विहार करते थे।

तब भगवान् सायंकालको एकान्तचिन्तनसे उठकर जहाँ गोसिंग सालवनदाय था, वहाँ गये। दायपालक (= वनपाल)ने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देख कर भगवानसे कहा—

"महाश्रमण! इस दायमें प्रवेश मत करो। यहाँपर तीन कुलपुत्र यथाकाम (= मौजसे) विहर रहे हैं। इनको तकलीफ़ मत दो।"

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाय-पालको भगवान्के साथ बात करते सुना। सुन कर दाय-पालसे यह कहा—

"आवुस! दाय-पाल! भगवान्को मत मना करो। हमारे शास्ता भगवान् आये हैं।"

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् नन्दिय और आयु० किम्बिल थे, वहाँ गये। जाकर बोले—

"आयुष्मानो! चलो आयुष्मानो! हमारे शास्ता भगवान् आ गये।"

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध, आ० नन्दिय, आ० किम्बिलने भगवान्की अगवानी कर, एकने पात्र-चीवर ग्रहण किया, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक रक्खा। भगवान्ने बिछाये आसन पर बैठ पैर धोया। वे भी आयुष्मान्, भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् अनुरुद्धको भगवान्ने कहा—

"अनुरुद्धो! खमनीय तो है? = यापनीय तो है? पिंडके लिये तो तुम लोग तकलीफ़ नहीं पाते?"

"खमनीय है भगवान्! ०"

"अनुरुद्धो! क्या एक चित्त, परस्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुए, परस्पर प्रिय दृष्टिसे देखते, विहरते हो?"

"हाँ भन्ते! हम एक-चित्त० ।"

"तो कैसे अनुरुद्धो! तुम एक-चित्त ०?"

"भन्ते! मुझे यह विचार होता है—'मेरे लिये लाभ है' 'मेरे लिये सुलाभ प्राप्त हुआ है' जो ऐसे स-ब्रह्मचारियों (= गुरु भाइयों)के साथ विहरता हूँ' भन्ते! इन आयुष्मानोंमें मेरा कायिक कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रतापूर्ण होता है, वाचिक कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रतापूर्ण

---

[१] संभवतः वर्तमान बेथरडीह, मसरख (जि० सारन)।

होता है, मानसिक कर्म अन्दर और बाहर ०। तब भन्ते ! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटाकर, इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार बर्तूं। सो भन्ते ! मैं अपने चित्तको हटा कर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तोंका अनुवर्तन करता हूँ। भन्ते ! हमारा शरीर नाना है किन्तु चित्त एक…।"

आयुष्मान् नन्दियने भी कहा—"भन्ते ! मुझे यह होता है ०।"

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा "भन्ते ! मुझे यह ०।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! अनुरुद्धो ! क्या तुम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो, विहरते हो ?"

"भन्ते ! हाँ ! हम प्रमाद-रहित ०।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! क्या अनुरुद्धो ! इस प्रकार प्रमाद-रहित उद्योगी और एकाग्र चित्त हो विहरते, तुम्हें उत्तर-मनुष्य धर्म (=दिव्य-शक्ति=) अलमार्य-ज्ञान-दर्शन सुखपूर्वक विहार करना प्राप्त हुआ ?"

"क्या होगा भन्ते ! हमें ?—यहाँ हम भन्ते ! यथेच्छ ०[1] प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरते हैं। भन्ते ! प्रमाद-रहित ० विहरते यह उत्तर-मनुष्य-धर्म ० प्राप्त हुआ है।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! किन्तु इस विहारको पार करनेके लिये, इस विहारको शान्त करनेके लिये, क्या अनुरुद्धो ! दूसरा कोई उत्तर-मनुष्य-धर्म प्राप्त हुआ ?"

"क्या होगा भन्ते ! हमें ?—यहाँ हम भन्ते ! यथेच्छ ०[1] द्वितीय ध्यान ०। ०[1] तृतीय ध्यान ०। ०[1] चतुर्थ ध्यान ०[2] आकाशानन्त्यायतन ०। ०[2] विज्ञानानन्त्यायतन ०। ०[2] नैव-संज्ञानासंज्ञायतनको प्राप्त हो विहरते हैं। प्रज्ञासे देखकर हमारे आस्रव नष्ट हो गये। भन्ते ! इस विहारके अतिक्रमणके लिये, इस विहारको शान्त करनेके लिये, यह दूसरा उत्तर-मनुष्य-धर्म० प्राप्त हुआ है। भन्ते ! इस सुखपूर्वक विहारसे बढ़ कर उत्तम दूसरे सुख विहारको हम नहीं जानते।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! इस सुख-पूर्वक विहारसे बढ़कर उत्तम दूसरा सुख पूर्वक विहार नहीं है।"

तब भगवान् आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, और आयुष्मान् किम्बिलको धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित, समुत्तेजित, प्रशंसित कर आसनसे उठ कर, चले गये।

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान नन्दिय, और आयुष्मान् किम्बिल भगवान्को (कुछ दूर) पहुँचा कर लौट आये। आयुष्मान् नन्दिय और आयुष्मान् किम्बिलने आयुष्मान् अनुरुद्धसे यह कहा—

"क्या हमने आयुष्मान् अनुरुद्धको यह कहा था—'हम इन इन विहारोंकी पूर्णताको प्राप्त हैं' जो कि आयुष्मान् अनुरुद्धने भगवान्के सन्मुख हमारे बारेमें आस्रवोंके क्षय पर्यन्त (की बात) कही ?"

"मुझे आयुष्मानोंने नहीं कहा—'हम इन इन विहारोंकी पूर्णताको प्राप्त हैं' किन्तु मैंने आयुष्मानोंके चित्त (की बात)को अपने चित्तसे जान कर जाना कि, यह आयुष्मान् इन इन विहारोंकी पूर्णताको प्राप्त हैं। देवताओंने मुझे इस बातको बतलाया है—यह आयुष्मान् ०। उसे मैंने भगवान्के प्रश्न करनेपर कहा।"

---

[1] देखो पृष्ठ १५। [2] देखो पृष्ठ २७, २८।

तब दीर्घ-परजन नामक यक्ष (= देवता) जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुए दीर्घपरजन यक्षने भगवान्से यह कहा—

"वज्जियों [1] को लाभ है। सुन्दर लाभ मिला है, भन्ते! वज्जी जनताको, जहाँ कि तथागत अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध विहरते हैं, और आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आयुष्मान् किम्बिल—ये तीन कुल-पुत्र भी (विहरते) हैं। ०—

दीर्घपरजन यक्षके शब्दको सुनकर भूमिवासी देवताओंने शब्द किया—वज्जियोंको ०। भूमिवासी देवताओंके शब्दको सुनकर चातुर्महाराजिक देवताओंने ०। ० त्रायस्त्रिंश-देवताओंने ०। ० याम देवताओंने ०। ० तुषित देवताओंने ०। ० निर्माण-रति देवताओंने ०। पर-निर्मित-वशवर्ती देवताओंने ०। ० ब्रह्म-कायिक देवताओंने ०। इस प्रकार उसी क्षण उसी मुहूर्त में वह आयुष्मान् ब्रह्मलोक पर्यन्त विदित हो गये।—

"ऐसा ही है दीर्घ! यह, ऐसा ही है दीर्घ! यह; क्योंकि दीर्घ! जिस कुलसे यह तीनों कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुए यदि वह कुल भी इन तीनों कुलपुत्रोंको प्रसन्न चित्तसे स्मरण करे तो वह उसके लिये दीर्घ-काल तक हितकर सुखकर होगा। दीर्घ! जिस कुल-समुदायसे ०। ० जिस ग्रामसे ०। ० जिस निगम (= कस्बे)से ०। ० जिस नगरसे ०। ० जिस जन-पद (= देश)से यह तीनों कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुए, यदि वह जनपद भी इन तीनों कुल पुत्रोंको प्रसन्नचित्तसे स्मरण करे, तो वह उसके लिये दीर्घकाल तक हितकर सुखकर होगा।

"यदि दीर्घ! क्षत्रिय ०। ० ब्राह्मण ०। ० वैश्य ०। ० शूद्र भी प्रसन्नचित्त ० सुखकर होगा। दीर्घ! देवता-मार-ब्रह्मा-सहित, श्रमण-ब्राह्मण, देव-मनुष्य युक्त सारी प्रजा इन तीनों कुलपुत्रोंका प्रसन्नचित्तसे स्मरण करे; तो देवता-मार-ब्रह्मा-सहित श्रमण-ब्राह्मण, देव-मनुष्य युक्त सारी प्रजाके लिये दीर्घकाल तक हितकर, सुखकर होगा।...क्योंकि यह तीनों कुलपुत्र बहुत जनोंके सुखके लिये, बहुत जनोंके हितके लिये, लोककी अनुकंपाके लिये देव-मनुष्योंके अर्थ, हित, सुखके लिये तत्पर हैं।"

भगवान्ने यह कहा, संतुष्ट हो दीर्घ-परजन यक्षने भगवान्के भाषणको अभिनंदित किया।

३२–महा-गोसिंग-सुत्तन्त (१।४।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् गोसिंग-साल वनदायमें बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थविर (= वृद्ध) शिष्योंके साथ विहार करते थे, जैसे कि—आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत, और आयुष्मान् आनंद तथा दूसरे भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थविर शिष्योंके साथ। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन सायंकाल ध्यानसे उठकर जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह बोले—

"चलो आवुस काश्यप! जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन और आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये गये। आयुष्मान् आनंदने दूरसे ही आ. महामौद्गल्यायन, आ. महाकाश्यप, और आ. अनुरुद्धको जिधर आ. सारिपुत्र थे, उधर धर्म सुननेके लिये जाते देखा। देखकर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् रेवतसे यह बोले—

"आवुस! यह सत्पुरुष जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये जा रहे हैं। चलो आवुस! जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ हम भी धर्म सुननेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आ. रेवतने आ. आनंदको उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् रेवत और आ. आनंद जहाँ आ. सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये चले। आयुष्मान् सारिपुत्रने दूरसे ही आ. रेवत और आयुष्मान् आनंदको आते देखा। देखकर आ. आनंदसे कहा—

"आइये आ. आनंद! स्वागत है भगवान्के उपस्थाक (= निरंतर-सेवक) भगवान्के सदा समीप रहनेवाले आनंदका। आवुस आनंद! रमणीय है गोसिंग सालवन। चाँदनी रात है। सारी पाँतियोंमें साल फूले हुए हैं। मानो दिव्य गंध बह रहे हैं। आवुस आनंद! किस प्रकार के (भिक्षु)से यह गोसिंग सालवन शोभित होवेगा?"

"आवुस सारिपुत्र! भिक्षु यदि बहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुत-संचयी (= सुनी शिक्षाओंका संचय करनेवाला) हो। जो वह धर्म आदिमें कल्याण, मध्यमें कल्याण और अन्तमें कल्याण रखने वाले, सार्थक स-व्यंजन केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यको बखाननेवाले हैं, वैसे धर्मोंको उस (भिक्षु)ने बहुत सुना हो, धारण किया हो, वचनसे परिचय किया हो, मनसे परखा हो, दृष्टि (= साक्षात्कार)में धँसा लिया हो; (ऐसा भिक्षु) चार (प्रकार)की परिषद्को सर्वांग पूर्ण, पद-व्यंजन-युक्त, स्वतंत्रता पूर्वक धर्म को अनुशयों (= चित्तमलों)के नाशके लिये उपदेशे। आवुस सारिपुत्र! इस प्रकारके भिक्षु द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्रने आ. रेवतसे यह कहा—"आवुस रेवत ! आ. आनंदने अपने विचारके अनुसार कह दिया। अब मैं आ. रेवतसे पूछता हूँ। आ. रेवत रमणीय है गोसिंग सालवन। ० आवुस रेवत ! किस प्रकार (के भिक्षु)से यह गोसिंग सालवन शोभित होगा ?"

"यहाँ आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु यदि ध्यान-रत, ध्यान-प्रेमी होवे, अपने (मनके) भीतर चित्तकी एकाग्रतामें तत्पर और ध्यानसे न हटनेवाला, विपश्यना (= साक्षात्कार किये गये ज्ञान) से युक्त, शून्य गृहोंको बढ़ानेवाला होवे। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुद्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. अनुरुद्धसे कहा—

"आवुस अनुरुद्ध ! आ. रेवतने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० किस प्रकार (के भिक्षु)से गोसिंग सालवन शोभित होगा ?"

"आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु अ-मानव विशुद्ध दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको अवलोकन करे; (वैसे ही) जैसे कि आवुस सारिपुत्र ! आँखवाला पुरुष महलके ऊपर खड़ा सहस्रों चक्रोंके समुदाय को देखे; वैसेही आवुस सारिपुत्र ! ० दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको देखे। आवुस सारिपुत्र ! ऐसे भिक्षुसे गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. महाकाश्यपसे यह कहा—"आवुस काश्यप ! आ. अनुरुद्धने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ?"

"आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु स्वयं आरण्यक (= वनमें रहनेवाला) हो और आरण्यकताका प्रशंसक हो। स्वयं पिंडपातिक (= मधूकरी माँगनेवाला) हो और पिंडपातिकताका प्रशंसक हो। स्वयं पांसुकूलिक (= फेंके चिथड़ोंको पहिननेवाला) हो ०। स्वयं त्रैचीवरिक (= सिर्फ़ तीन वस्त्रोंको पासमें रखनेवाला ०। स्वयं-अल्पेच्छ ०। स्वयं-संतुष्ट ०। ० प्रविविक्त (= एकान्त चिंतन-रत) ०। ० संसर्गरहित ०। ० उद्योगी ०। ० सदाचारी ०। ० समाधियुक्त ०। ० प्रज्ञा-युक्त ०। ० विमुक्ति-युक्त ०। ० विमुक्तिके ज्ञान-दर्शन (= साक्षात्कार)से युक्त ०। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. मौद्गल्यायनसे यह कहा—

"आवुस महामौद्गल्यायन ! आ. महाकाश्यपने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ?"

"आवुस सारिपुत्र ! दो भिक्षु अभिधर्म (= धर्म-संबंधी) कथा कहें, वह एक दूसरेसे प्रश्न पूछें, एक दूसरेके प्रश्नका उत्तर दें, ज़िद न करें, उनकी कथा धर्म-संबंधी चले। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

तब आ. महामौद्गल्यायनने आ. सारिपुत्रसे यह कहा—"आवुस सारिपुत्र ! हमने अपने विचारके अनुसार कह दिया। अब हम आ. सारिपुत्रसे पूछते हैं ० ?"

"आवुस मौद्गल्यायन ! एक भिक्षु चित्तको वशमें करता है, (स्वयं) चित्तके वशमें नहीं होता। वह जिस विहार (= ध्यान-प्रकार)को प्राप्तकर पूर्वाह्ण समय विहरना चाहता है उसी विहारसे पूर्वाह्ण समय विहरता है। जिस विहारसे मध्याह्न समय ०। ० सन्ध्या समय ०। जैसे आवुस महामौद्गल्यायन ! किसी राजा या राज-मंत्रीके पास नाना रंगके दुशालोंके करंडक (= बक्स) भरे हों; वह जिस दुशालेको पूर्वाह्ण समय धारण करना चाहे उसे पूर्वाह्ण समय धारण करे; जिस दुशालेको मध्याह्न समय ०। ० सायंकाल ०। ऐसे ही आवुस महामौद्गल्यायन ! जो भिक्षु चित्तको वशमें करता है स्वयं चित्तके वशमें नहीं होता वह जिस विहारको प्राप्त कर ०। आवुस मौद्गल्यायन ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

३२—महा-गोसिंग-सुत्तन्त (१।४।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् गोसिंग-साल वनदायमें बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थविर (=वृद्ध) शिष्योंके साथ विहार करते थे, जैसे कि—आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत, और आयुष्मान् आनंद तथा दूसरे भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थविर शिष्योंके साथ। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन सायंकाल ध्यानसे उठकर जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह बोले—

"चलो आवुस काश्यप! जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन और आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये गये। आयुष्मान् आनंदने दूरसे ही आ. महामौद्गल्यायन, आ. महाकाश्यप, और आ. अनुरुद्धको जिधर आ. सारिपुत्र थे उधर धर्म सुननेके लिये जाते देखा। देखकर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् रेवतसे यह बोले—

"आवुस! यह सत्पुरुष जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये जा रहे हैं। चलो आवुस! जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ हम भी धर्म सुननेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आ. रेवतने आ. आनंदको उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् रेवत और आ. आनंद जहाँ आ. सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये चले। आयुष्मान् सारिपुत्रने दूरसे ही आ. रेवत और आयुष्मान् आनंदको आते देखा। देखकर आ. आनंदसे कहा—

"आइये आ. आनंद! स्वागत है भगवान्के उपस्थाक (= निरंतर-सेवक) भगवान्के सदा समीप रहनेवाले आनंदका। आवुस आनंद! रमणीय है गोसिंग सालवन। चाँदनी रात है। सारी पाँतियोंमें साल फूले हुए हैं। मानो दिव्य गंध बह रहे हैं। आवुस आनंद! किस प्रकारके (भिक्षु)से यह गोसिंग सालवन शोभित होवेगा?"

"आवुस सारिपुत्र! भिक्षु यदि बहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुत-संचयी (= सुनी शिक्षाओंका संचय करनेवाला) हो। जो वह धर्म आदिमें कल्याण, मध्यमें कल्याण और अन्तमें कल्याण रखनेवाले, सार्थक स-व्यंजन केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यको बखाननेवाले हैं, वैसे धर्मोंको उस (भिक्षु)ने बहुत सुना हो, धारण किया हो, वचनसे परिचय किया हो, मनसे परखा हो, दृष्टि (= साक्षात्कार)में धँसा लिया हो; (ऐसा भिक्षु) चार (प्रकार)की परिषद्को सर्वांग पूर्ण, पद-व्यंजन-युक्त, स्वतंत्रता पूर्वक धर्म को अनुशयों (= चित्तमलों)के नाशके लिये उपदेशे। आवुस सारिपुत्र! इस प्रकारके भिक्षु द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्रने आ. रेवतसे यह कहा—"आवुस रेवत ! आ. आनंदने अपने विचारके अनुसार कह दिया। अब मैं आ. रेवतसे पूछता हूँ। आ. रेवत रमणीय है गोसिंग सालवन। ० आवुस रेवत ! किस प्रकार (के भिक्षु)से यह गोसिंग सालवन शोभित होगा ?"

"यहाँ आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु यदि ध्यान-रत, ध्यान-प्रेमी होवे, अपने (मनके) भीतर चित्तकी एकाग्रतामें तत्पर और ध्यानसे न हटनेवाला, विपश्यना (=साक्षात्कार किये गये ज्ञान) से युक्त, शून्य गृहोंको बढ़ानेवाला होवे। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुद्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. अनुरुद्धसे कहा—

"आवुस अनुरुद्ध ! आ. रेवतने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० किस प्रकार (के भिक्षु)से गोसिंग सालवन शोभित होगा ?"

"आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु अ-मानव विशुद्ध दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको अवलोकन करे; (वैसे ही) जैसे कि आवुस सारिपुत्र ! आँखवाला पुरुष महलके ऊपर खड़ा सहस्रों चक्कोंके समुदाय को देखे, वैसेही आवुस सारिपुत्र ! ० दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको देखे। आवुस सारिपुत्र ! ऐसे भिक्षुसे गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. महाकाश्यपसे यह कहा—"आवुस काश्यप ! आ. अनुरुद्धने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ?"

"आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु स्वयं आरण्यक (=वनमें रहनेवाला) हो और आरण्यकताका प्रशंसक हो। स्वयं पिंडपातिक (=मधूकरी माँगनेवाला) हो और पिंडपातिकताका प्रशंसक हो। स्वयं पांसुकूलिक (=फेंके चिथड़ोंको पहिननेवाला) हो ०। स्वयं त्रैचीवरिक (=सिर्फ़ तीन वस्त्रोंको पासमें रखनेवाला ०। स्वयं-अल्पेच्छ ०। स्वयं-संतुष्ट ०। ० प्रविविक्त (=एकान्त चिंतन-रत) ०। ० संसर्गरहित ०। ० उद्योगी ०। ० सदाचारी ०। ० समाधियुक्त ०। ० प्रज्ञा-युक्त ०। ० विमुक्ति-युक्त ०। ० विमुक्तिके ज्ञान-दर्शन (=साक्षात्कार)से युक्त ०। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. मौद्गल्यायनसे यह कहा—

"आवुस महामौद्गल्यायन ! आ. महाकाश्यपने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ?"

"आवुस सारिपुत्र ! दो भिक्षु अभिधर्म (=धर्म-संबंधी) कथा कहें, वह एक दूसरेसे प्रश्न पूछें, एक दूसरेके प्रश्नका उत्तर दें, ज़िद न करें, उनकी कथा धर्म-संबंधी चले। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

तब आ. महामौद्गल्यायनने आ. सारिपुत्रसे यह कहा—"आवुस सारिपुत्र ! हमने अपने विचारके अनुसार कह दिया। अब हम आ. सारिपुत्रसे पूछते हैं ० ?"

"आवुस मौद्गल्यायन ! एक भिक्षु चित्तको वशमें करता है, (स्वयं) चित्तके वशमें नहीं होता। वह जिस विहार (=ध्यान-प्रकार)को प्राप्तकर पूर्वाह्न समय विहरना चाहता है उसी विहारसे पूर्वाह्न समय विहरता है। जिस विहारसे मध्याह्न समय ०। ० सन्ध्या समय ०। जैसे आवुस महामौद्गल्यायन ! किसी राजा या राज-मंत्रीके पास नाना रंगके दुशालोंके करंडक (=बक्स) भरे हों; वह जिस दुशालेको पूर्वाह्न समय धारण करना चाहे उसे पूर्वाह्न समय धारण करे, जिस दुशालेको मध्याह्न समय ०। ० सायंकाल ०। ऐसे ही आवुस महामौद्गल्यायन ! जो भिक्षु चित्तको वशमें करता है स्वयं चित्तके वशमें नहीं होता वह जिस विहारको प्राप्त कर ०। आवुस मौद्गल्यायन ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

३२—महा-गोसिंग-सुत्तन्त (१।४।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् गोसिंग-साल वनदायमें बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थविर (=वृद्ध, शिष्योंके साथ विहार करते थे, जैसे कि—आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत, और आयुष्मान् आनंद तथ दूसरे भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थविर शिष्योंके साथ। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन सायंकाल ध्यानसे उठकर जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह बोले—

"चलो आवुस काश्यप! जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको उत्तर दिया

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन और आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् अनुरुद्ध जह आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये गये। आयुष्मान् आनंदने दूरसे ही आ. महामौद्ग ल्यायन, आ. महाकाश्यप, और आ. अनुरुद्धको जिधर आ. सारिपुत्र थे उधर धर्म सुननेके लि जाते देखा। देखकर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् रेवतसे यह बोले—

"आवुस! यह सत्पुरुष जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये जा रहे हैं। चल आवुस! जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ हम भी धर्म सुननेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आ. रेवतने आ. आनंदको उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् रेवत और आ. आनंद जहाँ आ. सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये चले आयुष्मान् सारिपुत्रने दूरसे ही आ. रेवत और आयुष्मान् आनंदको आते देखा। देखकर आ आनंदसे कहा—

"आइये आ. आनंद! स्वागत है भगवान्के उपस्थाक (=निरंतर-सेवक) भगवान्के सद समीप रहनेवाले आनंदका। आवुस आनंद! रमणीय है गोसिंग सालवन। चाँदनी रात है सारी पाँतियोंमें साल फूले हुए हैं। मानो दिव्य गंध बह रहे हैं। आवुस आनंद! किस प्रका के (भिक्षु)से यह गोसिंग सालवन शोभित होवेगा?"

"आवुस सारिपुत्र! भिक्षु यदि बहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुत-संचयी (=सुनी शिक्षाओंक संचय करनेवाला) हो। जो वह धर्म आदिमें कल्याण, मध्यमें कल्याण और अन्तमें कल्याण रखन वाले, सार्थक स-व्यंजन केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यको बखाननेवाले हैं, वैसे धर्मोंको उस (भिक्षु)ने बहुत सुना हो, धारण किया हो, वचनसे परिचय किया हो, मनसे परखा हो, दृष्टि (=साक्षात्कार)में धँसा किया हो; (ऐसा भिक्षु) चार (प्रकार)की परिषद्को सर्वांग पूर्ण पद-व्यंजन-युक्त, स्वतंत्रता पूर्वक धर्मको अनुशयों (=चित्तमलों)के नाशके लिये उपदेशे। आवु सारिपुत्र! इस प्रकारके भिक्षु द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्रने आ. रेवतसे यह कहा—"आवुस रेवत ! आ. आनंदने अपने विचारके अनुसार कह दिया। अब मैं आ. रेवतसे पूछता हूँ। आ. रेवत रमणीय है गोसिंग सालवन। ० आवुस रेवत ! किस प्रकार (के भिक्षु)से यह गोसिंग सालवन शोभित होगा ?"

"यहाँ आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु यदि ध्यान-रत, ध्यान-प्रेमी होवे, अपने (मनके) भीतर चित्तकी एकाग्रतामें तत्पर और ध्यानसे न हटनेवाला, विपश्यना (= साक्षात्कार किये गये ज्ञान) से युक्त, शून्य गृहोंको बढ़ानेवाला होवे। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुद्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. अनुरुद्धसे कहा—

"आवुस अनुरुद्ध ! आ. रेवतने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० किस प्रकार (के भिक्षु)से गोसिंग सालवन शोभित होगा ?"

"आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु अ-मानव विशुद्ध दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको अवलोकन करे; (वैसे ही) जैसे कि आवुस सारिपुत्र ! आँखवाला पुरुष महलके ऊपर खड़ा सहस्रों चक्रोंके समुदाय को देखे; वैसेही आवुस सारिपुत्र ! ० दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको देखे। आवुस सारिपुत्र ! ऐसे भिक्षुसे गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. महाकाश्यपसे यह कहा—"आवुस काश्यप ! आ. अनुरुद्धने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ?"

"आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु स्वयं आरण्यक (= वनमें रहनेवाला) हो और आरण्यकताका प्रशंसक हो। स्वयं पिंडपातिक (= मधूकरी माँगनेवाला) हो और पिंडपातिकताका प्रशंसक हो। स्वयं पांसुकूलिक (= फेंके चिथड़ोंको पहिननेवाला) हो ०। स्वयं त्रैचीवरिक (= सिर्फ़ तीन वस्त्रोंको पासमें रखनेवाला ०। स्वयं-अल्पेच्छ ०। स्वयं-संतुष्ट ०। ० प्रविविक्त (= एकान्त चिंतन-रत) ०। ० संसर्गरहित ०। ० उद्योगी ०। ० सदाचारी ०। ० समाधियुक्त ०। ० प्रज्ञा-युक्त ०। ० विमुक्ति-युक्त ०। ० विमुक्तिके ज्ञान-दर्शन (= साक्षात्कार)से युक्त ०। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. मौद्गल्यायनसे यह कहा—

"आवुस महामौद्गल्यायन ! आ. महाकाश्यपने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ?"

"आवुस सारिपुत्र ! दो भिक्षु अभिधर्म (= धर्म-संबंधी) कथा कहें, वह एक दूसरेसे प्रश्न पूछें, एक दूसरेके प्रश्नका उत्तर दें, ज़िद न करें, उनकी कथा धर्म-संबंधी चले। आवुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ०।"

तब आ. महामौद्गल्यायनने आ. सारिपुत्रसे यह कहा—"आवुस सारिपुत्र ! हमने अपने विचारके अनुसार कह दिया। अब हम आ. सारिपुत्रसे पूछते हैं ० ?"

"आवुस मौद्गल्यायन ! एक भिक्षु चित्तको वशमें करता है, (स्वयं) चित्तके वशमें नहीं होता। वह जिस विहार (= ध्यान-प्रकार)को प्राप्तकर पूर्वाह्न समय विहरना चाहता है उसी विहारसे पूर्वाह्न समय विहरता है। जिस विहारसे मध्याह्न समय ०। ० सन्ध्या समय ०। जैसे आवुस महामौद्गल्यायन ! किसी राजा या राज-मंत्रीके पास नाना रंगके दुशालोंके करंडक (= बक्स) भरे हों; वह जिस दुशालेको पूर्वाह्न समय धारण करना चाहे उसे पूर्वाह्न समय धारण करे; जिस दुशालेको मध्याह्न समय ०। ० सायंकाल ०। ऐसे ही आवुस महामौद्गल्यायन ! जो भिक्षु चित्तको वशमें करता है स्वयं चित्तके वशमें नहीं होता वह जिस विहारको प्राप्त कर ०। आवुस मौद्गल्यायन ! — [illegible]

तब आ. सारिपुत्रने उन आयुष्मानोंसे यह कहा—

"आवुसो ! हमने अपने विचारोंके अनुसार कह दिया। आओ आवुसो ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ चलें। चलकर भगवान्‌से यह बात कहें। जैसे हमें भगवान् बतलाएँ वैसे उसे धारण करें।"

"अच्छा आवुस !" (कह) उन आयुष्मानोंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

तब वह आयुष्मान् जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! आ. रेवत और आ. आनंद जहाँ मैं था वहाँ धर्म सुननेके लिये आये। भन्ते ! मैंने दूरसे ही ० [1]। दो भिक्षु अभिधर्म कथा कहें, ० [1]।"

"साधु, साधु, सारिपुत्र ! मौद्गल्यायन ही ठीकसे कथन करेगा क्योंकि सारिपुत्र ! मौद्गल्यायन धर्म-कथिक (= धर्मका वक्ता) है।"

ऐसा कहने पर आ. महामौद्गल्यायनने भगवान्‌से यह कहा—

"तब मैंने भन्ते ! आ. सारिपुत्रको यह कहा—'आवुस सारिपुत्र ! ० [1]। ऐसे ही आवुस मौद्गल्यायन ०।"

"साधु साधु मौद्गल्यायन ! सारिपुत्र ही ठीकसे कथन करेगा क्योंकि मौद्गल्यायन ! सारिपुत्र चित्तको वशमें रखता है। स्वयं चित्तके वशमें नहीं होता। वह जिस विहार ० सायंकाल विहरता है।"

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! किसका (भाषित = कथन) सुभाषित है ?"

"सारिपुत्र ! तुम सभीका (भाषित) एक एक करके सुभाषित है। और मेरी भी सुनो ! किस प्रकारके भिक्षुसे गोसिंग सालवन शोभित होगा ?—यहाँ सारिपुत्र ! भिक्षु भोजनके बाद भिक्षासे निपटकर, आसन मार शरीरको सीधा कर, स्मृतिको सामने उपस्थित कर, (यह संकल्प करता है—) मैं तब तक इस आसनको नहीं छोड़ूँगा, जब तक कि मेरे चित्त-मल चित्तको न छोड़ देंगे। सारिपुत्र ! ऐसे भिक्षुसे गोसिंग सालवन शोभित होगा।"

भगवान्‌ने यह कहा। संतुष्ट हो उन आयुष्मानोंने भगवान्‌के भाषणका अभिनंदन किया।

१३—महा-गोपालक-सुत्तन्त (१।४।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! ग्यारह बातों (= अंगों)से युक्त गोपालक गोयूथकी करनेके अयोग्य है। कौनसे ग्यारह ?—(१) गोपालक रूप (= वर्ण)का जानने ा नहीं होता; (२) लक्षण (= चिह्न)में भी चतुर नहीं होता; (३) काली मक्खियोंको हटाने- ा नहीं होता; (४) घावका ढाँकनेवाला नहीं होता; (५) धुआँ नहीं करता; (६) तीर्थ = जलका उतार) नहीं जानता; (७) पानको नहीं जानता; (८) वीथी (= डगर)को नहीं नता; (९) चरागाहका जानकार नहीं होता; (१०) विना छोड़े (सारे)को दूह लेता है; ११) जो वह गायोंके पितर गायोंके स्वामी वृषभ (= साँड़) हैं उनकी अधिक पूजा (= भोज- दि प्रदान) नहीं करता। भिक्षुओ ! इन ग्यारह बातोंसे युक्त गोपालक गोयूथकी रक्षाकरनेके ोग्य है।

"ऐसेही भिक्षुओ ! ग्यारह बातोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म-विनय (= बुद्धधर्म)में वृद्धि रूढ़ि=विपुलता पानेके अयोग्य है। कौन ग्यारह ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु (१) रूपका जानने ला नहीं होता; (२) लक्षणमें भी चतुर नहीं होता; (३) आसाटिकों (= काली मक्खियों) हटाने वाला नहीं होता; (४) व्रण (= घाव)का ढाँकने वाला नहीं होता; (५) धुआँ नहीं ता; (६) तीर्थ नहीं जानता; (७) पानको नहीं जानता; (८) वीथीको नहीं जानता; ९) गोचर (= चरागाह)को नहीं जानता; (१०) विना छोड़े (= अशेषका) दूहने वाला ता है; (११) जो वह रतज्ञ (= अनुरक्त) चिरकालसे प्रव्रजित, संघके पितर, संघके नायक थिर भिक्षु हैं उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित नहीं करता।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु रूपका न जाननेवाला होता ?—यहाँ भिक्षुओ ! जो कोई रूप है, ई सब चार महाभूत (= पृथ्वी, जल, वायु, तेज) और चारों भूतोंको लेकर बना है। उसे यथार्थ नहीं जानता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु रूपका न जानने वाला होता है।"

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु लक्षणमें चतुर नहीं होता ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु यह यथार्थसे हीं जानता कि कर्मके लक्षण (= कारण)से बाल (= अज्ञ) होता है और कर्मके लक्षणसे पंडित ता है। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु आसाटिकका हटाने वाला नहीं होता ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु त्पन्न काम (= भोग-वासना)के वितर्क का स्वागत करता है, छोड़ता नहीं, हटाता नहीं, अलग हीं करता, अभावको नहीं प्राप्त करता; उत्पन्न व्यापाद (= पर-पीड़ा)के वितर्कको ०; उत्पन्न

हिंसाके वितर्कको; ० बराबर उत्पन्न होती बुराइयों = अकुशल धर्मोंका स्वागत करता है ०। इस प्रकार ० ।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु व्रणका ढाँकने वाला नहीं होता है ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु आँख से रूप देखकर उसके निमित्त (= अनुकूल प्रतिकूल होने)का ग्रहण करने वाला होता है, अनुव्यंजन (= पहिचान)का ग्रहण करने वाला होता है। जिस विषयमें इस चक्षु-इन्द्रियको संयत न रखनेपर लोभ और दौर्मनस्य (रूपी) बुराइयाँ=अकुशल धर्म आ चिपटते हैं, उससे संयम करनेके लिये तत्पर नहीं होता। चक्षुइन्द्रियकी रक्षा नहीं करता; चक्षुइन्द्रियसे संयम (= संवर)में लग्न नहीं होता। श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गंध सूँघ कर ०। जिह्वासे रस चख कर ०। कायासे स्प्रष्टव्यको स्पर्श कर ०। मनसे धर्मको जानकर निमित्तका ग्रहण करनेवाला होता है ० मन-इंद्रियके संयममें लग्न नहीं होता। इस प्रकार भिक्षुओ ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु धूमका न करनेवाला होता है ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु सुने अनुसार, जाने अनुसार, धर्मको दूसरोंके लिये विस्तारसे उपदेश करने वाला नहीं होता, इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु तीर्थको नहीं जानता ?—यहाँ भिक्षुओ ! जो वह भिक्षु बहु-श्रुत, आगम-प्राप्त, धर्म-धर, विनय-धर, मात्रिका-धर, हैं उनके पास समय समयपर जाकर नहीं पूछता, नहीं प्रश्न करता—भन्ते ! यह कैसे, इसका क्या अर्थ है ? उसके लिये वह आयुष्मान्, अविवृतको विवृत (= खोलकर बतलाना) नहीं करते; अस्पष्टको स्पष्ट नहीं करते अनेक प्रकारके शंका-स्थान वाले धर्मोंमें उठी शंकाका निवारण नहीं करते। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पानको नहीं जानता—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु तथागतके बतलाये धर्म-विनयके उपदेश किये जाते समय (उसके) अर्थ-वेद (= अर्थ-ज्ञान)को नहीं पाता, धर्म-वेदको नहीं पाता, धर्म संबंधी प्रमोद (= खुशी)को नहीं पाता। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु वीथीको नहीं जानता ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु आर्य-अष्टांगिक मार्गको ठीक ठीक नहीं जानता। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु गोचरमें कुशल नहीं होता ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु चार स्मृति-प्रस्थानोंको ठीक ठीक नहीं जानता। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु अशेषका दूहनेवाला होता है ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षुको श्रद्धालु गृहपति वस्त्र, भिक्षान्न, निवास, आसन, रोगीके (उपयोगी) पथ्य-औषधकी सामग्रियोंसे अच्छी तरह संतुष्ट करते हैं; वहाँ भिक्षु मात्रासे ग्रहण करना नहीं जानता। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु ० स्थविर भिक्षुओंको अतिरिक्त पूजासे पूजित नहीं करता ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु ० ० जो वह स्थविर भिक्षु हैं, उनके लिये गुप्त और प्रकट मैत्री-युक्त कायिक कर्म नहीं करता; ० वाचिक कर्म नहीं करता; ० मानस-कर्म नहीं करता। इस प्रकार भिक्षुओ ०।

"भिक्षुओ ! इन ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म-विनयमें वृद्धि विरूढिको प्राप्त करनेमें अयोग्य है।

"भिक्षुओ ! ग्यारह अंगोंसे युक्त गोपालक गोयूथकी रक्षा करनेके योग्य होता है। कौनसे ग्यारह ?—यहाँ भिक्षुओ ! गोपालक (१) रूपका जानने वाला होता है; (२) लक्षण-कुशल होता है; (३) आसाटिकका हटाने वाला होता है; (४) व्रणका ढाँकने वाला होता है; (५) धुआँ करनेवाला होता है; (६) तीर्थको जानता है; (७) पीत (= पान)को जानता है; (८) वीथीको जानता है; (९) गोचर-कुशल होता है; (१०) स-शेष दूहनेवाला होता है; (११) जो वह वृषभ ० उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित करता है। भिक्षुओ ! इन ग्यारह बातोंसे

युक्त गोपालक गोयूथके धारण करने, बढ़ानेके योग्य होता है। इसी प्रकार भिक्षुओ! ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म-विनयमें वृद्धि = विरूढि = विपुलता प्राप्त करनेके योग्य है। कौनसे ग्यारह?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु (१) रूपका जानने वाला होता है ०। (११) जो वह भिक्षु ० उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित करता है।

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु रूपका जानने वाला होता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु जो कुछ रूप है ० उसे यथार्थसे जानता है। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु लक्षण-कुशल होता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु इसे यथार्थसे जानता है कि कर्म-लक्षणसे बाल होता है और कर्म-लक्षणसे पंडित। इस प्रकार ०।

"० उत्पन्न काम-वितर्क ० व्यापाद-वितर्क ० हिंसा-वितर्क ० लोभ, दौर्मनस्य (रूपी) बुराइयों=अकुशल धर्मोंका स्वागत नहीं करता ०। इस प्रकार ०।

"चक्षुसे रूपको देखकर निमित्त-ग्राही नहीं होता ० इस प्रकार ०।

"० धुएँका करने वाला होता है?—सुने अनुसार, जाने अनुसार, दूसरोंके लिये धर्मको विस्तारसे उपदेश करता है। इस प्रकार ०।

"कैसे ० तीर्थको जानता है?—० बहु-श्रुत भिक्षुओंके पास समय समय पर जाकर प्रश्न पूछता है ०। इस प्रकार ०।

"कैसे ० पीतको जानता है?— ० तथागतके बतलाये धर्म और विनयके उपदेश किये जाते समय अर्थवेदको पाता है ०। इस प्रकार ०।

"कैसे ० वीथीको जानता है?— ० आर्य-अष्टांगिक मार्गको ठीक ठीक जानता है। इस प्रकार ०।

"कैसे ० गोचर कुशल होता है?— ० चारों स्मृति-प्रस्थानोंको ठीक ठीक जानता है। इस प्रकार ०।

"कैसे ० स-शेष दुहने वाला होता है— ० दायकके पथ्य औषध आदि सामग्री देते हैं, उसके ग्रहण करनेमें मात्राको जानता है। इस प्रकार ०।

"कैसे भिक्षुओ! ० स्थविर भिक्षुओंको अतिरिक्त पूजासे पूजित करता है?— ० उन स्थविर भिक्षुओंके लिये गुप्त और प्रकट मैत्रीयुक्त कायिक कर्म करता है; ० वाचिक कर्म ०; ० मानसिक कर्म करता है। इस प्रकार ०।

"भिक्षुओ! इन ग्यारह धर्मों (= बातों) से युक्त भिक्षु इस धर्म-विनयमें वृद्धि = विरूढि = विपुलताको प्राप्त होने योग्य है।"

भगवान्‌ने यह कहा। संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनंदन किया।

३४—चूल-गोपालक-सुत्तन्त (१।४।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वज्जी (देश)के[1] उक्काचेल (= उल्काचैल)में गंगानदीके तीर पर विहार करते थे।

वहाँ, भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा "भिक्षुओ! पूर्वकालमें मगधके रहनेवाले एक मूर्ख गोपालकने वर्षाके अन्तिम मासमें शरद्कालमें, गंगानदीके इस पारको बिना सोचे, उस पारको बिना सोचे, बेघाट ही विदेह (देश)की ओर दूसरे तीरको गायें हाँक दीं। तब भिक्षुओ! वह गायें गंगा नदीके स्रोतके मध्यमें भँवरमें पड़कर वहीं विनाशको प्राप्त हो गईं। सो किस लिये?—क्योंकि भिक्षुओ! उस मगधवासी मूर्ख गोपालकने ० गायें हाँक दीं। इसी प्रकार भिक्षुओ! जो कोई श्रमण (= सन्यासी) या ब्राह्मण इस लोकसे नावाकिफ़ (= अकुशल) हैं, परलोकसे नावाकिफ़ हैं, मार के लक्ष्यसे नावाकिफ़ हैं, मारके अलक्ष्यसे नावाकिफ़ हैं, मृत्युके लक्ष्य ० मृत्युके अलक्ष्यसे नावाकिफ़ हैं, उनके (उपदेशों)को जो सुनने योग्य, श्रद्धा करने योग्य समझेंगे उनके लिये यह चिरकाल तक अहितकर, दुःखकर होगा।

"भिक्षुओ! पूर्वकालमें एक मगधवासी बुद्धिमान ग्वालेने वर्षाके अन्तिम मासमें शरद्कालमें गंगानदीके इस पार को ० सोचकर घाटसे उत्तर तीर पर विदेहकी ओर ० गायें हाँकीं। उसने जो वह गायोंके पितर, गायोंके नायक वृषभ (= साँड़) थे उन्हें पहिले हाँका। वह गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक दूसरे पार चले गये। तब उसने दूसरी पश्चात् शिक्षित गायोंको हाँका ०। फिर बछड़े और बछियोंको हाँका ०। फिर दुर्बल बछड़ोंको ०। भिक्षुओ! उस समय तरुण कुछ ही दिनोंका पैदा एक बछड़ा भी माताकी गर्दनके सहारे तैरते गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक पार चला गया। सो क्यों?—क्योंकि भिक्षुओ! उस मगध-वासी बुद्धिमान् ग्वालेने ० हाँकी। ऐसेही भिक्षुओ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस लोकके जानकार ० उनको (उपदेशको) जो सुनने योग्य ० समझते हैं, उनके लिये यह चिरकाल तक हितकर सुखकर होगा।

"जैसे भिक्षुओ! वह गायोंके पितर ० वृषभ गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक उस पार चले गये, ऐसे ही भिक्षुओ! जो यह अर्हत् क्षीण-आस्रव, (ब्रह्मचर्य-)वास-समाप्त, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, सत्पदार्थ-को-प्राप्त, भव-बंधन-रहित, सम्यक्-ज्ञान-द्वारा-मुक्त हैं, वह मारकी धारा को तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक पार जायेंगे।

---

[1] संभवतः सोनपुर या हाजीपुर (बिहार)।

"जैसे भिक्षुओ ! शिक्षित बलवान् गायें ०; ऐसे ही भिक्षुओ ! जो वह भिक्षु पाँच अवर-भागीय-संयोजनोंके क्षयसे औपपातिक (= अयोनिज देव) हो, उस (देव-)लोकसे लौटकर न आ वहीं निर्वाण प्राप्त करनेवाले हैं; वह भी मारकी धाराको ० ।

"जैसे, भिक्षुओ ! वह बछड़े बछड़ियाँ ०; वैसे ही भिक्षुओ ! जो भिक्षु तीन संयोजनोंके क्षयसे राग-द्वेष-मोहके निर्बल होनेसे सकृदागामी हैं, सकृत् (= एक बार) ही इस लोकमें आकर दुःखका अंत करेंगे, वह भी ० ।

"जैसे भिक्षुओ ! वह एक निर्बल बछड़ा गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक दूसरे पार चला गया; वैसे ही भिक्षुओ ! जो वह भिक्षु तीन संयोजनोंके क्षयसे स्रोतआपन्न हैं, नियम-पूर्वक संबोधि (= परमज्ञान)-परायण, (निर्वाण-गामी-पथसे) न भ्रष्ट होनेवाले हैं; वह भी ० ।

"भिक्षुओ ! मैं इस लोकका जानकार हूँ, परलोक ० , ० मृत्युके अलक्ष्यका जानकार हूँ; भिक्षुओ ! ऐसे मेरे (उपदेश)को जो सुनने योग्य, श्रद्धाके योग्य मानेंगे उनके लिये यह चिरकाल तक हितकर सुखकर होगा ।"

भगवान्‌ने यह कहा; यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—

"जानकारने इस लोक परलोकको सुप्रकाशित किया ;
जो मारकी पहुँचमें हैं और जो मृत्यु (= मार)की पहुँचमें नहीं हैं ।
जानकार संबुद्धने सब लोकको जानकर ।
निर्वाणकी प्राप्तिके लिये क्षेम (युक्त) अमृतद्वारको खोल दिया ।
पापी (= मार)के स्रोतको छिन्न, विध्वस्त, विशृंखलित कर दिया ।
भिक्षुओ ! प्रमोदयुक्त होओ, क्षेमकी चाह करो ।"

३५—चूल-सच्चक-सुत्तन्त (१।४।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे।

उस समय वैशालीमें सच्चक (= सत्यक) नामक निगण्ठ-पुत्त (= नंगे साधुका पुत्र) रहता था; (जो कि) बकवादी पंडितमानी और बहुतसे लोगोंसे सम्मानित था। वह वैशालीमें सभाके भीतर ऐसा कहता था—'मैं ऐसे किसी श्रमण या ब्राह्मण, संघपति = गणपति, गणाचार्य—बल्कि (अपनेको) अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कहनेवालेको भी—नहीं देखता जो मेरे साथ वाद रोपकर कम्पित, सम्प्रकम्पित = सम्प्रवेधित न हो; जिसकी काँखसे पसीना न छूटने लगे। यदि मैं अचेतन खम्भसे भी शास्त्रार्थ आरम्भ करूँ तो वह भी मेरे वादके मारे कम्पित, सम्प्रकम्पित, सम्प्रवेधित होवे, आदमीकी तो बात ही क्या कहनी' ?

तब आयुष्मान् अश्वजित् पूर्वाह्नके समय (वस्त्र) पहनकर पात्र-चीवर ले वैशालीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। वैशालीमें टहलते, अनुचंक्रमण करते = अनुविचरण करते सच्चक निगण्ठ पुत्तने दूरसे ही आयुष्मान् अश्वजित्को आते देखा। देखकर जहाँ आयुष्मान् अश्वजित् थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् अश्वजित्के साथ यथायोग्य...(कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए सच्चक निगण्ठपुत्त ने आयुष्मान् अश्वजित्से यह कहा—

"भो अश्वजित्! कैसे श्रमण गौतम शिष्योंको शिक्षा देते हैं? किस प्रकारका उपदेश श्रमण गौतमके शिष्योंमें अधिक प्रचलित है?"

"अग्निवेश! इस प्रकार भगवान् श्रावकोंको शिक्षा देते हैं; इस प्रकारका उपदेश भगवान्के शिष्योंमें अधिक प्रचलित है—'भिक्षुओ! रूप अनात्मा (= आत्मा नहीं) है; वेदना अनात्मा है, संज्ञा०; संस्कार०; विज्ञान०; सारे धर्म (= पदार्थ) अनात्मा हैं।' अग्निवेश! इस प्रकार भगवान् श्रावकोंको शिक्षा देते हैं०।"

"भो अश्वजित्! ऐसे वादवाले श्रमण गौतमके बारेमें जो हमने सुना, वह ठीक नहीं सुना। क्या कभी हमारा उन आप गौतमके साथ समागम होगा? क्या कोई कथा-संलाप होगा? क्या हमारी वह बुरी धारणा छूटेगी?"

उस समय पाँच सौ लिच्छवी संस्थागार (= प्रजातन्त्र-भवन)में किसी कामसे एकत्रित हुये थे। तब सच्चक निगण्ठ-पुत्त, जहाँ वह लिच्छवी थे, वहाँ गया। जाकर उन लिच्छवियोंसे बोला—

"चलो आप लिच्छवी! आज मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा-संलाप होगा। यदि श्रमण गौतम वैसे (वाद)में स्थिर रहेगा जैसा कि उसके एक प्रसिद्ध शिष्य अश्वजित् नामक भिक्षुने कहा; तो जैसे बलवान् पुरुष दीर्घ लोमोंवाली भेड़को लोमसे पकड़कर निकाले, घुमावे, फिरावे

इसी प्रकार मैं श्रमण गौतमको वाद द्वारा निकालूँगा, घुमाऊँगा, फिराऊँगा। जैसे बलवान् शराबकी भट्ठीका कर्मचारी शौण्डिका (=भट्ठी)के किलञ्ज (=छन्ने)को गम्भीर जलाशयमें फेंक, कानसे पकड़ कर, निकाले, घुमावे, फिरावे; इसी प्रकार मैं०। जैसे शौण्डिका धूर्त (=शराबमें मस्त) बच्चेको कानसे पकड़कर हिलावे, डुलावे, कँपावे; इसी प्रकार०। जैसे साठ बरसका पट्ठा (हाथी) गहरी पोखरीमें घुसकर सनधोवन नामकी क्रीड़ाको खेले इसी प्रकार०। चलो आप लिच्छवी०।"

यहाँ कोई कोई लिच्छवी कहने लगे—'श्रमण गौतम सच्चक निगण्ठ-पुत्तके साथ क्या वाद कर सकता है? हाँ, सच्चक निगण्ठ-पुत्त श्रमण गौतमके साथ (सफलता पूर्वक) वाद कर सकता है।' कोई कोई लिच्छवी कहने लगे—'क्या होकर सच्चक निगण्ठ-पुत्त भगवान्‌के साथ वाद करेगा? हाँ भगवान् सच्चकके साथ वाद कर सकते हैं।'

तब सच्चक निगण्ठ-पुत्त पाँच सौ लिच्छवियोंके साथ जहाँ महावनमें कूटागार-शाला थी वहाँ गया। उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे। तब सच्चक निगण्ठ-पुत्त जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओंसे बोला—

"भो! इस समय आप श्रमण गौतम कहाँ विहार करते हैं? हम आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं।"

"अग्निवेश! वह भगवान् महावनमें प्रविष्ट हो एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिए बैठे हैं।"

तब सच्चक निगण्ठ-पुत्त बड़ी भारी लिच्छवी-परिषद्‌के साथ प्रवेश कर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ यथायोग्य......(कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। वह लिच्छवी भी भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये०। ०एक ओर बैठे सच्चक निगण्ठ-पुत्तने भगवान्‌से यह कहा—

"यदि आप गौतम प्रश्न करनेकी आज्ञा दें, तो कोई बात आप गौतमसे पूछूँ ?"

"अग्निवेश[1]! जो चाहो सो पूछो।"

"कैसे आप गौतम शिष्योंको शिक्षा देते हैं०?"

"अग्निवेश! मैं इस प्रकार शिष्योंको शिक्षा देता हूँ०—'भिक्षुओ! रूप अनित्य है, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान०। रूप अनात्मा है, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान अनात्मा है। सारे संस्कार (=गतियाँ) अनित्य हैं। सारे धर्म (=पदार्थ) अनात्मा हैं। अग्निवेश! इस प्रकार मैं शिष्योंको शिक्षा देता हूँ०।"

"भो गौतम! मुझे एक उपमा याद आती है।"

भगवान्‌ने कहा—"अग्निवेश! (कहो क्या) उपमा याद आती है?"

"भो गौतम! जैसे जो कोई भी यह बीज समुदाय, प्राणिसमुदाय, वृद्धि=विरूढि=विपुलताको प्राप्त होते हैं; वह सभी पृथ्वीका आश्रय लेकर, पृथ्वीमें प्रतिष्ठित होकर। इस प्रकार यह बीजग्राम, भूतग्राम (=प्राणि-समुदाय), वृद्धि, विरूढि, विपुलताको प्राप्त होते हैं। जैसे भो गौतम! जो कोई बलसे किये जाने वाले कर्मान्त (=काम) हैं, वह सभी पृथ्वीका आश्रय लेकर०। इसी प्रकार यह बलसे किये जानेवाले कर्मान्त किये जाते हैं। ऐसे ही भो गौतम! यह पुरुष=पुद्गल रूपके कारण रूपमें प्रतिष्ठित हो, पुण्य या अपुण्यको उत्पन्न करता है। वेदना०। संज्ञा०। संस्कार०। विज्ञान०।"

"क्या अग्निवेश ! तू यह कहता है—'रूप मेरा आत्मा है, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ०; ?"

"भो गौतम ! मैं यह कहता हूँ—रूप मेरा आत्मा है, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ०; और यह बड़ी जनता भी (कहती है)।"

"अग्निवेश ! यह बड़ी जनता क्या कहेगी ? तू अपने ही अपने वादको घता।"

"भो गौतम ! मैं यह कहता हूँ—रूप मेरा आत्मा है ०।"

"तो अग्निवेश ! तुझसे ही यह पूछता हूँ, जैसे तुझे जँचे वैसा उत्तर दे। तो क्या मानता है, अग्निवेश ! क्या मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा अपने राज्यमें 'मारो'—कह मरवा सकता है 'जलाओ'—कह जलवा सकता है, 'देशसे निकालो'—कह देशसे निकलवा सकता है; जैसे कि राजा प्रसेनजित् कोसल या जैसे मगधराज वैदेही-पुत्र अजातशत्रु ?"

"हाँ, भो गौतम ! मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा अपने राज्यमें ० देशसे निकलवा सकता है ० जैसे मगधराज वैदेहीपुत्र अजातशत्रु। भो गौतम ! यह जो संघ (=प्रजातंत्र) हैं जैसे कि वज्जी या मल्ल वह भी अपने राज्यमें ० देशसे निकलवा सकते हैं; राजा प्रसेनजित् कोसल या मगधराज वैदेही-पुत्र अजातशत्रु—मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओंके लिए तो क्या ? होता है हे गौतम ! हो सकता है।"

"तो क्या मानता है अग्निवेश ! जो तू कहता है—रूप मेरा आत्मा है। क्या वह रूप तेरे वशका है—मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा न होवे ?"

ऐसा कहनेपर सच्चक निगण्ठ-पुत्त चुप हो गया। दूसरी बार भी भगवान्‌ने सच्चक निगण्ठ-पुत्तसे यह कहा—'तो क्या मानता है ० ?' दूसरी बार भी ० चुप हो गया। तब भगवान्‌ने सच्चक निगण्ठ-पुत्तसे यह कहा—

"अग्निवेश ! अब जवाब दो। यह चुप रहनेका समय नहीं है। अग्निवेश ! जो कोई तथागतद्वारा धार्मिक प्रश्न पूछनेपर तीसरी बार तक चुप रहता है, यहीं उसका शिर सात टुकड़े हो जाता है।"

उस समय वज्रपाणि यक्ष आदीप्त = सम्प्रज्वलित आग-समान दहकते लोहेके वज्रको लेकर सच्चक निगण्ठ-पुत्तके ऊपर आकाशमें खड़ा था—यदि यह सच्चक निगण्ठ-पुत्त भगवान्‌के धार्मिक प्रश्न पूछनेपर तीसरी बार भी उत्तर न देगा तो यहीं इसके सिरके सात टुकड़े करूँगा। उस वज्रपाणि यक्षको भगवान् देखते थे और सच्चक निगण्ठ-पुत्त देखता था। तब सच्चक निगण्ठ-पुत्तने भयभीत, उद्विग्न, रोमाञ्चित हो भगवान्‌हीको शरण पाया, भगवान्‌को ही त्राण पाया, भगवान् ही को लयन (=आश्रय-स्थान) पाया; और भगवान्‌से कहा—

"पूछें आप गौतम ! मैं उत्तर दूँगा।"

"तो क्या मानता है अग्निवेश ! जो तू यह कहता है—रूप मेरा आत्मा है। क्या रूप तेरे वशमें है ० ?"

"नहीं, भो गौतम !"

"अग्निवेश ! होश कर। अग्निवेश ! होश करके उत्तर दे। तेरा पूर्वका (कथन) पिछलेसे नहीं मिलता है; पिछला, पहिलेसे नहीं मिलता है। तो क्या मानता है अग्निवेश ! वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ०।"

"नहीं भो गौतम !"

"होश कर अग्निवेश ! होश करके अग्निवेश उत्तर दे ०। तो क्या मानता है अग्निवेश ? रूप नित्य है या अनित्य ?"

"अनित्य है, भो गौतम !"

"जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?"

"दुःख है, भो गौतम !"

"जो अनित्य दुःख परिवर्तन-शील है, क्या उसके लिये यह ख्याल करना उचित है—'यह मेरा है,' 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा आत्मा है' ?"

"नहीं भो गौतम !"

"तो क्या मानता है, अग्निवेश ! वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ० ।"

"नहीं भो गौतम !"

"तो क्या मानता है अग्निवेश ! जो कोई दुःखमें पड़ा है, दुःखमें लिपटा है, दुःखको अनुभव कर रहा है, दुःखको—'यह मेरा है,' 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा आत्मा है',—समझता है; क्या वह स्वयं (उस) दुःखको हटा सकेगा; दुःखको दूर फेंक कर विहर सकेगा ?"

"भो गौतम ! कैसे होगा ? नहीं होगा, भो गौतम ।"

"तो क्या मानता है अग्निवेश ! इस प्रकार तू दुःखमें पड़ा है ० दुःखको दूर फेंककर विहर सकेगा ?"

"भो गौतम ! कैसे होगा ? नहीं होगा, भो गौतम ।"

"जैसे अग्निवेश ! सार चाहनेवाला, सार खोजनेवाला पुरुष, सार (= हीर)की खोजमें विचरते तीक्ष्ण कुल्हाड़ेको लेकर वनमें प्रविष्ट हो। वह वहाँ सीधे, नये,······बड़े भारी केलेके तनेको देखे। उसे वह जड़से काटे। जड़से काटकर सिरेसे काटे। सिरसे काट कर पत्तेकी लपेटनको उघेड़े। वहाँपर वह पत्तोंकी लपेटनको उघेड़ते हुये फल्गूको भी न पावे, सार कहाँसे पायेगा ? इसी प्रकार अग्निवेश ! अपने वादमें तुमसे प्रश्न करनेपर, भाषण करनेपर······तू रिक्त = तुच्छ अपराधी (सा जान पड़ा)। और अग्निवेश ! तूने वैशालीमें सभाके भीतर यह बात कही—"मैं ऐसे किसी श्रमण या ब्राह्मण ०[1] आदमीकी तो बात ही क्या कहनी ?' अग्निवेश ! तेरे ललाटपर कोई कोई पसीनेकी बूँदे आ गई हैं, उत्तरासंग (= उपरना) छूटकर ज़मीनपर गिर पड़ा है। मेरे तो अग्निवेश ! कायामें पसीना नहीं।"—

यह (कह कर) भगवान्‌ने सभामें (अपने) सुवर्ण-वर्ण शरीरको खोल दिया। ऐसा कहने पर सच्चक निगण्ठपुत्त चुप्पी हो, मूक हो, कन्धेको गिराकर, नीचेकी ओर मुँह कर, प्रतिभा-हीन हो, सोचते बैठा रहा। तब दुर्मुख लिच्छवि-पुत्र सच्चकको ० सोचते देख, भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते ! यहाँ मुझे एक उपमा याद आती है।"

भगवान्‌ने यह कहा—"(कहो)-दुर्मुख ! (क्या) उपमा याद आती है ?"

"जिस प्रकार भन्ते ! गाँव या क़स्बेके पासमें पुष्करणी हो। वहाँ एक केकड़ा हो। तब भन्ते ! बहुतसे लड़के या लड़कियाँ उस गाँव या क़स्बेसे निकल कर जहाँ वह पुष्करणी है, वहाँ जायें। जाकर उस केकड़ेको पानीसे निकाल स्थलपर रक्खें। वह केकड़ा जिस जिस आरको निकाले उसी उसीको वह बालक बालिकायें काठसे या कठला (= ठीकरे)से काटें, तोड़ें, भग्न करें; इस प्रकार भन्ते ! वह केकड़ा सारे छिन्न, भग्न, परिभग्न आरोंके कारण उस पुष्करणीमें फिर उतरनेके अयोग्य हो जाये। ऐसे ही भन्ते ! सच्चक निगण्ठ-पुत्तके जो कोई अभिमान, अहङ्कार······थे, वह सभी भगवान्‌ने काट दिये, तोड़ दिये, भग्न कर दिये। भन्ते ! अब सच्चक

निगण्ठ-पुत्त फिर भगवान्‌के साथ वादके लिये आने योग्य नहीं है।"

ऐसा कहनेपर सच्चक निगण्ठ-पुत्तने दुर्मुख लिच्छवी-पुत्रसे यह कहा—

"ठहरो, दुर्मुख! ठहरो, दुर्मुख! हम तुम्हारे साथ बात नहीं कर रहे हैं। हम यहाँ आप गौतमके साथ बात कर रहे हैं। भो गौतम! रहने दो, हमारे और दूसरे श्रमण-ब्राह्मणोंके इस वाचिक प्रलाप······को; कैसे आप गौतमके श्रावक शासन-कर (= उपदेशके अनुसार चलनेवाले), संदेह-रहित, वाद-विवादसे-रहित, विशारदता प्राप्त हो, दूसरेके अनाश्रित बन, अपने शास्ता (= उपदेशक)के शासन (= धर्म)में विहरते हैं?"

"अग्निवेश! यहाँ मेरे श्रावक भूत, भविष्य, वर्तमानका, शरीरके भीतर या बाहरका स्थूल या सूक्ष्म, हीन या उत्तम, दूर या नज़दीक—जो कुछ भी रूप है, सभी रूपको—'न यह मेरा है', 'न यह मैं हूँ', 'न यह मेरा आत्मा है';—इस प्रकार इसे यथार्थतः सम्यक् प्रज्ञासे देखते हैं। ० वेदना ०। ० संज्ञा ०। ० संस्कार ०। ० । इस प्रकार अग्निवेश! मेरे, शिष्य शास्ताके शासनमें विहरते हैं।"

"भो गौतम! किस प्रकार भिक्षु अर्हत् = क्षीणास्रव, समाप्त(ब्रह्मचर्य)-वास कृत-करणीय, भार-मुक्त, सत्पदार्थ-प्राप्त भव-बंधन-रहित, सम्यक्-ज्ञान-से मुक्त होता है?"

"अग्निवेश! यहाँ भिक्षु ० जो कुछ रूप है सभी रूपको—'न यह मेरा है' ०; इस प्रकार इसे ठीक ठीक सम्यक् प्रज्ञासे जान कर (उसे) न ग्रहण कर मुक्त होता है। ० वेदना ०। ० संज्ञा ०। ० संस्कार ०। ० विज्ञान ०। इस प्रकार अग्निवेश! भिक्षु अर्हत् ० होता है। इस प्रकार अग्निवेश! भिक्षु तीन अनुत्तरीय (= अनुपम पदार्थों)से युक्त होता है—दर्शन (= साक्षात्कार) अनुत्तरीय, प्रतिपद् (= मार्ग)-अनुत्तरीय विमुक्ति (= मुक्ति)-अनुत्तरीय। इस प्रकार मुक्त हुआ भिक्षु अग्निवेश! तथागतका ही सत्कार = गुरुकार = सम्मान = पूजन करता है—वह भगवान् बुद्ध हैं, बोधके लिये धर्म-उपदेश करते हैं, वह भगवान् दान्त हैं, दमनके लिये उपदेश करते हैं, वह भगवान् शान्त हैं, शान्तिके लिये धर्म-उपदेश करते हैं; वह भगवान् तीर्ण हैं, तरनेके लिये ०; ० परिनिर्वृत हैं, परिनिर्वाण (= निर्वाण)के लिये धर्म-उपदेश करते हैं।"

ऐसा कहनेपर सच्चक निगंठ-पुत्तने भगवान्‌से यह कहा—

"भो गौतम! हमही अभिमानी हैं, हमही प्रगल्भ हैं; जो कि हमने आप गौतमके साथ विवाद करनेका ख्याल लेना चाहा। भो गौतम! मत्त हाथीके साथ भिड़कर पुरुषका कल्याण हो जाय; किन्तु, आप गौतमसे भिड़कर पुरुषका कल्याण नहीं हो सकता। भो गौतम! घोर विष वाले आशीविष (= सर्प)से भिड़कर पुरुषका कल्याण हो जाय ०। ० जलते अग्निपुंजसे भिड़कर ०। भो गौतम! हमही अभिमानी हैं ०। आप गौतम भिक्षु-संघके साथ कलके लिये मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब सच्चक निगंठ-पुत्तने भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, उन लिच्छवियोंको संबोधित किया—

"सुनें आप सब लिच्छवि! मैंने कलके भोजनके लिये भिक्षु-संघ सहित श्रमण गौतमको निमंत्रित किया है, सो वैसा करें जैसा कि इसके लिये योग्य समझें। तब उन लिच्छवियोंने उस रातके बीत जानेपर सच्चक निगंठ-पुत्तके पास भोजनार्थ पाँच सौ स्थालीपाकों (= सीधों) को पहुँचा दिया। तब सच्चक निगंठ-पुत्तने अपने आराममें उत्तम खाद्य भोज्य संपादितकर भगवान्‌के पास कालकी सूचना दी—"भो गौतम! काल हो गया, भोजन तैयार है।"

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्रचीवर ले, जहाँ सच्चक निगंठ-पुत्तका आराम था,

वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब सच्चक निगंठ-पुत्तने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्य द्वारा अपने हाथसे संतर्पित=संप्रवारित किया। तब भगवान्‌के भोजन कर हाथ हटा लेनेपर, सच्चक निगंठ-पुत्त एक छोटे आसनको लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सच्चक निगंठ-पुत्तने भगवान्‌से यह कहा—

"भो गौतम! जो यह दानमें पुण्य है, वह दायकोंके सुखके लिये हो।"

"अग्निवेश! जो अ-वीतराग, अ-वीतद्वेष, अ-वीत-मोह, दान-पात्रको देनेसे (पुण्य होता है) वह दायकोंको होगा; और अग्निवेश! जो मेरे ऐसे वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-मोह, दान-पात्रों (को दान देनेसे पुण्य है) वह तेरे लिये होगा।"

३६—महा-सच्चक-सुत्तंत (१।४।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे।

उस समय भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्रचीवर ले वैशालीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट होना चाहते थे। तब सच्चक निगंठ-पुत्त जंघाविहार (=टहलने)के लिये अनुचंक्रमण करता, अनुविचरण करता, जहाँ महावनकी कूटागार-शाला थी, वहाँ गया। आयुष्मान् आनंदने दूरसे ही सच्चक निगंठ-पुत्तको आते देखा। देखकर भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! यह सच्चक निगंठ-पुत्त आरहा है (जो कि) बहुत बकवादी पंडित-मानी और बहुत जनों द्वारा सम्मानित है। भन्ते! यह बुद्धकी निन्दा चाहने वाला, धर्मकी निंदा चाहने वाला, संघकी निन्दा चाहनेवाला है। अच्छा हो भन्ते! यदि भगवान् कृपा करके थोड़ी देर यहीं बैठें।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। तब सच्चक निगंठ-पुत्त जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ यथायोग्य (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सच्चक निगंठ-पुत्तने भगवान्से यह कहा—

"भो गौतम! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण कायिक भावनामें तत्पर हो विहरते हैं, चित्तकी भावनामें नहीं (तत्पर होते)। वह शारीरिक दुःखमय, वेदनाको पाते हैं। भो गौतम! पहिले शारीरिक दुःख-वेदनामें पड़े हुएका ऊरुस्तंभ (=जाँघोंका कड़िया जाना) भी होगा, हृदय भी विदीर्ण होगा, मुखसे गरम खून भी निकल आयेगा, उन्माद, चित्त-विक्षेप भी होगा। भो गौतम! उसका यह चित्त काय ही तो है, कायाके ही वशमें तो है। सो क्यों?—चित्तकी भावना न करने से। *भो गौतम! यहाँ कोई कोई श्रमण ब्राह्मण चित्तकी भावनामें तत्पर हो विहरते हैं।* कायाकी भावनामें नहीं। भो गौतम! वह चैतसिक दुःख-वेदनामें पड़ते हैं। भो गौतम! चैतसिक दुःख-वेदनामें पड़नेसे (उस समय) (उनका) ऊरुस्तंभ भी होगा ०। सो क्यों?—कायाकी भावना न करनेसे। भो गौतम! मुझे ऐसा होता है, जरूर आप गौतमके शिष्य, चित्तकी भावनामें तत्पर हो विहरते हैं, कायाकी भावनामें नहीं।"

"अग्निवेश! तूने काय-भावना क्या सुनी है?"

"जैसे कि वह नन्द वात्स्य, कृश सांकृत्य, मक्खली-गोसाल (मानते हैं)। भो गौतम! वह अचेलक (=नग्न), मुक्त-आचार ०[1] साप्ताहिक भी आहार करते हैं। ऐसे इस प्रकार बीचमें अन्तर देकर अर्धमासिक आहारको ग्रहणकर विहरते हैं।"

---

[1] देखो पृष्ठ ४८।

"अग्निवेश ! क्या वह उतनेहीसे गुज़ारा करते हैं ?"

"नहीं भो गौतम ! कभी कभी उत्तम उत्तम भोजनोंको खाते हैं। उत्तम उत्तम खाद्योंको ग्रहण करते हैं। उत्तम उत्तम स्वादनीय (पदार्थों)को स्वादन करते हैं। उत्तम उत्तम पानोंको पीते हैं। वह इस शरीरको बढ़ाते हैं, पोसते हैं, चरबी पैदा करते हैं। इस प्रकार इस शरीरका संचय-प्रचय होता है।"

"अग्निवेश ! चित्त-भावना तूने कैसी सुनी है ?"

भगवान्‌के चित्त-भावनाके विषयमें पूछने पर सच्चक निगंठ-पुत्त कुछ न बोला। तब भगवान्‌ने सच्चक निगंठ-पुत्तसे यह कहा—

"अग्निवेश ! जो तूने यह पहले काय-भावना कही वह भी आर्यविनय (= धर्म)में धार्मिक काय-भावना नहीं है। अग्निवेश ! तूने काय-भावनाको ही नहीं जाना, चित्त-भावनाको तो क्या जानेगा ? अग्निवेश ! जैसे कायासे अभावित, चित्तसे अभावित; (एवं) कायासे भावित और चित्तसे भावित होता है, उसे सुन अच्छी तरह मनमें कर कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" (यह) सच्चक निगंठपुत्तने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—

"अग्निवेश ! कैसे (पुरुष) कायासे अभावित और चित्तसे अभावित होता है ?—यहाँ अग्निवेश ! अज्ञ अनाड़ी जनको जब सुख-वेदना (= सुखका अनुभव)होती है तो वह सुख-वेदनासे लिप्त हो, सुखमें रागी होता है, सुखकी रागिताको प्राप्त होता है। (कालान्तरमें जब) उसकी वह सुख-वेदना निरुद्ध हो जाती है। सुख-वेदनाके निरुद्ध होनेसे दुःख-वेदना उत्पन्न होती है। दुःख-वेदनामें पड़कर वह शोक करता है, कलपता है, विलाप करता है, छाती पीटकर रोता है, मूर्छित होता है। (इस प्रकार) अग्निवेश ! उसके लिये उत्पन्न हुई वह सुख-वेदना कायाके भावित न होनेसे चित्तको पकड़कर ठहरती है; चित्तकी भावना न करनेसे उत्पन्न हुई दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है। अग्निवेश। जिस किसीको इस प्रकार दोनों ओरसे ० उत्पन्न सुख-वेदना, दोनों ओरसे चित्तकी भावना न करनेसे उत्पन्न हुई दुःख वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है; अग्निवेश ! (यह)-(पुरुष) कायासे भावना-रहित और चित्तसे भावना-रहित होता है।

"कैसे अग्निवेश ! (पुरुष) भावित-काय और भावित-चित्त होता है ?—अग्निवेश बुद्धिमान् आर्य श्रावकको जब सुख-वेदना उत्पन्न होती है, तो वह सुख-वेदनाको पाकर सुख-रागी नहीं होता, सुखमें रागित्वको प्राप्त नहीं होता। (जब) उसकी वह सुख-वेदना नष्ट होती है; सुख-वेदनाके निरोध(= नाश)से दुःख-वेदना उत्पन्न होती है, (तब) वह दुःख-वेदनामें पड़कर न शोक करता है ० न मूर्छाको प्राप्त होता है। अग्निवेश ! कायाके भावित होनेसे उसकी वह उत्पन्न हुई सुख-वेदना चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती; ० दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती। अग्निवेश ! इस प्रकार दोनों ओरसे कायाके भावित होनेसे जिस किसीकी उत्पन्न सुख-वेदना भी चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती, चित्तके भावित होनेसे उत्पन्न दुःख-वेदना भी चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती, अग्निवेश ! (वह)...(पुरुष) भावितकाय और भावितचित्त होता है।"

"भो गौतम ! मेरा विश्वास है, कि आप गौतम भावित-काय (शरीरकी साधना जिसनेकी है) और भावित-चित्त (= चित्तकी साधना जिसने की है) हैं।"

"जरूर, अग्निवेश ! तूने तानेसे यह बात कही। अच्छा, तो मैं तुझसे कहता हूँ—जब कि, अग्निवेश ! मैं केश-दाढ़ी मुँड़ा, काषाय-वस्त्र पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ ० तो उत्पन्न हुई सुख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरेगी उत्पन्न दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरेगी—यह संभव नहीं।"

"क्या, आप गौतमको वैसी सुख-वेदना उत्पन्न होती है, जैसी उत्पन्न हुई सुख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है? क्या आप गौतमको वैसी दुःख-वेदना उत्पन्न होती है, जैसी उत्पन्न हुई दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है?"

"हमें क्या होगा अग्निवेश! यहाँ, अग्निवेश! बुद्ध होनेसे पूर्व, बुद्ध न हो बोधिसत्त्व होते समय मुझे ऐसा हुआ—घरका निवास जंजाल है, मलका मार्ग है, प्रव्रज्या (=संन्यास) खुला स्थान है। इस सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, छिले शंखसे (उज्वल) ब्रह्मचर्यका पालन घरमें रहकर सुकर नहीं है; क्यों न मैं केश-दाढ़ी मुँडा, काषाय-वस्त्र पहन घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ। सो मैं, अग्निवेश! दूसरे समय ०[1]। सो मैं अग्निवेश! उस धर्मको अपर्याप्त मान, उस धर्मसे उदास हो चल दिया। ०[1] मगधमें क्रमशः चारिका करता, जहाँ उरुवेला सेनानी-निगम था, ०[2] वहीं बैठ गया। मुझे, अग्निवेश! (उस समय) अद्भुत, अश्रुत-पूर्व तीन उपमायें भासित हुईं—

(१) "जैसे गीला काष्ठ भीगे पानीमें डाला हो ०[2]।

(२) "० जैसे स्नेह-युक्त गीला काष्ठ जलके पास स्थल पर फेंका हो ०[2]।

(३) "० जैसे नीरस शुष्क काष्ठ जलसे दूर स्थलपर फेंका हो ०[2]।

"तब अग्निवेश! मेरे (मनमें) हुआ—'क्यों न मैं दाँतोंके ऊपर दाँत रख, जिह्वा द्वारा तालूको दबा ०[2]। उस समय मैंने न-दबनेवाला वीर्य (=उद्योग) आरम्भ किया हुआ था, न-भूली स्मृति मेरी जागृत थी; उसी दुःखमय प्रधान (=साधना)से पीड़ित होनेके कारण मेरी काया चंचल अ-शान्त हो गई।—इस प्रकार अग्निवेश! उत्पन्न हुई वेदना चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती।

"तब, अग्निवेश! मेरे (मनमें) हुआ—क्यों न मैं श्वास-रहित ध्यान धरूँ?—सो मैंने अग्निवेश! मुख और नासिकासे श्वासका आना जाना रोक दिया। ०[2]। उसी दुःखमय प्रधान के कारण ०।

" ०[2] मैंने अग्निवेश! मुख और नासिकासे श्वासका आना जाना रोक दिया। ०[2]। उसी दुःखमय प्रधानके कारण ०।

" ०[2] मैंने अग्निवेश! मुख, नासिका और कानसे श्वासका आना जाना रोक दिया। ०[2]। उसी दुःखमय प्रधानके कारण ०।

" ०[2] मैंने अग्निवेश! मुख, नासिका और कानसे श्वासका आना जाना रोक दिया। ०[2]।

"तब मुझे अग्निवेश! यह हुआ—'क्यों न मैं आहारको बिल्कुल ही छोड़ देना स्वीकार करूँ ०[2]। अग्निवेश! मेरा वैसा परिशुद्ध, पर्यवदात (=सफेद, गोरा), छविवर्ण (=चमड़ेका रंग) नष्ट हो गया था। ०[2] सो मैं अग्निवेश! स्थूल आहार ओदन कुल्माष ग्रहण करने लगा। ०[2], प्रथम ध्यान ०[3]। ०[3] द्वितीय ध्यान ०[3]। ०[3] तृतीय ध्यान ०[3]। ०[3] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त कर विहरने लगा। अग्निवेश! उत्पन्न हुई सुखवेदना इस प्रकार मेरे चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती।

"सो मैंने अग्निवेश! इस प्रकार चित्तके ०[4] परिशुद्ध होनेपर पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके लिये चित्तको झुकाया ०[4]। अग्निवेश! रात्रिके प्रथम याममें यह प्रथम विद्या प्राप्त हुई ०[4]।

---

[1] देखो पृष्ठ १०४-५। (अरियपरियेसन-सुत्तन्त २६), भिक्षुओंको संबोधित करनेकी जगह, अग्निवेशको संबोधित करनेके साथ। [2] देखो बोधिराजकुमार-सुत्तन्त ८५, राजकुमारकी जगह अग्निवेशको संबोधित कर। [3] देखो पृष्ठ १५। [4] देखो तीन विद्यायें, पृष्ठ १५, १६।

"०[1] विशुद्ध दिव्य-चक्षुसे ०[1] प्राणियोंको देखने लगा ०[1]। रातके बिचले पहर यह द्वितीय विद्या प्राप्त हुई[1]।

"०[1] आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया ०[1] अब यहाँके लिये कुछ (करणीय) नहीं"—इसे जाना। अग्निवेश ! रातके पिछले याममें यह तृतीय विद्या प्राप्त हुई ०[1]। ० इस प्रकार अग्निवेश ! उत्पन्न हुई सुखवेदना मेरे चित्तको पकड़ कर नहीं ठहरती।

"अग्निवेश ! मैं अनेक सौकी परिषद्में व्याख्यान देता था, और उनमेंसे हर एक समझता था, कि श्रमण गौतम मेरेही लिये धर्म-उपदेश कर रहा है। अग्निवेश ऐसा न समझो, कि तथागत केवल विज्ञापनके लिये दूसरोंको धर्म-उपदेश करते हैं। मैं अग्निवेश उस कथाके समाप्त होने पर उसी पहिलेके समाधि-निमित्त (= चित्त-एकाग्रताके आकार)में, अपने भीतर ही चित्तको ठहराता हूँ, बैठाता हूँ, एकाग्र करता हूँ, समाहित करता हूँ, उसके साथ सदा सर्वदा विहार करता हूँ।"

"अर्हत् सम्यक् संबुद्धकी भाँति आप गौतमको यह योग्य ही है। क्या आप गौतम दिनको सोते हैं ?"

"सोता हूँ, अग्निवेश ! ग्रीष्मके अन्तिम मासमें भोजनान्तर भिक्षासे निपट कर, चौपेती संघाटीको बिछवा दाहिनी करवटसे स्मृति-संप्रजन्य युक्त हो निद्रित होता हूँ।"

"भो गौतम ! इसे कोई कोई श्रमण ब्राह्मण संमोह (= मूढता)का विहार करते हैं।"

"अग्निवेश ! इतनेसे संमूढ (= मूढ) या अ-संमूढ नहीं होता। अग्निवेश ! जैसे संमूढ या अ-संमूढ होता है, उसे सुन अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ।"

"अच्छा, भो !" (कह) सच्चक निगंठपुत्तने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—"अग्निवेश ! जिस किसीके यह संक्लेशिक (= मलिन करनेवाले), पुनर्जन्म देनेवाले, दुःख-परिणामवाले, भविष्यमें जन्म-जरा-मरण देनेवाले आस्रव (= चित्त-मल) नष्ट नहीं हुये, उसे मैं संमूढ (= मूढ) कहता हूँ। अग्निवेश ! आस्रवोंके नाश न होनेसे (पुरुष) संमूढ होता है। अग्निवेश ! जिस किसीके यह आस्रव ० नष्ट हो गये, उसे मैं अ-संमूढ कहता हूँ। अग्निवेश ! आस्रवोंके नाश होनेसे अ-संमूढ होता है। अग्निवेश ! तथागतके यह आस्रव—०—हो गये, उच्छिन्न-मूल, अभावको प्राप्त, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक सिर-कटे ताड़ जैसे होगये। जैसे, अग्निवेश ! सिर-कटा ताड़ फिर बढ़ने योग्य नहीं रहता, ऐसे ही अग्निवेश ! तथागतके यह आस्रव-०-०, उच्छिन्न-मूल ० सिरकटे ताड़ जैसे हो गये।"

ऐसा कहने पर सच्चक निगंठपुत्तने भगवान्‌से यह कहा—"आश्चर्य है, भो गौतम ! अद्भुत है भो गौतम ! इतना चिढ़ा चिढ़ा (ताना दे दे) कर कहे जानेपर, चुभनेवाले वचनोंके प्रयोगसे भी आप गौतमका मुखवर्ण (वैसा ही) स्वच्छ प्रसन्न है, जैसा कि अर्हत् सम्यक् संबुद्धका। भो गौतम ! मैंने पूर्ण काश्यपके साथ वाद किया है। वह दूसरी दूसरी (बात) करने लगता था, वह बातको (विषयसे) बाहरले जाता था; कोप, द्वेष, नाराजगी प्रकट करने लगता था। किन्तु इतना चिढ़ा चिढ़ाकर कहे जानेपर ०। ० मक्खलि गोसाल ०। ० अजित केश-कम्बली ०। ० प्रकुध कात्यायन ०। ० संजय बेलट्ठिपुत्त ०। मैंने निगंठ नातपुत्तके साथ वाद किया है ०। भो गौतम ! अब हम जायेंगे। हमें बहुत काम बहुत करणीय हैं।"

"अग्निवेश ! जिसका तू इस समय काल समझता है, (उसे कर)।"

रायणका अभिनंदन, अनुमोदन कर आसनसे उठकर चला गया।

३७–चूल-तण्हा-संखय-सुत्तन्त (१।४।८ ,

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममें विहार करते थे।

तब देवताओंका इन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा होगया। एक ओर खड़े देवेन्द्र शक्रने भगवान्‌से यह कहा—

"कैसे, भन्ते ! भिक्षु संक्षेपमें तृष्णाके क्षय द्वारा मुक्त हो, अत्यन्त-निष्ठ अत्यन्त योग-क्षेम (= कल्याण)-वाला, अत्यन्त ब्रह्मचारी, अत्यन्त पर्यवसान (= कर्तव्य जिसके समाप्त हो गये), देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है ?"

"देवोंके इन्द्र ! भिक्षु यह सुने होता है—सारे धर्म (= पदार्थ) अभिनिवेश (= राग) करने लायक नहीं हैं। जब देवोंके इन्द्र ! भिक्षु यह भी सुने होता है—"सारे धर्म अभिनिवेश करने लायक नहीं हैं।' वह सारे धर्मोंको जानता है—'सारे धर्मोंको जानकर सब धर्मोंको छोड़ता है। सारे धर्मोंको छोड़कर, जिस किसी सुख, दुःख या अ-दुःख-अ-सुख वेदनाको अनुभव करता है; उसमें वह अनित्यानुदर्शी (= यह अनित्य है, ऐसा समझनेवाला) हो विहरता है, विराग-अनुदर्शी ०, निरोध(= नाश)-अनुदर्शी, प्रतिनिस्सर्ग (= त्याग)-अनुदर्शी हो विहरता है। वह उन वेदनाओंमें ० प्रतिनिस्सर्गानुदर्शी हो विहरते, लोकमें किसी वस्तुका उपादान (= रागयुक्त ग्रहण) नहीं करता। उपादान न करनेसे (विछोहके) त्रासको नहीं पाता। परित्रास न पानेसे इसी शरीरमें परिनिर्वाण (= दुःखके सर्वथा अभाव)को प्राप्त होता है।—'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य समाप्त हो गया, करना था सो कर लिया, और कुछ (कर्तव्य) यहाँके लिये नहीं रहा'—जानता है। देवोंके इन्द्र ! ऐसे भिक्षु संक्षेपमें ० देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है।"

तब देवोंका इन्द्र शक्र भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

उस समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भगवान्‌के अ-विदूर (= समीप)में बैठे थे। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको यह हुआ—'क्या उस यक्ष (= देव)ने भगवान्‌के भाषणको समझकर अनुमोदित किया, या बिना (समझे) ? क्यों न मैं उस यक्षको पूछूँ, कि उस यक्षने भगवान्‌के भाषणको समझकर अनुमोदित किया, ० ?' तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (बिना प्रयास) फैला दे, और फैली बाँहको समेट दे, वैसे ही, मृगारमाता[1]के प्रासाद पूर्वारामसे अन्तर्धान हो त्रायस्त्रिंश देव (- लोक)में प्रगट हुये।

उस समय देवोंका इन्द्र शक्र एकपुंडरीक उद्यानमें पाँच प्रकारके दिव्य वाद्योंसे सम-

---

[1] मृगारमाता विशाखाका नाम था, विशेषके लिये देखो बुद्धचर्या, पृष्ठ ११२।

विंस=समंगीभूत हो घिरा बैठा था। ० शक्रने दूरसे ही आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको आते देखा। देखकर उन पाँच प्रकारके दिव्य बाजोंको हटाकर, जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् महामौद्गल्यायनसे यह बोला—

"आओ, मार्ष मौद्गल्यायन! स्वागत है मार्ष मौद्गल्यायन! चिरकालके बाद मार्ष मौद्गल्यायन! आपका...यहाँ आना हुआ। बैठिये मार्ष मौद्गल्यायन! यह आसन बिछा है।"

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन बिछे आसनपर बैठ गये। देवोंका इन्द्र शक्र भी एक नीचे आसनको लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे ० शक्रसे आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने यह कहा—

"कौशिक! किस प्रकार भगवान्ने तुम्हें संक्षेपसे तृष्णा-क्षय द्वारा मुक्तिके बारेमें कहा है? अच्छा हो, हम भी उस कथाके श्रवण करनेके भागी हों।"

"मार्ष मौद्गल्यायन! हम बहुकृत्य बहुकरणीय हैं; अपना करणीय (काम) तो थोड़ा ही है, त्रायस्त्रिंश देवोंका ही करणीय (बहुत है)। और मार्ष मौद्गल्यायन! सु-श्रुत (=अच्छी प्रकार सुना), सुगृहीत=सु-मनसीकृत, सु-प्रधारित (बात) भी हमें शीघ्र ही भूल जाता है। मार्ष मौद्गल्यायन! पूर्वकालमें देवासुर-संग्राम छिड़ा था। उस संग्राममें, मार्ष मौद्गल्यायन! देव विजयी हुये, असुर पराजित हुये। सो मार्ष मौद्गल्यायन! उस संग्रामको जीत, विजित-संग्राम हो, लौटकर मैंने वैजयन्त नामक प्रासादको बनवाया। मार्ष मौद्गल्यायन! वैजयन्त प्रासादके एक आसन (=तल) में सौ निर्यूह (=खंड) हैं। एक एक निर्यूहमें सात कूटागार हैं। एक एक कूटागारमें सात अप्सरायें हैं। एक एक अप्सराके पास सात सात परिचारिकायें हैं। मार्ष[1] मौद्गल्यायन! क्या वैजयन्त प्रासादकी रमणीकताको देखना चाहते हो?"

आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने मौन रह स्वीकार किया।

तब देवोंका इन्द्र शक्र आयुष्मान् महा मौद्गल्यायनको आगे आगे कर, जहाँ वैजयन्त प्रासाद था, वहाँ गया। ० शक्रकी परिचारिकाओंने दूरसे ही आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको आते देखा। देखकर, लजाती शर्माती अपनी अपनी कोठरियोंमें घुस गईं। जैसे बहू ससुरको देखकर लजाती शर्माती है, वैसेही ० शक्रकी परिचारिकायें आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको देख लजाती शर्माती अपनी अपनी कोठरियोंमें घुस गईं।

तब देवेन्द्र शक्र और महाराज वैश्रवण, आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको वैजयन्त प्रासाद दिखाते टहलाने लगे—

"मार्ष मौद्गल्यायन! देखो वैजयन्त प्रासादकी इस रमणीकताको भी। मार्ष मौद्गल्यायन! देखो वैजयन्त प्रासादकी इस रमणीकता को।"

"पहिले पुण्य किये आयुष्मान् कौशिकका यह (भवन) सोहता है।"

"मनुष्यभी थोड़ी रमणीकता देखकर कहते हैं—'त्रायस्त्रिंश देवोंका (भवन) सोहता है; पहिले पुण्य किये आयुष्मान् कौशिकका यह (भवन) सोहता है'।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको ऐसा हुआ—'यह यक्ष बहुत अधिक प्रमादी हो विहर रहा है; क्यों न मैं इस यक्षको उद्वेजित करूँ।'

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ऐसी ऋद्धि प्रदर्शितकी, कि वैजयन्त प्रासादको पैरके अँगूठेसे संकम्पित (=कम्पित)=संप्रकम्पित=संप्रवेधित कर दिया। तब ० शक्र वैश्रवण...

---

[1] देवता लोग अपने समान व्यक्तिको मार्ष कहकर संबोधित करते हैं।

महाराज, और त्रायस्त्रिंश देव आश्चर्य-चकित''' हो गये—'अहो ! श्रमणकी महा-ऋद्धि-मत्ता=महा-नुभावता; जो कि (उसने) दिव्य-भवनको पैरके अंगूठेसे संकम्पित ० कर दिया ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ० शक्रको उद्विग्न रोमांचित जान, शक्रसे यह कहा—

"कौशिक ! किस प्रकार भगवान्‌ने तुम्हें ०[१] मुक्तिके बारेमें कहा ० ।"

"मार्ष मौद्गल्यायन ! मैं जहाँ भगवान् थे, वहाँ, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े मैंने भगवान्‌से यह कहा—'कैसे भन्ते ! ०[१] देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है'। मार्ष मौद्गल्यायन ! इस प्रकार भगवान्‌ने मुझे ०[१] मुक्तिके बारेमें कहा ।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ० शक्रके भाषणका अभिनंदन अनुमोदन कर, जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको फैलादे ०[१], वैसेही त्रायस्त्रिंश देव (लोक)में अन्तर्धान हो, मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममें प्रकट हुये । आयुष्मान् महामौद्गल्यायनके चले जानेके थोड़ीही देर बाद ० शक्रकी परिचारिकाओंने देवेन्द्र, शक्रसे पूछा—

"मार्ष ! यही वह तुम्हारे शास्ता (= गुरु) थे ?"

"मार्षो ! वह मेरे शास्ता नहीं थे, वह मेरे सब्रह्मचारी (= गुरुभाई) आयुष्मान् महा-मौद्गल्यायन थे ।"

"लाभ है, मार्ष ! जबकि तेरे सब्रह्मचारी ऐसे महा-ऋद्धिमान् ऐसे महानुभाव हैं । अहो ! वह तुम्हारे भगवान् शास्ता (कैसे होंगे) !!'

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, जहाँ भगवान् थे, वहीं गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने भगवान्‌से यह कहा—

"जानते हैं, भन्ते ! अभी एक प्रसिद्ध महाप्रतापी यक्षको भगवान्‌ने संक्षेपसे तृष्णा-क्षय विमुक्तिको बतलाया था ?"

"जानता हूँ, मौद्गल्यायन !—देवेन्द्र शक्र जहाँ मैं था, वहाँ आया । आकर मुझे अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े देवेन्द्र शक्रने मुझसे यह कहा—०[१] देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है । मौद्गल्यायन ! मैं जानता हूँ—ऐसे मैंने देवेन्द्र शक्रको संक्षेपसे तृष्णा-क्षय-विमुक्तिको बतलाया था ।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने भगवान्‌के भाषणका अभि-नंदन किया ।

३८—महा-तण्हा-संखय-सुत्तन्त (१।४।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय साति केवट्टपुत्त भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि (=धारणा) उत्पन्न हुई थी—"मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको इस प्रकार जानता हूँ, कि वही विज्ञान संसरण (जन्म-मरणमें जाना) करता है, संधावन (= धावन) करता है, अन्य नहीं।

बहुतसे भिक्षुओंने सुना कि—साति केवट्टपुत्त (= कैवर्त-पुत्र) भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—० संधावन करता है ०। तब वह भिक्षु जहाँ साति केवट्टपुत्त भिक्षु था, वहाँ गये। जाकर साति केवट्टपुत्त भिक्षुसे यह बोले—

"सचमुच, आवुस साति ! तुम्हें इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई है ?—०संधावन करता है !"

"हाँ आवुसो ! ० संधावन करता है ०।"

तब वह भिक्षु उस बुरी धारणासे हटानेके लिये साति केवट्टपुत्त भिक्षुको समझाते बुझाते समनुभाषण करने लगे—

"आवुस साति ! मत ऐसा कहो, मत भगवान् पर झूठ लगाओ। भगवान् पर झूठ लगाना ठीक नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कहते। आवुस साति ! भगवान्ने अनेक प्रकारसे विज्ञानको प्रतीत्य-समुत्पन्न (कार्य-कारणसे उत्पन्न) कहा है। प्रत्यय(=हेतु)के बिना विज्ञान (=चेतना) का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।"

इस प्रकार उन भिक्षुओंद्वारा समझाये बुझाये जाने पर भी केवट्टपुत्त साति भिक्षु, उसी बुरी धारणाको दृढतासे पकड़े कहता था—'मैं भगवान्के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ ०।' जब वह भिक्षु केवट्टपुत्त साति भिक्षुकी उस बुरी धारणाको न हटा सके; तब जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये···उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! केवट्टपुत्त साति भिक्षुको ऐसी बुरी धारणा (= पापदृष्टि) उत्पन्न हुई है—'मैं भगवान्के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ ०। हमने भन्ते !···सातिकी इस बुरी धारणाको सुना। तब हम भन्ते !···साति भिक्षुके पास···जाकर यह बोले—सचमुच आवुस साति ! तुम्हें इस प्रकार ०?···हाँ आवुसो ! ०[1] जब हम भन्ते !···साति भिक्षुकी इस बुरी धारणाको न हटा सके, तब हमने आकर इस बातको भगवान्से कहा।"

तब भगवान्ने एक भिक्षुको संबोधित किया—"आओ भिक्षु ! तुम मेरी ओरसे केवट्टपुत्त

[1] देखो ऊपर।

साति भिक्षुको बोलना—'आवुस साति ! शास्ता (= उपदेशक, बुद्ध) तुम्हें बुला रहे हैं' ।"

"अच्छा, भन्ते !—"(कह) वह भिक्षु...साति भिक्षुके पास...जाकर यह बोला—"आवुस ! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं ।"

"अच्छा, आवुस !"—कहा...केवट्टपुत्त साति भिक्षु जहाँ भगवान् थे,...वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे...साति भिक्षुको भगवान्‌ने यह कहा—

"सचमुच, साति ! तुझे इस प्रकारकी बुरी धारणा हुई है—'मैं भगवान्‌के ० ?'"

"हाँ, भन्ते ! मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ, कि यही विज्ञान संसरण, संधावन करता है, दूसरा नहीं ।"

"साति ! वह विज्ञान क्या है ?"

"यह जो भन्ते ! वक्ता, अनुभव-कर्ता है, जो कि तहाँ तहाँ (जन्म लेकर) अच्छे, बुरे कर्मोंके विपाकको अनुभव करता है ।"

"मोघपुरुष[1] ! तुमने किसको मुझे ऐसा उपदेश करते सुना ? मैंने तो मोघपुरुष ! अनेक प्रकारसे विज्ञानको प्रतीत्य-समुत्पन्न कहा है; प्रत्ययके बिना विज्ञानका प्रादुर्भाव नहीं हो सकता (—कहा है) । मोघपुरुष ! तू अपनी ठीकसे न समझी बातका हमारे पर लांछन लगाता है, अपना नुकसान कर रहा है, और बहुत पाप कमा रहा है; मोघपुरुष ! यह तेरे लिये दीर्घकाल तक अहितकर, दुःखकर होगा ।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! क्या इस...साति भिक्षुने इस धर्म-विनय (= धर्म)में थोड़ा भी अवगाहन कर पाया (= उस्मीकृत) है ?"

"क्या कर पायेगा, भन्ते ? नहीं भन्ते !"

ऐसा कहने पर केवट्टपुत्त साति भिक्षु चुपचुप् हो, मूक हो, कंधा गिराकर, नीचे मुँह करके चिन्तामें पड़, प्रतिभाहीन हो बैठा रहा । तब भगवान्‌ने...साति भिक्षुको चुप्-चुप् हो ० प्रतिभा हीन हो बैठे देख...(उसे) यह कहा—

"मोघपुरुष ! जानेगा तू इस अपनी बुरी धारणाको । अब मैं भिक्षुओंको पूछता हूँ ।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! तुमने मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते देखा है, जैसे कि...साति भिक्षु अपनी ठीकसे न समझी बातका, हमारे पर लांछन लगाता है, अपना नुकसान कर रहा है, और बहुत पाप कमा रहा है ?"

"नहीं भन्ते ! भगवान्‌ने तो भन्ते ! हमें अनेक प्रकारसे विज्ञानको प्रतीत्य-समुत्पन्न कहा है; प्रत्ययके बिना विज्ञानका प्रादुर्भाव नहीं होता है (—कहा है) ।"

"साधु, भिक्षुओ ! तुम इस प्रकार मेरे उपदेशित धर्मको ठीकसे जानते हो—'अनेक प्रकारसे ० प्रादुर्भाव नहीं हो सकता' तो भी यह...साति भिक्षु अपनी ठीकसे न समझी ० यह उसके लिये दीर्घकाल तक अहितकर दुःखकर होगा ।

"भिक्षुओ ! जिस जिस प्रत्यय (=निमित्त)से विज्ञान उत्पन्न होता है, वही वही उसकी संज्ञा (=नाम) होती है । चक्षु (= आँख)के निमित्तसे रूपमें (जो) विज्ञान उत्पन्न होता है;

---

[1] मोघी (बनारसी हिन्दी) = फजूलका आदमी ।

चक्षु-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। श्रोत्रके निमित्तसे शब्दमें (जो) विज्ञान उत्पन्न होता है, श्रोत्र-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। घ्राण (= नाक)के निमित्तसे गंधमें (जो) विज्ञान उत्पन्न होता है, घ्राण-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। जिह्वाके निमित्तसे रसमें (जो) विज्ञान उत्पन्न होता है, रस-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। कायाके निमित्तसे स्प्रष्टव्य (= छूये जानेवाले विषय)में (जो) विज्ञान उत्पन्न होता है, काय-विज्ञान ही उसका नाम होता है। मनके निमित्तसे धर्म (= उपरोक्त पाँच बाहरी इन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञान)में (जो) विज्ञान उत्पन्न होता है, मनो-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है।

"जैसे कि, भिक्षुओ ! जिस जिस निमित्त (= प्रत्यय)को लेकर (जो) आग जलती है, वही वही उसकी संज्ञा होती है। काष्ठके निमित्तसे (जो) आग जलती है, काष्ठ-अग्नि ही उसकी संज्ञा होती है। (लकड़ीकी) खुद्दीके निमित्तसे जो आग जलती है, खुद्दीकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। तृणके निमित्तसे (जो) आग जलती है, तृण-अग्नि ही उसकी संज्ञा होती है। कंडे (= गोमय)के निमित्तसे (जो) आग जलती है, कंडेकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। भूसी (= तुष)के निमित्तसे (जो) आग जलती है, भूसीकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। कूड़े (= संकार)के निमित्तसे (जो) आग जलती है, कूड़ेकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। ऐसे ही भिक्षुओ ! जिस जिस निमित्तसे विज्ञान उत्पन्न होता है, वही वही उसकी संज्ञा होती है। चक्षुके निमित्तसे ०[1] मनो-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है।

"भिक्षुओ ! इस (पाँच स्कंधो[2])को उत्पन्न देखते हो ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! अपने आहारसे (उन्हें) उत्पन्न हुआ देखते हो ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! जो उत्पन्न होने वाला है, अपने आहारके निरोधसे वह निरुद्ध (= नष्ट) होनेवाला होता है—इसे देखते हो ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! 'यह (पाँच स्कंध) उत्पन्न हुआ है, या नहीं'—यह दुविधा करते सन्देह (= विचिकित्सा) उत्पन्न होती है न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! अपने आहारसे उत्पन्न हुआ है, या नहीं—० ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! 'जो उत्पन्न होनेवाला है, (वह) अपने आहार (= स्थितिके आधार)के निरोधसे निरुद्ध होनेवाला होता है, या नहीं'—यह दुविधा करते सन्देह उत्पन्न होता है न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! 'यह (= पाँच स्कंध) उत्पन्न हैं'—यह अच्छी प्रकार प्रज्ञासे देखने पर सन्देह नष्ट हो जाता है न ?"

---

[1] देखो पृष्ठ १५२-५३। [2] रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यह पाँच स्कंध हैं। वेदना, संज्ञा, संस्कार रूपके संबंधसे विज्ञानहीकी तीन अवस्थायें हैं, इस प्रकार वह उसके अन्तर्गत हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु रूप-स्कंध है। जिसमें न भारीपन है, और जो न जगह घेरता है, वह विज्ञान-स्कंध है। रूप (= Matter) और विज्ञान (= Mind)के मेलसे ही सारा संसार बना है।

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इसे अपने आहारसे उत्पन्न ०। ० 'जो उत्पन्न होनेवाला है, (वह) अपने आहारके निरोधसे निरुद्ध होने वाला होता है'—यह ठीकसे अच्छी प्रकार प्रज्ञासे देखने पर सन्देह नष्ट हो जाता है न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! 'यह (पंच स्कंध) उत्पन्न है'—इस (विषयमें) तुम सन्देह-रहित हो न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! 'यह अपने आहारसे उत्पन्न है'—इस (विषय)में भी तुम सन्देह-रहित हो न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"० अपने आहारके निरोधसे निरुद्ध होनेवाला होता है—इस (विषय)में भी तुम सन्देह-रहित हो न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! 'यह उत्पन्न है'—इसे ठीकसे अच्छी प्रकार जानना सुदृष्ट (= अच्छा दर्शन) है न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! '(यह) अपने आहारसे उत्पन्न है—०। ० अपने आहारके निरोधसे निरुद्ध होने वाला होता है'—यह ठीकसे अच्छी प्रकार जानना सुदृष्ट है न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! क्या तुम इस ऐसे परिशुद्ध, उज्वल, दृष्ट (= दर्शन, ज्ञान)में भी आसक्त होगे रमोगे, '(मेरा) धन है'—समझोगे, ममता करोगे ? भिक्षुओ ! (मेरे) उपदेशे धर्मको कुल्ल (= नदी पार करनेके बेड़े)के समान, (यह) पार होनेके लिये है, पकड़ कर रखनेके लिये नहीं है—(समझोगे) ?"

"(पकड़ कर रखनेके लिये) नहीं है भन्ते !"

"भिक्षुओ ! तुम इस ऐसे परिशुद्ध, उज्वल, दृष्टमें भी आसक्त न होना, न रमना, '(मेरा धन[1] है'—न समझना, ममता न करना। बल्कि भिक्षुओ ! मेरे उपदेशे धर्मको कुल्ल (= बेड़े के समान समझना, (यह) पार होनेके लिये है, पकड़ रखनेके लिये नहीं है।"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! उत्पन्न प्राणियोंकी स्थितिके लिये, आगे उत्पन्न होने वाले (सत्वों)की सहायता (= अनुग्रह)के लिये यह चार आहार हैं। कौनसे चार ?—(पहिला) स्थूल या सूक्ष्म कवलीकार (= कवल, कवल करके खाने योग्य) आहार; दूसरा स्पर्श (आहार); तीसरा मनः-संचेतना (= मनसे विषयका ख्यालकरके तृप्तिलाभ करना), चौथा विज्ञान (= चेतना)

"भिक्षुओ ! इन चार आहारोंका क्या निदान (= हेतु) है = क्या समुदय है ? (यह किससे जन्मे हैं = किससे संभूत हैं ?—भिक्षुओ ! इन चारों आहारोंका निदान है तृष्णा। समुदय है, तृष्णा। यह जन्मे हैं तृष्णासे =[1] यह संभूत हैं तृष्णासे।

"भिक्षुओ ! इस तृष्णाका क्या निदान है ० ?— ० वेदना ०।

"० वेदना ०[1] ?—० स्पर्श ०।

---

[1] ऊपरकी तरह।

"० स्पर्श ०[1] ?—० षड्-आयतन[2] ०।
"० षड्-आयतन ०[1] ?—० नाम-रूप[3] ०।
"० नाम-रूप ०[1] ?—० विज्ञान ०।
"० विज्ञान ०[1] ?—० संस्कार ०।
"० संस्कार ०[1] ?—० अविद्या ०।

"इस प्रकार भिक्षुओ! अ-विद्याके कारण संस्कार होता है, संस्कारके कारण विज्ञान, विज्ञानके कारण नाम-रूप, नाम-रूपके कारण षड्-आयतन, षड्-आयतनके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान (=ग्रहण या ग्रहण करनेकी इच्छा), उपादानके कारण भव (=संसार), भवके कारण जन्म, जन्मके कारण जरा-मरण, शोक, रोना-काँदना, दुःख=दौर्मनस्य, हैरानी-परेशानी होती हैं। इस प्रकार इस केवल (=खालिस) दुःख-स्कन्ध (=दुःख-समुदाय)की उत्पत्ति होती है।

"भिक्षुओ! जाति (=जन्म)के कारण जरा-मरण होता है—यह जो कहा। भिक्षुओ! जातिके कारण जरा-मरण होता है या नहीं—इसमें तुम्हें क्या जान पड़ता है?

"जातिके कारण जरा-मरण होता है। भन्ते! हमको यही जान पड़ता है, कि जातिके कारण जरा-मरण होता है।

"भिक्षुओ! भवके कारण जाति (=जन्म) होती है—यह जो कहा। भिक्षुओ! भवके कारण जाति होती है या नहीं—इसमें तुम्हें क्या जान पड़ता है?"

"० भवके कारण, भन्ते! जाति होती है ०।"
"० उपादानके कारण ०[1] ?—०।"
"० तृष्णाके कारण ०[1] ?—०।"
"० वेदनाके कारण ०[1] ?—०।"
"० स्पर्शके कारण ०[1] ?—०।"
"० षड्-आयतनके कारण ०[1] ?—०।"
"० नाम-रूपके कारण ०[1] ?—०।"
"० विज्ञानके कारण ०[1] ?—०।"
"० संस्कारके कारण ०[1] ?—०।"
"० अविद्याके कारण ०[1] ?—०।"

"साधु, भिक्षुओ! तुमभी भिक्षुओ! इस प्रकार कहो, मैं भी ऐसेही कहता हूँ—'इसके होनेपर यह होता है, इसके उत्पन्न होनेसे यह उत्पन्न होता है'—जो कि यह अविद्याके कारण संस्कार, संस्कारके कारण विज्ञान, विज्ञानके कारण नाम-रूप, नाम-रूपके कारण षड्-आयतन षड्-आयतनके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भव, भवके कारण जाति, जातिके कारण जरा-मरण, जरा-मरणके कारण शोक, रोना-काँदना, दुःख=दौर्मनस्य, हैरानी-परेशानी होती है।—इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंध (=दुःख-पुंज)की उत्पत्ति होती है।

---

[1] ऊपरकी तरह। [2] चक्षु आदि पाँच बाहरी इन्द्रियाँ और छठा भीतरी इन्द्रिय मन, यह छः आयतन हैं। [3] रूप भूतोंको कहते हैं, और नाम विज्ञानको (देखो टिप्पणी पृष्ठ १५१)।

"अविद्याके पूर्णतया विरक्त होनेसे, (अविद्याके) नष्ट होनेसे संस्कारका नाश (=निरोध) होता है, संस्कारके निरोधसे विज्ञानका निरोध होता है, विज्ञानके निरोधसे नाम-रूपका निरोध होता है, नाम-रूपके निरोधसे षड्-आयतनका निरोध होता है, षड्-आयतनके निरोधसे स्पर्शका निरोध होता है, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका निरोध होता है, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध होता है, तृष्णाके निरोधसे उपादानका निरोध होता है, उपादानके निरोधसे भवका निरोध होता है, भवके निरोधसे जातिका निरोध होता है, जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक रोने-काँदने, दुःख = दौर्मनस्य हैरानी-परेशानीका निरोध होता है।—इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंधका निरोध होता है।

"भिक्षुओ! 'जातिके निरोधसे जरा-मरणका निरोध होता है'—यह जो कहा। भिक्षुओ! जातिके निरोधसे जरामरणका निरोध होता है या नहीं होता—यहाँ तुम्हें कैसा जान पड़ता है?"

" 'जातिके निरोधसे जरामरणका निरोध होता' भन्ते! (यहाँ) भन्ते! हमें होता है—जातिके निरोधसे जरा-मरणका निरोध होता है।"

"० भवके निरोधसे ०[1] ?—०।"

"० उपादानके निरोधसे ०[1] ?—०।"

"० तृष्णाके निरोधसे ०[1] ?—०।"

"० वेदनाके निरोधसे ०[1] ?—०।"

"० स्पर्शके निरोधसे ०[1] ?—०।"

"० षड्-आयतनके निरोधसे ०[1] ?—०।"

"० नाम-रूपके निरोधसे ० ?—०।"

"० विज्ञानके निरोधसे ० ?—० "

"० संस्कारके निरोधसे ० ?—०।"

"० अविद्याके निरोधसे ० ?—०।"

"साधु, भिक्षुओ! तुमभी भिक्षुओ! इस प्रकार कहो, मैं भी ऐसे कहता हूँ—'इसके न होनेपर यह नहीं होता, इसके निरोध होनेपर इसका निरोध होता है'; जो कि यह अविद्याके निरोधसे संस्कारका निरोध होता है; संस्कारके निरोधसे विज्ञानका निरोध होता है, ० नाम-रूप ०, ० षड्-आयतन ०, ० स्पर्श ०, ० वेदना ०, ० तृष्णा ०, ० उपादान ०, ० भव ०, ० जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक, रोने-काँदने, दुःख = दौर्मनस्य, हैरानी-परेशानीका निरोध होता है।

"भिक्षुओ! इस प्रकार (पूर्वोक्त क्रमसे) जानते देखते हुये क्या तुम पूर्वके छोर (= पूर्व-अन्त = पुराने समय या पुराने जन्म) की ओर दौड़ोगे—' अहो! क्या हम अतीत-कालमें थे, या हम अतीत-कालमें नहीं थे? अतीत-कालमें हम क्या थे? अतीत-कालमें हम कैसे थे? अतीत-कालमें क्या होकर हम क्या हुये थे?' "

"नहीं, भन्ते!"

"भिक्षुओ! इस प्रकार जानते देखते हुये, क्या तुम बादके छोर (= अपर-अन्त = आगे आने वाले समय) की ओर दौड़ोगे—'अहो! क्या हम भविष्य कालमें होंगे, या हम भविष्य कालमें नहीं होंगे? भविष्य कालमें हम क्या होंगे? ० हम कैसे होंगे? भविष्य कालमें क्या होकर हम क्या होंगे?' "

---

[1] ऊपरकी तरह ही।

"नहीं, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इस प्रकार जानते देखते हुये, क्या तुम इस वर्तमान कालमें अपने भीतर इस प्रकार कहने-सुनने वाले (= कथंकथी) होगे—'अहो ! क्या मैं हूँ, ० या मैं नहीं हूँ ? मैं क्या हूँ ? मैं कैसा हूँ ? यह सत्त्व (= प्राणी) कहाँसे आया ? यह कहाँ जानेवाला होगा ?'—?"

"नहीं, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम ऐसा कहोगे—'शास्ता (= उपदेष्टा) हमारे गुरु हैं, शास्ताके गौरव(के ख्याल)से हम ऐसा कहते हैं'—?"

"नहीं, भन्ते !"

"० ऐसा कहोगे—'श्रमण(= संन्यासी)ने हमें ऐसा कहा, श्रमणके वचनसे हम ऐसा कहते हैं'—?"

"नहीं, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम दूसरे शास्ताके अनुगामी होगे ?"

"नहीं, भन्ते !"

"० क्या तुम नाना श्रमण ब्राह्मणोंके (जो वह) व्रत, कौतुक, मंगल (-संबंधी क्रियायें) हैं, उन्हें सारके तौर पर ग्रहण करोगे ?"

"नहीं, भन्ते !"

"क्या भिक्षुओ ! जो तुम्हारा अपना जाना है, अपना देखा है, अपना अनुभव किया है; उसीको तुम कहते हो ?"

"हाँ, भन्ते !"

"साधु, भिक्षुओ ! मैंने भिक्षुओ ! तुम्हें समयान्तरमें नहीं तत्काल फलदायक, यहीं दिखाई देनेवाले, विज्ञों द्वारा अपने आपमें जानने योग्य इस धर्मके पास उपनीत किया (= पहुँचाया) है । भिक्षुओ ! 'यह धर्म समयान्तरमें नहीं' तत्काल फलदायक है, (इसका परिणाम) यहीं दिखाई देनेवाला है, (यह) विज्ञोंद्वारा अपने आपमें जानने योग्य है'—यह जो कहा है, वह इसी (उक्त कारण)से ही कहा है ।

"भिक्षुओ ! तीनके एकत्रित होनेसे गर्भ धारण होता है—माता और पिता एकत्र होते हैं, किंतु माता ऋतुमती नहीं होती और गंधर्व[1] उपस्थित नहीं होता, तो गर्भ-धारण नहीं होता । माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है; किन्तु, गंधर्व उपस्थित नहीं होता, तो भी गर्भ-धारण नहीं होता । जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है, और गंधर्व उपस्थित होता है; इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ-धारण होता है । तब उस गरु-भार-वाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता कोखमें नौ या दस मास धारण करती है । फिर उस गरु भारवाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता नौ या दस मासके बाद जनती है । तब उस जात (= सन्तान)को भिक्षुओ ! माता अपनेही लोहितसे पोसती है । भिक्षुओ ! आर्योंके मतमें यह लोहित (= खून) ही है, जो कि यह माताका दूध है ।

"तब भिक्षुओ ! वह कुमार बड़ा होने पर, इन्द्रियोंके परिपक्व होने पर जो वह बच्चोंके खिलौने हैं, जैसे कि—वंकक (= वंका), घटिक (= घड़िया), मोक्खचिक (= मुँहका लट्टू),

---

[1] उत्पन्न होनेवाला चेतना-प्रवाह । देखो अभिधर्मकोश (३।१२), पृष्ठ १५४ ।

चिंगुलक (= चिंगुलिया), पात्र-आढक (= तराजूका खिलौना), रथक (= खिलौनेकी गाड़ी), धनुक (= धनुही)—उनसे खेलता है।

"तब भिक्षुओ! वह कुमार (और) बड़ा होने पर, इन्द्रियोंके परिपक्व होने पर, संयुक्त संलिप्त हो, पाँच (प्रकारके) काम-गुणों (= विषय-भोगों)—चक्षुसे विज्ञेय इष्ट (= अभिलषित) कान्त (= कमनीय), मनोज्ञ, प्रिय, कामनायुक्त, रंजनीय रूपों; श्रोत्रसे विज्ञेय ० शब्दों; घ्राणसे विज्ञेय ० गंधों; जिह्वासे विज्ञेय ० रसों; कायासे विज्ञेय ० स्पर्शों—को सेवन करता है। वह चक्षु (= आँख)से प्रिय रूपोंको देखकर राग-युक्त होता है, अ-प्रिय रूपोंको देखकर द्वेष-युक्त होता है। कायिक स्मृति (= होश)को न कायम रख छोटे चित्तसे विहरता है। (वह) उस चित्तकी विमुक्ति और प्रज्ञाकी विमुक्ति (= मुक्ति)का ठीकसे ज्ञान नहीं करता; जिससे कि उसकी सारी बुराइयाँ = अकुशल-धर्म निरुद्ध हो जायें। वह इस प्रकार अनुरोध (= राग), विरोधमें पड़ा, सुखमय दुःखमय न-सुख-न-दुखमय—जिस किसी वेदनाको वेदन (= अनुभव) करता है, उसका वह अभिनन्दन करता है, अभिवादन करता है, अवगाहन करता है। इस प्रकार अभिनन्दन करते, अभिवादन करते, अवगाहन करते रहते उसे नन्दी (= तृष्णा) उत्पन्न होती है। वेदनाओंके विषयमें जो वह नन्दी है, (वही) उसका उपादान है, उसके उपादानके कारण भव होता है, भवके कारण जाति, जातिके कारण जरामरण, शोक, रोना-काँदना, दुःख = दौर्मनस्य, हैरानी-परेशानी होती है। इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंधकी उत्पत्ति = समुदय, होता है। वह श्रोत्रसे प्रिय शब्दोंको सुन कर ०[1] ० घ्राणसे प्रिय गंधोंको सूँघ कर ०[1] । ० जिह्वासे प्रिय रसोंको चख कर ०[1] । ० कायासे प्रिय स्प्रष्टव्योंको छू कर ०[1] । ० मनसे प्रिय धर्मोंको जान कर ०। इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंधकी उत्पत्ति होती है।

"भिक्षुओ! यहाँ लोकमें तथागत, अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोक-विद्, पुरुषोंके अनुपम-चाबुक-सवार, देवताओं और मनुष्योंके उपदेष्टा भगवान् बुद्ध उत्पन्न होते हैं। वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक सहित इस लोकको, देव-मनुष्य-सहित श्रमण-ब्राह्मण-युक्त (सभी) प्रजाको स्वयं समझ कर = साक्षात्कार कर (धर्मको) बतलाते हैं। वह आदिमें कल्याण(-कारी), मध्यमें कल्याण(-कारी), अन्तमें कल्याण(-कारी) धर्मको अर्थ-सहित = व्यंजन-सहित उपदेशते हैं। वह केवल (= मिश्रण-रहित) परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं। उस धर्मको गृहपति या गृहपतिका पुत्र, या और किसी छोटे कुलमें उत्पन्न (पुरुष) सुनता है। वह उस धर्मको सुनकर तथागतके विषयमें श्रद्धा लाभ करता है। वह उस श्रद्धा-लाभसे संयुक्त हो सोचता है—'गृह-वास जंजाल है, मैलका मार्ग है। प्रव्रज्या (= संन्यास) मैदान (सा खुला स्थान) है। इस नितान्त सर्वथा-परिपूर्ण, सर्वथा-परिशुद्ध, खरादे शंख जैसे (उज्वल) ब्रह्मचर्यका पालन घरमें रहते सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर-दाढ़ी मुँडाकर, काषाय वस्त्र पहन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ?' सो वह दूसरे समय अपनी अल्प भोग-राशिको या महा-भोग-राशिको अल्प-ज्ञाति-मंडलको या महा-ज्ञाति-मंडल को छोड़, सिर-दाढ़ी मुँडा, काषाय वस्त्र पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित (= संन्यासी) होता है।

"वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, भिक्षुओंकी शिक्षा, समान-जीविकाको प्राप्त हो, प्राणाति-पात छोड़, प्राणिहिंसासे विरत होता है। दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, लज्जालु, दयालु, सर्व प्राणियों, सारे प्राणि-भूतोंका हित और अनुकंपक हो विहरता है। अ-दिन्नादान (= चोरी)

---

[1] रूपकी तरह इसे भी।

छोड़, दिन्नादायी (= दियेका लेनेवाला), दियेका चाहनेवाला,⋯पवित्रात्मा हो विहरता है। अ-ब्रह्मचर्यको छोड़ ब्रह्मचारी हो, ग्राम्य-धर्म मैथुनसे विरत हो, आर-चारी (= दूर रहनेवाला) होता है। मृषावादको छोड़, मृषावादसे विरत हो, सत्यवादी सत्य-संध, लोकका अ-विसंवादक = विश्वास-पात्र⋯होता है। पिशुन-वचन (= चुगली) छोड़, पिशुन-वचनसे विरत होता है—इन्हें फोड़नेके लिये यहाँसे सुनकर वहाँ कहनेवाला नहीं होता, या उन्हें फोड़नेके लिये वहाँसे सुनकर यहाँ कहनेवाला नहीं होता। (वह तो) फूटोंको मिलानेवाला, मिले हुओंको न फोड़नेवाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनन्दित हो, एकता करनेवाली वाणीका बोलनेवाला होता है। कटुवचन छोड़ कटु-वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी⋯कर्ण-सुखा, प्रेमणीया, हृदयंगमा, सभ्य, बहुजन-कान्ता = बहुजन-मनापा है; वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़ प्रलापसे विरत होता है। समय देखकर बोलनेवाला, यथार्थवादी = अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी हो, तात्पर्य-युक्त, फल-युक्त, सार्थक, सारयुक्त वाणीका बोलनेवाला होता है।

"वह बीज-समुदाय, भूत-समुदायके विनाशसे विरत होता है। एकाहारी, रातको उपरत-विकाल(= मध्याह्नोत्तर)-भोजनसे विरत होता है। माला, गंध, विलेपनके धारण, मंडन, विभूषणसे विरत होता है। उच्च-शयन और महाशयनसे विरत होता है। सोना चाँदी लेनेसे विरत होता है। कच्चा अनाज लेनेसे विरत होता है। कच्चा मांस लेनेसे विरत होता है। स्त्री-कुमारी ०, दासी-दास ०, भेड़-बकरी ०, मुर्गी-सूअर ०, हाथी-गाय ०, घोड़ा-घोड़ी ०, खेत-घर लेनेसे विरत होता है। दूत बन कर जानेसे विरत होता है। क्रय-विक्रय करनेसे विरत होता है। तराजूकी ठगी, कांसेकी ठगी, मान (= मन, सेर आदि तोल)की ठगीसे विरत होता है। घूस, वंचना, जाल-साज़ी, कुटिल-योग ०। छेदन, वध, बंधन, छापा मारने, ग्राम आदिके विनाश करने, डाका डालनेसे विरत होता है।

"वह शरीरके वस्त्र, और पेटके खानेसे सन्तुष्ट रहता है। वह जहाँ जहाँ जाता है (अपना सामान) लिये ही जाता है; जैसे कि पक्षी जहाँ कहीं उड़ता है, अपने पक्ष-भारके साथ ही उड़ता है। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके वस्त्र, और पेटके खानेसे सन्तुष्ट रहता है। ०। वह इस प्रकार आर्य (= निर्दोष) शील-स्कंध (= सदाचार-समूह)से युक्त हो, अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह आँखसे रूपको देखकर, निमित्त (= आकृति आदि) और अनुव्यंजन (= चिन्ह) का ग्रहण करनेवाला नहीं होता। चूँकि चक्षु इन्द्रियको अ-रक्षित रख विहरनेवालेको, राग, द्वेष, बुराइयाँ = अ-कुशल धर्म उत्पन्न होते हैं; इसलिये वह उसे सुरक्षित रखता है; चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करता है = चक्षु-इन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है। वह श्रोत्रसे शब्द सुनकर निमित्त और अनुव्यंजनका ग्रहण करनेवाला नहीं होता ०। घ्राणसे गंध ग्रहण कर ०। जिह्वासे रस ग्रहण कर ०। कायासे स्पर्श ग्रहण कर ०। मनसे धर्म ग्रहण कर ०। इस प्रकार वह आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो, अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह आने-जानेमें, जानकर करनेवाला (= संप्रजन्य-युक्त) होता है। अवलोकन-विलोकनमें संप्रजन्य-युक्त होता है। समेटने-फैलानेमें ०, संघाटी-पात्र-चीवरके धारण करनेमें ०, खानपान, भोजन-आस्वादनमें ०। मल-मूत्र विसर्जनमें ०, जाते-खड़े होते, बैठते, सोते-जागते, बोलते चुप रहते ०। इस प्रकार वह आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, अपनेमें निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह इस आर्य-शील-स्कंधसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, एकान्तमें—अरण्य, वृक्ष-छाया, पर्वत, कन्दरा, गिरि-गुहा, श्मशान, वन-प्रान्त,

खुले मैदान, या पुआलके गंजमें—वास करता है। वह भोजनके बाद···आसन मार कर, कायाको सीधा रख, स्मृतिको सन्मुख ठहरा कर बैठता है। वह लोकमें (१) अभिध्या (=लोभ)को छोड़, अभिध्या-रहित चित्त वाला हो विहरता है, चित्तको अभिध्यासे शुद्ध करता है। (२) व्यापाद (=द्रोह)-दोषको छोड़ कर, व्यापाद-रहित चित्त-वाला हो, सारे प्राणियोंका हितानुकम्पी हो विहरता है, व्यापादके दोषसे चित्तको शुद्ध करता है। (३) स्त्यान-मृद्ध (=शारीरिक मानसिक आलस्य)को छोड़ स्त्यान-मृद्ध-रहित हो, आलोक-संज्ञा वाला (=रोशन-ख्याल) हो, स्मृति और संप्रजन्य (=होश) से युक्त हो विहरता है ०। (४) औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धतपने और हिचकिचाहट)को छोड़, अनुद्धत भीतरसे शान्त हो विहरता है ०। (५) विचिकित्सा (=सन्देह)को छोड़, विचिकित्सा-रहित हो, निस्संकोच भलाइयोंमें (रत) हो विहरता है, विचिकित्सासे चित्तको शुद्ध करता है।

"वह इन (अभिध्या आदि) पाँच नीवरणोंको चित्तसे हटा, उपक्लेशों (=चित्त-मलों) को जान, उनके दुर्बल करनेके लिये, काम (=विषयों)से अलग हो, बुराइयोंसे अलग हो, विवेकसे उत्पन्न एवं वितर्क-विचार-युक्त प्रीति-सुख-वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। और फिर भिक्षुओ! वह वितर्क और विचारके शान्त होने पर, भीतरकी प्रसन्नता=चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त कर, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। और फिर भिक्षुओ! वह प्रीति और विरागसे उपेक्षा वाला हो, स्मृति और संप्रजन्य से युक्त हो, कायासे सुख अनुभव करता विहरता है। जिस (से युक्त)को कि आर्य लोग उपेक्षक, स्मृतिमान् और सुख विहारी कहते हैं, ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। और फिर भिक्षुओ! वह सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य (=चित्त-तुष्टि) और दौर्मनस्य (=चित्तकी असंतुष्टि)के पूर्व ही अस्त हो जानेसे, दुःख-सुख-रहित और उपेक्षक हो, स्मृतिकी शुद्धतासे युक्त चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है।

"वह चक्षुसे रूपको देखकर, प्रिय रूपमें राग-युक्त नहीं होता, अ-प्रिय रूपमें द्वेष-युक्त नहीं होता, विशाल चित्तके साथ कायिक स्मृतिको कायम रखकर विहरता है। (वह) उस चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति) और प्रज्ञाकी विमुक्तिको ठीकसे जानता है; जिसमें कि उसकी सारी बुराइयाँ=अकुशल-धर्म निरुद्ध हो जाते हैं। वह इस प्रकार अनुरोध विरोधसे रहित हो, सुखमय, दुःखमय, न-सुख-न-दुःख-मय—जिस किसी वेदनाको अनुभव करता है,······उसका वह अभिनंदन नहीं करता, अभिवादन नहीं करता, (उसमें) अवगाहन कर नहीं स्थित होता। इस प्रकार अभिनंदन न करते, अभिवादन न करते, अवगाहन न करते, जो वेदना-विषयक नन्दी (=तृष्णा) है, वह उसकी निरुद्ध (=नष्ट) हो जाती है। उस नन्दीके निरोधसे उपादान (=रागयुक्त ग्रहण) का निरोध होता है। उपादानके निरोधसे भवका निरोध, भवके निरोधसे जाति (=जन्म)का निरोध, जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक, रोने-काँदने, दुःख=दौर्मनस्य, हैरानी-परेशानीका निरोध होता है। इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंध (=दुःख-पुंज) का निरोध होता है। श्रोत्रसे शब्द सुन कर ०। घ्राणसे गंध सूँघ कर ०। जिह्वासे रसको चख कर ०। कायासे स्प्रष्टव्य (स्पर्श वस्तु)को छू कर ०। मनसे धर्मको जान कर प्रिय धर्मोंमें राग-युक्त नहीं होता, अ-प्रिय धर्मोंमें द्वेष-युक्त नहीं होता ०। इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंधका निरोध होता है।

"भिक्षुओ! मेरे संक्षेपसे कहे इस तृष्णा-संक्षय-विमुक्ति (=तृष्णाके विनाशसे होनेवाली मुक्ति) को धारण करो; केवट्टपुत्त साति भिक्षुको तृष्णाके महाजाल=तृष्णाके महा-संघाटमें फँसा (जानो)।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

३९—महा-अस्सपुर-सुत्तन्त (१।४।९)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् अंग (देश)में अंगवालोंके अस्सपुर नामक नगरमें विहरते थे।

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—

"भिक्षुओ ! 'श्रमण', 'श्रमण' कह लोग तुम्हारा नाम धरते हैं। तुम भी 'तुम कौन हो ?' यह पूछने पर 'श्रमण (हैं)'—उत्तर देते हो। भिक्षुओ ! तुम्हारी यह संज्ञा होते हुये, तुम्हारी यह प्रतिज्ञा होते हुये, तुम्हें सीख लेनी चाहिये—'जो श्रमण बनाने वाले धर्म हैं, जो ब्राह्मण बनाने वाले धर्म हैं, उन्हें लेकर हम बर्तेंगे, इस प्रकार हमारी संज्ञा (= नाम) सच्ची होगी, हमारी प्रतिज्ञा यथार्थ होगी। और जिन (गृहस्थों)के (दिये) अन्न, वस्त्र, निवास, रोगमें पथ्य-औषध हम उपभोग करते हैं; उनका यह हमपर किया उपकार भी महाफलदायक, = महा-आनृशंस्य होगा। हमारी यह प्रव्रज्या (=संन्यास) भी अ-वंध्या = सफला = स-उदया होगी'।

"भिक्षुओ ! कौनसे धर्म श्रमण बनानेवाले हैं, ब्राह्मण बनानेवाले हैं ?—हम लज्जा और संकोचवाले बनेंगे—यह भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये। शायद भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा हो—'हम लज्जा-संकोच (= ह्री, अपत्रपा)वाले हैं; इतना काफी है, इतना बस है। श्रमण-पन (=श्रामण्य) का अर्थ हमें मिल गया। (इससे) आगे हमारे लिये कुछ करणीय नहीं है'—मत इतनेसे सन्तोष कर लेना।

"भिक्षुओ ! तुम्हें कहता हूँ, तुम्हें समझाता हूँ; मत श्रमणपनकी कामना (शेष) रखते, आगे करणीय बाकी रहनेके कारण, श्रमणपनका अर्थ तुमसे निकल जाये। क्या है भिक्षुओ ! आगे करणीय ?—भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—'हमारा कायिक आचार परिशुद्ध होगा, उत्तान = खुला होगा, वह छिद्र (= दोष) युक्त और ढँका न होगा। उस कायिक आचारके शुद्ध होनेसे न हम अपने लिये अभिमान करेंगे, न दूसरेको नीच कहेंगे'। शायद भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा हो—'हम लज्जा-संकोच वाले हैं, हमारा कायिक आचार परिशुद्ध है। इतना काफी है ०[1]'—मत इतनेसे सन्तोष कर लेना।

"भिक्षुओ ! तुम्हें कहता हूँ, तुम्हें समझाता हूँ ०। क्या है भिक्षुओ ! आगे करणीय ?—भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—'हमारा वाचिक आचार परिशुद्ध होगा ०। शायद भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा हो—'हम लज्जा-संकोच वाले हैं। हमारा कायिक आचार परिशुद्ध है।

[1] कायिक आचारकी भाँति दुहराना चाहिये।

हमारा वाचिक आचार परिशुद्ध है। इतना काफी है ०'—मत इतनेसे सन्तोष कर लेना।

"भिक्षुओ! ०—'हमारा मानसिक आचार (=आचरण=कर्म) परिशुद्ध होगा ०। ०[1]।

" ०—'हमारी जीविका परिशुद्ध होगी ०। ०[1]।

" ०—'हम इन्द्रियोंमें संयम रक्खेंगे। चक्षुसे रूपको देखकर निमित्तग्राही, अनुव्यंजन-ग्राही[2] नहीं होंगे। चक्षु-इन्द्रियोंमें संयम न करके विहरने वाले (व्यक्तिमें) अभिध्या (=लोभ) दौर्मनस्य (=दुर्मनता), (आदि) बुराइयाँ=अकुशल-धर्म आपड़ते हैं। (इसलिये) उसके संयममें तत्पर होंगे। चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करेंगे=चक्षु इन्द्रियका संवर करेंगे। श्रोत्रसे शब्द सुन ०। घ्राणसे गंध सूँघ ०। जिह्वासे रस चख ०। कायासे स्प्रष्टव्य (वस्तु)को छू ०। मनसे धर्मको जान ०। शायद भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा हो ०।

" ०—'हम भोजनमें मात्रा (=परिमाण)का ख्याल रक्खेंगे। ठीकसे जानकर, न दव (=मस्ती)के लिये, न मदके लिये, न मंडनके लिए न विभूषणके लिये; (बल्कि) जितना इस कायाकी स्थितिके लिये, गुजारेके लिये, पीड़ाको रोकनेके लिये, और ब्रह्मचर्यकी सहायताके लिये (आवश्यक है, उतनाही) आहार ग्रहण करेंगे। इस प्रकार पुरानी वेदना (=भोग)को नाश करेंगे, और नई वेदनाको नहीं उत्पन्न करेंगे; हमारी (शरीर-)यात्रा भी चलेगी, निर्दोषपन भी रहेगा, सुखपूर्वक विहार होवेगा ०। शायद ०। ०।

" ०—'जागरणमें तत्पर रहेंगे। दिनमें टहलने, बैठने, या आचरणीय धर्मों द्वारा चित्त को शोधित करेंगे। रातके प्रथम याममें टहलने, बैठने, या (अन्य) आचरणीय धर्मोंके द्वारा चित्तको शोधित करेंगे। रातके मध्यम (बिचले) याममें पैरपर पैर रखकर, स्मृति-संप्रजन्यके साथ उत्थानका ख्याल मनमें रख दाहिनी करवट सिंह-शय्या करके (सोयेंगे)। रातके अन्तिम याममें उठकर टहलने, बैठने या (अन्य) आचरणीय धर्मोंसे चित्तको शुद्ध करेंगे ०। शायद ०।

" ०—'स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त रहेंगे। आने जानेमें संप्रजन्ययुक्त, संप्रजानकारी (=होश कर करनेवाला) ०[2] बोलने-चुप रहनेमें संप्रजानकारी होंगे ०। शायद ०।

" ०—'यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु एकान्तमें—अरण्य ०[2] चित्तको विचिकित्सा (=संदेह) से शुद्ध करता है।

"जैसे भिक्षुओ! (कोई) पुरुष ऋण लेकर कर्मान्त(=खेती)में लगावे। उसका कर्मान्त ठीक उतरे। सो वह अपने पुराने ऋणके धनको दे डाले; और दारा(=भार्या)के भरण-पोषणके लिये भी (उसके पास कुछ) बच रहे। तब उसको ऐसा हो—'मैंने पहिले ऋण लेकर कर्मान्तमें लगाया। मेरा कर्मान्त ठीक उतरा। सो मैंने अपने पुराने ऋणके धनको दे डाला, और दाराके भरण-पोषणके लिये भी बच रहा है'। सो उसके कारण उसे प्रसन्नता हो, सन्तोष हो।

"जैसे भिक्षुओ! (कोई) पुरुष भारी बीमारीसे पीड़ित हो, रोगी हो। उसे भोजन (=भक्त) अच्छा न लगता हो, और न उसके शरीरमें बलकी मात्रा हो। वह दूसरे समय उस बीमारीसे मुक्तहो जाये, उसे भोजन भी अच्छा लगने लगे, तथा उसके शरीरमें बलकी मात्रा भी आजाये। तब उसको ऐसा हो—'मैं पहिले भारी बीमारीसे पीड़ित था, रोगी था ०। सो मैं उस बीमारीसे मुक्त हो गया हूँ, मुझे भोजन भी अच्छा लगता है, और मेरे शरीरमें बलकी मात्रा भी आगई है'। सो उसके कारण उसे प्रसन्नता हो, सन्तोष हो।

---

[1] कायिक आचारकी भाँति दुहराना चाहिये।

[2] देखो पृष्ठ १५१ (स्मृति-संप्रजन्य)।

"जैसे भिक्षुओ ! (कोई) पुरुष बन्धनागारमें बँधा हो। वह दूसरे समय सकुशल बिना हानिके उस बंधनसे मुक्त होवे; और उसके भोगों(= धन)की कुछ हानि न हो। तब उसको ऐसा हो—'मैं पहिले बंधनागारमें बँधा था ०।०।

"० जैसे भिक्षुओ ! (कोई) पुरुष अ-स्वाधीन, पराधीन जहाँ चाहे तहाँ (न जा सकने वाला) दास हो। वह दूसरे समय उस दासतासे मुक्त हो, स्वाधीन, अ-पराधीन, भोग-योग्य जहाँ चाहे तहाँ जाने वाला हो। उसको ऐसा हो— ०।०।

"जैसे भिक्षुओ (कोई) धनवान् भोगवान् पुरुष कान्तार (= रेगिस्तान)के रास्तेमें जा रहा हो। सो दूसरे समय सकुशल, बिना हानिके उस कान्तारको पार हो जावे, और उसके भोगों (= धन)की भी कोई हानि न होवे। उसको ऐसा हो— ०।०।

"ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु ऋणके समान, रोगके समान, बंधनागारके समान, दासताके समान, (और) कान्तार-मार्गके समान इन न-छूटे (अभिध्या आदि) पाँच नीवरणोंको अपनेमें समझता है। इन पाँच नीवरणोंके छूट जाने पर अपने भीतर वह ऋण-मुक्ति, रोग-मुक्ति, बंधन-मुक्ति, स्वतंत्रता, (और) क्षेमयुक्त भूमि जैसा समझता है।

"वह इन पाँच नीवरणोंको चित्तसे हटा, उपक्लेशोंको जान, उनके दुर्बल करनेके लिये काम (= विषयों)से अलग हो, बुराइयोंसे अलग हो ०[1] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको विवेक (= एकान्त-चिन्तन)से उत्पन्न प्रीति-सुखसे परिपूर्ण, निमग्न = संमग्न, लिप्त करता है। उसकी सारी कायाका कुछ भी (भाग) विवेकज प्रीति-सुखसे वंचित नहीं रहता। जैसे भिक्षुओ ! चतुर नहापक (= नहलानेवाला) या नहापकका शागिर्द काँसेकी थालीमें स्नान-चूर्ण डालकर पानीका छींटा दे दे मिलावे। सो वह स्नेह (= गीलापन, नमी)से अनुगत, स्नेहसे परिगत भीतर बाहर स्नेहसे तर, न-पिघलने-वाली स्नान-पिंडी हो जावे। ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु इसी कायाको विवेकसे उत्पन्न ०।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु ०[1] द्वितीय-ध्यान ०[1]। ० उसकी कायाका कुछ भी (भाग) समाधिज प्रीतिसुखसे अलिप्त नहीं रहता। जैसे भिक्षुओ ! (कोई) उदक-ह्रद (= जलाशय) (पाताल) फूटे जल वाला हो। उसमें न पूर्व दिशासे जलके आनेका मार्ग हो, न पश्चिम दिशासे ०, न उत्तर दिशासे ०, न दक्षिण दिशासे जलके आनेका मार्ग हो। देव(= वृष्टि) भी समय-समय पर (उसमें) अच्छी प्रकार धाराका प्रवेश न कराता हो। तो भी उसी उदक-ह्रदसे शीतल जलधारा फूटकर उस उदकह्रदको शीतल जलसे परिषिक्त, संसिक्त, परिपूर्ण = सम्पूर्ण करे; चारों ओर उस उदकह्रदका कुछ भी (भाग) शीतल जलसे अ-लिप्त न हो। ऐसे ही भिक्षुओ ! ०।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु ०[1] तृतीय ध्यान ०। वह इसी कायाको निष्प्रीतिक सुखसे अभिष्यन्दित, परिष्यन्दित, परिपूर्ण, तर करता है। उसकी कायाका कुछ भी (भाग) निष्प्रीतिक सुखसे अलिप्त नहीं रहता। जैसे, भिक्षुओ ! उत्पल-समूह, पद्म-समूह, या पुण्डरीक-समूहमें, कोई कोई उत्पल, पद्म या पुण्डरीक उदकमें उत्पन्न उदकमें संवर्द्धित उदकसे ऊपर न निकल उदकमें निमग्न हुये ही पोषित हों। वह मूलसे अग्र भाग तक शीतल जलसे अभिषिक्त, परिषिक्त परिपूर्ण, और तर हों; उनका कुछ भी (भाग) शीतल जलसे अ-लिप्त न हो। ऐसे ही भिक्षुओ ! ०।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु ०[1] चतुर्थ-ध्यान ०। वह इसी कायाको परिशुद्ध, उज्ज्वल

---

[1] देखो पृष्ठ १५।

चित्तसे व्याप्त कर आसीन होता है। उसकी कायाका कुछ भी भाग परिशुद्ध उज्वल चित्तसे अ-व्याप्त नहीं होता। जैसे, भिक्षुओ! (कोई) पुरुष श्वेत वस्त्रसे सिरतक ढाँक कर बैठा हो; उसकी सारी कायाका कोई भी (भाग) श्वेत वस्त्रसे विना ढँका न हो। ऐसे ही भिक्षुओ! ०।

"वह इस प्रकार चित्तके एकाग्र ०[1]होनेपर पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह [1]।—इस प्रकार आकार, उद्देश्यके सहित अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है।

"वह इस प्रकार चित्तके एकाग्र ०[1]होनेपर ०[1]। ० अ-मानुष, विशुद्ध, दिव्य-चक्षुसे ० प्राणियोंको पहचानता है।

"वह इस प्रकार ० आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह—'यह दुःख है'—इसे यथार्थसे जानता है ० [1] 'अब यहाँ (करने)के लिये कुछ (शेष) नहीं है'—इसे जान लेता है।

"भिक्षुओ! यह (ऊपर वर्णित) भिक्षु श्रमण भी कहा जाता है, ब्राह्मण भी, स्नातक भी, वेदगू भी, श्रोत्रिय भी, आर्य भी, अर्हत् भी (कहा जाता है)।

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु श्रमण होता है?—इसके मलिन करनेवाले, पुनर्जन्मदेनेवाले, भयप्रद, दुःख-विपाकवाले, भविष्यमें जन्म-जरा-मरणमें डालनेवाले, अकुशल-धर्म=बुराइयाँ शमन (=समन = श्रमण) होगई हैं। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु श्रमण (= समन) होता है।

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु ब्राह्मण होता है?—इसकी ० बुराइयाँ बहा दीगई (= वाहित होगई) हैं"। ०।

"० स्नातक ० ?—इसकी ० बुराइयाँ धुलगई (= नहात) हैं। ०।

"० वेदगू ० ?—इसकी ० बुराइयाँ विदित हैं। ०।

"० श्रोत्रिय ० ?—इसकी ० बुराइयाँ निकलगई (= नि-स्सुत) हैं। ०।

"० आर्य ० ?—इससे ० बुराइयाँ दूर (= आरक) होती हैं। ०।

"० अर्हत् ० ?—इससे ० बुराइयाँ दूर (= आरक) होती हैं। ०।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणको अभिनंदित किया।

०—चूल-अस्सपुर-सुत्तन्त (१।४।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् अंग (देश)में अंगोंके कस्बे अश्वपुरमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !" कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया। भगवान्ने कहा—

"भिक्षुओ ! 'श्रमण' 'श्रमण' लोग नाम धरते हैं। तुमलोग भी, 'तुम कौन हो'—पूछनेपर '(हम) श्रमण हैं' उत्तर देते हो। ऐसी संज्ञा ऐसी प्रतिज्ञावाले तुम लोगोंको यह सीखना चाहिये—'जो यह श्रमणको सच करनेवाला मार्ग है, हम उस मार्गपर आरूढ होंगे, इस प्रकार यह हमारी संज्ञा सच होगी, हमारी प्रतिज्ञा (= दावा) यथार्थ होगी। (और) जिनके (दिये) चीवर (=वस्त्र), पिंड-पात (=भिक्षा), शयनासन (=निवास), ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य (= रोगीके औषधि-पथ्य) सामग्रीका हम उपभोग करते हैं। उनके (किये) हमारे प्रति यह (दान-) कार्यभी महाफलवाले महामाहात्म्यवाले होंगे; और हमारी भी यह प्रव्रज्या निर्मल सफल=स-उदय होगी।'

"भिक्षुओ ! भिक्षु श्रमणको सच करनेवाले मार्ग (= श्रमण-सामीची प्रतिपदा)पर कैसे आरूढ नहीं होता ?—भिक्षुओ ! जिस किसी अभिध्यालु (= लोभी) भिक्षुकी अभिध्या नष्ट नहीं होती, द्रोह-सहित चित्तवाले (= व्यापन्नचित्त)का व्यापाद (= द्रोह) नष्ट नहीं हुआ रहता, क्रोधीका क्रोध ०, पाखंडी (= उपनाही)का पाखंड ०, म्रक्षीकी कलक (= आमर्ष=अमरख) ०, पलासी (= प्रदाशी=निष्ठुर)का पलास ०, ईर्ष्यालुकी ईर्ष्या ० मत्सरीका मत्सर (= कृपणता) ०, शठकी शठता ०, मायावी (= वंचक)की माया ०, पापेच्छु (= बद-नीयत)की पापेच्छा ०, मिथ्या-दृष्टि (= झूठे सिद्धान्तवाले)की मिथ्या दृष्टि (= झूठी धारणा) नष्ट नहीं हुई रहती। यह इन श्रमण-मलों=श्रमण-दोषों=श्रमण-कसरों, अपायको ले जानेवाले, दुर्गतिको अनुभव करानेवाले कारणोंके अ-विनाशसे 'श्रमण-सामीचि-प्रतिपद्पर आरूढ नहीं हुआ,' (ऐसा) मैं कहता हूँ। जैसे भिक्षुओ ! मटज नामक…तेज, दुधारा आयुध (= हथियार) संघाटी(= साधुके वस्त्रों)से ढँका लिपटा हो; उसके ही समान भिक्षुओ ! मैं इस भिक्षुकी प्रव्रज्या कहता हूँ।

"भिक्षुओ ! मैं संघाटी (=भिक्षु-वस्त्र) वालेके संघाटी-धारण मात्रसे, श्रमणता (=श्रामण्य) नहीं कहता। अचेलक (= वस्त्र-रहित)के नंगे रहने मात्रसे श्रामण्य (= साधुपन) नहीं कहता। भिक्षुओ ! रजोजल्लिक (= कीचड-वासी साधु)की रजोजल्लिकता मात्रसे श्रामण्य नहीं कहता।… उदकावरोहक (= जल-वासी)के जलवास मात्रसे ०। ० वृक्षमूलिक (= सदा वृक्षके नीचे रहनेवाले)के वृक्षके नीचे वास मात्रसे ०। ० अभ्यवकाशिक (= चौड़ेमें रहनेवाले) ०। ० उब्भट्टक (= सदा खड़े रहनेवाले) ०। ० पर्याय-भक्तिक (बीच बीचमें निराहार रह, भोजन करनेवाले)